हिन्दी-साहित्य

और

उसकी प्रगति

लेखक
विजयेन्द्र स्नातक
क्षेमचन्द्र 'सुमन'

१६
आत्माराम एण्ड संस
प्र का श क त था पु स्त क - वि क्रे ता
काश्मीरी गेट
दिल्ली ६

प्रकाशक

रामलाल पुरी

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा

सरदारशहर निवासी

द्वारा

जैन विश्व भारती, लाडनूं

को सप्रेम भेंट –

दो शब्द

हिन्दी-साहित्य का इतिवृत्त प्रस्तुत करते समय हमारे पूर्ववर्ती अनेक लेखकों ने पर्याप्त शोध तथा व्यक्तिगत प्रतिभा एवं विद्वत्ता का परिचय दिया है, पठन-पाठन-परम्परा के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास सर्वाधिक प्रचलित है और प्रायः बाद के सभी लेखकों ने शुक्ल जी की प्रणाली को ही स्वीकार करके इतिहास-ग्रन्थों का प्रणयन किया है। राम हमारा यह संक्षिप्त इतिहास किसी नवीन अनुसन्धान की बात का परिचय देने वाला है अथवा इसमें नूतन उद्भावनाओं को स्थान मिला है—ऐसा हम नहीं कहते; किन्तु माध्यमिक कक्षाओं में पढ़ने वाले हिन्दी-प्रेमी विद्यार्थियों के लिए इस इतिहास में सामग्री का चयन उपादेयता तथा आवश्यकता के आधार पर किया गया है। युग-विभाजन की दृष्टि से कोई मौलिकता इसमें नहीं—कवि या लेखकों के चयन में भी कोई न्यूनता नहीं, किन्तु प्रवृत्तियों के परिचय और कलाकारों की समीक्षात्मक झाँकी प्रस्तुत करने में हमने भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के साहित्यिक ज्ञान तथा बौद्धिक स्तर का पूरा ध्यान रखा है। वर्तमान युग का वर्णन कई दृष्टियों से पूर्ण और समीचीन है, जो प्रायः संक्षिप्त कहे जाने इतिहासों में नहीं मिलता।

प्रारम्भ में हिन्दी-भाषा की पृष्ठ-भूमि का वर्णन भाषा-विज्ञान के आधार पर दिया है, जो हिन्दी-भाषा की स्थिति और विकास का क्रमिक विकास प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक था।

हमारा विश्वास है कि हिन्दी-भाषा और साहित्य के इस संक्षिप्त इतिवृत्त से माध्यमिक श्रेणी के विद्यार्थियों को अभिप्रेत ज्ञान-सामग्री उपलब्ध हो सकेगी।

—लेखकद्वय

हिन्दी-भाषा और साहित्य की पृष्ठभूमि

भाषा-तत्त्ववेत्ताओ ने संसार की भाषाओ के इतिहास को वंश-क्रम की भाति कुलो, उपकुलो, शाखाओ, उपशाखाओ तथा समुदायों मे विभक्त किया है। इस प्रकार से उन्होने ससार की समस्त भाषाओ को बारह कुलो मे विभाजित किया है और उनमे सबसे महत्त्वशाली तथा प्रथम स्थान रखने वाला भारत-यूरोपीय कुल है। जिसे आर्य भारत, जर्मनिक और जफेटिक नाम से भी पुकारते हैं। परन्तु यह नाम ही सबसे उत्तम और उपयोगी हैं, क्योंकि भारत यूरोपीय कुल मे उन भाषाओ का समावेश है, जो उत्तरी भारत, अफगानिस्तान तथा प्रायः सम्पूर्ण यूरोप में बोली जाती हैं।

इस प्रकार भारत यूरोपियन (भारोपीय) कुल को भी देश और उसके विभिन्न स्वरूपो की दृष्टि से आठ उपकुलो मे विभक्त किया है। जिसमे सबसे प्रथम आ ' अथवा भारत ईरानी उपकुल का परिगणन होता है। इसी प्रकार आर्य अथवा भारत ईरानी उपकुल की तीन शाखाएँ (१) ईरानी, (२) पैशाची या दर्द और (३) भारतीय आर्य भाषा हैं।

भारतीय आर्य भाषा अथवा आर्यावर्तीय शाखा के तीन कालो मे बाँटा गया है—(१) प्राचीन काल, (२) मध्य काल और (३) आधुनिक काल। इसी आधुनिक काल में आर्य-भाषा हिन्दी का भी स्थान है। इस प्रकार संसार के भाषा-समूहो मे यूरोपीय कुल के भारत-ईरानी-उपकुल मे भारतीय आर्य शाखा की आधुनिक भाषाओ मे से एक मुख्य भाषा हिन्दी है।

प्राचीन काल को आज तक की खोज के आधार पर १५०० ईस्वी पूर्व से ५०० ईस्वी पूर्व माना जाता है। इस काल की जनता की बोली का कोई स्वरूप अब उपलब्ध नहीं है। हाँ, साहित्यिक रूप के नमूने ऋग्वेद मे अवश्य मिलते है। इसके पश्चात् उस भाषा मे भी क्लिष्टता होने लगी,

अतएव जनता मे बोली जाने वाली भाषा तथा साहित्यिक भाषा मे अन्तर होता चला गया। सूत्र-काल मे प्राचीन वैदिक भाषा को और भी अधिक साहित्यिक रूप दिया गया तथा प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने उसको व्याकरण के सूत्र-जाल मे ऐसा जकडा कि वही रूप आज तक प्रचलित है। वैयाकरणो द्वारा बताये गए इस साहित्यिक रूप का नाम संस्कृत (क्लासिकल संस्कृत) पडा। जनता की भाषा इससे सर्वथा भिन्न होती चली गई और फिर उसने नया रूप धारण करके कुछ सन्तो (महात्मा बुद्ध आदि) द्वारा साहित्य मे भी प्रवेश किया। मध्य काल मे जिसका समय ५०० ई० पूर्व से १००० ई० तक माना जाता है, उसी प्राचीन भाषा का नाम पाली अथवा प्रथम प्राकृत रक्खा गया। किन्तु उससे जनता की भाषा मे फिर भिन्नता हो गई। उस समय जनता की भाषा पाली के नाम से पुकारी गई। बौद्ध धर्म का जनता मे अधिक प्रचार होने का यह भी एक मुख्य कारण था कि उसकी शिक्षा जनता की भाषा पाली मे दी गई। बौद्ध धर्म का साहित्य पाली (प्रथम प्राकृत) मे ही लिखा गया। महाराज अशोक ने भी इसी भाषा मे धर्म-लिपियाँ तैयार कराई।

द्वितीय प्राकृत भाषा भी तीन भिन्न रूपो मे प्रचलित थी—(१) पूर्वी प्रान्तो मे मागधी प्राकृत, (२) पश्चिमी प्रान्तो मे शौरसेनी प्राकृत, जो गुजरात महाराष्ट्र आदि तक मे बोली जाती थी तथा इन दोनो के बीच की भाषा और (३) अर्द्धमागधी। पाली से भिन्न होकर प्राकृत ने साहित्य मे जब अपना स्थान बना लिया और वह जनता से दूर पड गई तब जनता की बोली ने एक नया चोला बदला और फिर वह इन प्राकृतो का रूप बदलकर अपभ्रंश-भाषाओं के नाम से प्रख्यात हुई। ५०० ईस्वी तक इन अपभ्रंश-भाषाओं का प्रचार रहा। कुछ समय तक जनता और साहित्य की भाषा एक रही और वही तीन प्राकृत भाषाएँ अब तीन अपभ्रंशो के नाम से पुकारी गई—(१) पश्चिमी शौरसेनी अपभ्रंश, (२) पूर्वी मागधी अपभ्रंश और (३) बीच की अर्द्धमागधी अपभ्रंश। इन अपभ्रंशो ने भी जब साहित्यिक रूप धारण कर लिया तो

ये जनता के सम्पर्क से दूर चली गई, क्योकि इसको भी विद्वानो ने व्याकरण के नियमो मे जकडकर पोथी-पुस्तक तथा केवल साहित्यिक भाषा बनाकर जनता से अलग कारागार मे बन्द कर दिया । इसके पश्चात् युग-परिवर्तन का समय आया और इन्हीं अपभ्रंशो से देश की विभिन्न भाषाओं की उत्पत्ति हुई ।

ऊपर तीन कालो का जो समय निर्धारित किया गया है, उसका तात्पर्य यह नही है कि वह काल तभी से प्रारम्भ होता है अथवा उस काल की भाषाओ की उत्पत्ति और विकास उसी काल मे हुआ है। उस काल को ठीक पैमाना मान लेना भूल होगी, क्योकि कोई भी भाषा अपना स्वरूप शताब्दियो मे निश्चित कर पाती है । उसकी उत्पत्ति को निश्चित समय मे मापना असम्भव है । प्रत्येक भाषा को पहले जनता मे अपना स्वरूप उत्पन्न करने मे चुपचाप सैकडो वर्ष व्यतीत करने पडते हैं तब कहीं वह प्रकट होती है और अपना नामकरण कराती है । उसके सूत्रपात की तिथि का निश्चय अनुमान से बाहर है । प्राचीन काल मे ही मध्य काल की भाषा पनपती रही, उसका साम्राज्य स्थापित हो जाने पर प्राचीन काल की समाप्ति और मध्य काल का आरम्भ समझा जाने लगा । इससे यह नहीं समझना चाहिए कि मध्य काल की भाषा सर्वथा लुप्त हो गई । ऐसा कभी भी नहीं होता, सदियो तक वह पर्याप्त मात्रा मे साहित्य मे पनपती और फलती-फूलती रहती है और विद्वान् लोग उसका प्रयोग करते रहते है। इसी कार मध्य काल की भाषाओ का साहित्यिक रूप अब भी वही है, जो तब था । यही नही, प्राचीन काल की संस्कृत आज भी अपने उसी रूप को लिये हुए साहित्य में प्रयुक्त की जाती है । इसी प्रकार आधुनिक काल की भाषाओं की जड मध्य काल मे ही शताब्दियो पूर्व से जम गई थी और उसके पनपने पर जब उसने नया रूप धारण किया तो मध्य काल की समाप्ति समझी गई और आधुनिक काल का प्रारम्भ माना गया । इस प्रकार भाषाएँ शताब्दियो मे अपना रूप निश्चित करके प्रकट होती हैं ।

हम पहले बता चुके है कि हमारे देश की समस्त आधुनिक भाषाओ की उत्पत्ति अपभ्रश भाषाओ से हुई है। इसको हम यो भी कह सकते हैं कि प्राचीन काल की भाषा का परिवर्तित रूप आज की हमारी भाषाएँ है। यही परिवर्तन-वृत्त भाषाओ का इतिहास कहाता है। पश्चिमीय शौर-सेनी अपभ्रश से हिन्दी, राजस्थानी, पंजाबी गुजराती, और पार्वत्य प्रदेश की भाषाओ का गहरा सम्बन्ध है। इस प्रकार हमारी हिन्दी भाषा दसवी शताब्दी के आस-पास इस रूप को ग्रहण करती आती है। यही इसका जन्म-काल अथवा प्रकट-काल कहलाता है। इसके पश्चात् हिन्दी-भापा मे समय के साथ-साथ परिवर्तन तथा परिवर्द्धन होता गया और वह विविध रंगो को रंगभूमि मे छिटकाती हुई अपने चरम विकास को प्राप्त हुई। अपभ्रंश-भाषाओ के काल को यदि हम हिन्दी-भाषा के इतिहास से पृथक् कर दे और अपभ्रंश से विकसित भाषा हिन्दी रूप को ग्रहण करे तो इसका प्रारम्भ हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सम्वत् १०५० से मान सकते हैं। इसके जन्म काल से लेकर आज तक के समय को इसके विकास की दृष्टि से हम चार भागो मे बॉट सकते हैं—(१) प्राचीन काल (सं० १०५० से १३७५ तक), (२) पूर्व मध्य कत्ल (सं० १३७५ से १७०० तक), (३) उत्तर मध्य काल (सं० १७०० से १६०० तक) और (४) आधुनिक काल (सं० १६०० से आज तक)।

प्राचीन काल की हिन्दी-भाषा पर उसकी जननी शौरसेनी और अर्द्ध मागधी आदि की पूरी छाप अंकित थी और जब तक ये समर्थ न हुईं, अपनी जननी के ही पद-चिह्नो पर चलती रही। इस काल की ११०० ई० के पूर्व की सामग्री आज उपलब्ध नही है, इसके बाद की तो सामग्री मिलती है—इसे हम तीन भागो मे विभाजित करते है—(१) ताम्र-पत्र, शिला-लेख तथा प्राचीन पत्र आदि, (२) अपभ्रंश काव्य और (३) चारण काव्य। जैसा हम पर बता चुके है पहले प्रकार की सामग्री पर अपभ्रशो का प्रभाव है, साथ मे राजस्थानी का प्रभाव भी है। जो प्राचीन पत्रादि उपलब्ध हैं, एक प्रकार से वे राजस्थानी-मिश्रित भाषाओ

मे ही लिखे गए है। दूसरे प्रकार की सामग्री तो नाम से ही प्रकट कर रही है कि वह अपभ्रंश-भाषा से युक्त है। इस प्रकार की सामग्री मे कुमार-पाल, प्रतिबोध, शाङ्‌र्गधर-पद्धति आदि ग्रन्थ हैं। तीसरे प्रकार के जो चारण-काव्य है उनमे कुछ ने अपना मार्ग ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है, किन्तु वह भी अपभ्रंश भाषा की सहायता के बिना नही पार किया जा सकता। अतः चारण-काव्य भी अपभ्रश भाषा मे निर्मित किये गए। राजनैतिक उथल-पुथल के कारण इस काल मे हिन्दी-भाषा अपना निश्चित स्वरूप धारण नहीं कर सकी। इस काल मे भारत मे निरन्तर युद्ध-संघष होते रहे, यवनो के आक्रमण इसी काल मे प्रारम्भ हुए। मोहम्मद गौरी, महमूद गजनवी, सुबुक्तगीन आदि के बड़े-बडे आक्रमण हुए। इससे भाषा के विकास को बडा धक्का लगा। यही कारण था कि इस काल मे हिन्दी भाषा ने कोई विकसित रूप धारण नहीं किया। इस काल मे रचित साहित्य के नाम पर हिन्दी मे बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, तथा गोरखनाथ के फुटकर काव्य उपलब्ध है, पर इनकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है।

पूर्वमध्य काल मे भाषा के स्वरूप मे काफी परिवर्तन हुआ। इस काल मे हिन्दी-अपभ्रशो के प्रभाव से पूर्णतया रहित हो गई और इसने अवधी और ब्रजभाषा के रूप मे साहित्य को परिवर्तित कर दिया। क्योंकि १४०० ई० मे लड़ाई-झगडे समाप्त हो चुके थे और भारत-साम्राज्य एक सुदृढ़ और सुव्यवस्थित शक्ति के हाथो में आ गया था। मुगल साम्राज्य के तीन बादशाहो के समय मे राज्य मे पर्याप्त शान्ति रही। अतः साहित्य मे भी इस समय बडा विकास हुआ और उच्चकोटि के साहित्य का निर्माण हुआ। भाषा और भाव दोनो ही दृष्टियो से हिन्दी-साहित्य इस काल मे समृद्ध हुआ। इसे इस काल की हिन्दी भाषा का स्वर्ण युग कहकर पुकारते है। इस काल मे साहित्य दो धाराओं मे प्रवाहित हुआ। अवधी भाषा और ब्रजभाषा उसके मुख्य दो स्वरूप थे। सबसे प्रथम जायसी ने अवधी में 'पद्मावत' की रचना की और पश्चात् हिन्दी

भाषा को उन्नत करने वाले साहित्य-महारथी गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरित मानस' का निर्माण किया तथा फुटकल साहित्य भी लिखा। ब्रजभाषा मे भी उन्होने 'विनय पत्रिका', 'गीतावली' आदि ग्रन्थ लिखे। इस प्रकार ब्रजभाषा का साहित्य भी बराबर विकसित और उन्नत होता रहा। वल्लभाचार्य के प्रोत्साहन से बड़े-बड़े सुप्रसिद्ध महाकवियो ने ब्रजभाषा मे उच्च कोटि का साहित्य प्रस्तुत करके गौरव प्राप्त किया। सूरदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सूर सागर' की सृष्टि करके कृष्ण-भक्तो को साहित्य के सुमधुर रस का पान कराया। अष्टछाप के अन्य कवियो ने भी साहित्यिक ब्रजभाषा मे ही रचना की और ब्रजभाषा के माधुर्य को सर्व-जन-सुलभ बनाने मे अमित योग दिया।

उत्तर मध्य काल मे हिन्दी-भाषा ने और भी विकसित रूप ग्रहण किया। इस काल की भाषा तो ब्रजभाषा ही रही, किन्तु साहित्य की धारा शृङ्गार की ओर प्रवाहित हो गई। इस काल मे लडाई-झगडे समाप्त हो चुके थे। सुख-शान्ति की शीतल छाया मे नारी-सौन्दर्य ने अपना जादू फैलाना प्रारम्भ कर दिया था। भक्ति-काल की प्रेमोपासना ने लौकिक रूप धारण कर लिया था। कृष्ण और राधा भक्त कवियो के उपास्य लीला-देव न रहकर अब प्रेमी-प्रेमिका अथवा सामान्य नायक-नायिका बन गए। तात्पर्य यह है कि कवियो की मनोवृत्ति अपने आश्रयदाताओ की भाँति विलासी हो गई, इसलिए शृङ्गारिक साहित्य की रचना प्रचुर परिणाम मे हुई।

कवि राज-दरबारी होने के कारण अपने आश्रयदाताओ की प्रशसा मे छन्द बनाकर अतुल धन प्राप्त करने मे लीन रहने लगे। इस काल मे कवि-प्रतिभा भौतिक मूल्य धन-सम्पत्ति पर बिकती थी। काव्य-कला का प्रदर्शन होता था। ब्रजभाषा का सहज सौदर्न्य और एकरूपता नष्ट होने लगी। छन्दोपयोगी बनाने के लिए भाषा को खूब तोडा-मरोडा जाने लगा। अरबी, फारसी के शब्दो का प्रयोग होने लगा था। काव्य-कला के दर्शन की बलवती लालसा के कारण हिन्दी मे रीति-ग्रन्थों का निर्माण

भी हुआ। अनेक कवियों ने संस्कृत के 'काव्य प्रकाश', 'साहित्य दर्पण', 'चन्द्रालोक' आदि काव्य-ग्रन्थो के आधार पर रस, अलकार आदि पर अनेक रीति-ग्रन्थ लिखे। ये रीति-ग्रन्थ भी दो प्रकार के है। प्रथम, जिनमे लक्षण और उदाहरण दिये गए हैं और दूसरे जिनमे केवल उदाहरण दिये गए है। पहले वर्ग मे भूषण, देव आदि है और दूसरे वर्ग मे बिहारी आदि। यद्यपि केशवदास से पूर्व कृपाराम आदि रीति-ग्रन्थ लिख चुके थे, परन्तु केशवदास ही इस विषय के सर्वप्रथम आचार्य माने जाते है।

उत्तर मध्य काल मे जहाँ व्रजभाषा का प्रयोग हुआ, वहाँ बीच-बीच मे खडी बोली का भी प्रयोग होता रहा। रासो, भूषण, कबीर आदि मे खडी बोली के प्रयोगो का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। अमीर खुसरो ने खडी बोली मे ही रचना की। अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे उर्दू के प्रसिद्ध कवि वली ने खडी बोली मे रचना की। इस प्रकार खडी बोली भी धीरे-धीरे साहित्य मे अपना स्थान बनाती रही और जनता की तो वह भाषा ही बन गई।

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम काल मे परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया था। इस समय फिर देश मे अशान्ति फैली। १७६१ ई० मे मरहठा शक्ति पानीपत के क्षेत्र मे अफगानो से पराजित होकर ह्रास को प्राप्त हो चुकी थी। उधर अंग्रेज पलासी के युद्ध मे विजय प्राप्त करके अपनी शक्ति को स्थिर करने मे लगे हुए थे। बक्सर की लड़ाई के पश्चात् उन्होने अवध, प्रयाग, आगरा और दिल्ली की ओर मुख किया। इस प्रकार राजनैतिक परिवर्तन के साथ-साथ साहित्यिक क्षेत्र मे मे भी परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजो ने इस देश की भाषा-स्थिति का पर्यवेक्षण करके यह निश्चय किया कि यहाँ की भाषा 'खड़ी बोली' ही जन-साधारण के काम-काज की भाषा है, अतः बाइबिल आदि का अनुवाद उन्होने इसी भाषा मे करवाया अंग्रेजों ने जब यहाँ की भाषा सीखने का प्रयत्न किया तो उनके प्रोत्साहन से 'प्रेम सागर' और 'नासि-

केतोपाख्यान' के जन्म के साथ हिन्दी-भाषा में गद्य का जन्म हुआ। इनके साथ-साथ मु० सदासुखलाल और मु० इन्शाअल्लाखाँ ने भी स्वेच्छा से हिन्दी-गद्य का निर्माण किया। पद्य-साहित्य मे १९ वीं शताब्दी के अन्त तक ब्रजभाषा का बोल-बाला रहा, परन्तु इधर गद्य-साहित्य ने बड़ी तीव्र गति से उन्नति की। इसी समय स्वामी दयानन्द सरस्वती भी हिन्दी के क्षेत्र मे आए। दिल्ली, मेरठ, मुरादाबाद, बिजनौर की बोली के आधार पर ही खड़ी बोली का स्वरूप खडा किया गया। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद तथा राजा लक्ष्मणसिह आदि ने भी गद्य के विकास मे काफी योग दिया। यद्यपि खड़ी बोली ज्यो-ज्यो साहित्य मे प्रविष्ट हुई,त्यो-त्यो वह परिष्कृत होती गई, तथापि मेरठ और बिजनौर की भाषा से उसमे विषमता की अपेक्षा साम्य ही अधिक रहा। आरम्भ मे खडी बोली मे ब्रजभाषा के प्रयोग भी होते रहे और व्याकरण की व्यवस्था भी बनी रही।

खडी बोली को शुद्ध और परिष्कृत रूप मे जन्म देने का श्रेय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को है और उसको व्याकरण से सुव्यवस्थित करने का श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को है। इसके अतिरिक्त आचार्य जी ने भिन्न-भिन्न शैलियो का आदर्श भी लेखको के सामने रखा। इसके पश्चात् हिन्दी-साहित्य दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करने लगा। मुन्शी प्रेमचन्द,जयशकर प्रसाद और पं०रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति लेखको ने हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध करने मे अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। इन महानुभावो के सतत प्रयत्न से हिन्दी गद्य-साहित्य के प्रत्येक अंग समालोचना इतिहास, नाटक, उपन्यास, कहानी और निबन्ध आदि की पर्याप्त उन्नति हुई, और आज भी हो रही है। इस प्रकार एक ओर तो हिन्दी-भाषा ने गद्य-साहित्य के रूप मे प्रगति की और दूसरी ओर अपनी पद्य-धारा के प्रभाव को भी तीव्र गति से आगे बढ़ाया। १९ वी शताब्दी के अन्त मे खडी बोली मे कविता होनी प्रारम्भ हुई। यो तो पहले भी खडी बोली के प्राचीन रूप हमे कविता मे मिलते है, किन्तु अब उसने पद्य-साहित्य मे भी अपना अधिकार जमा लिया।

अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा प्रभृति कवियों ने खड़ी बोली की पद्य-धारा को पर्याप्त विकास दिया और आज इन्हीं प्रतिभाशाली कवियो की तपस्या से खड़ी बोली का काव्य माधुर्य, लालित्य सौन्दर्य, ओज आदि गुणों से सम्पन्न दिखाई दे रहा है।

इसी बीच सन् १९३८ का द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया, जिसकी प्रतिक्रिया साहित्य पर भी हुई। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियो का भी साहित्य पर विशेष प्रभाव पड़ा। इसके परिणाम स्वरूप साहित्य मे संघष तथा तत्कालीन परिस्थितियो के चित्रण का दर्शन हुआ। साहित्य मे आर्थिक वैषम्य तथा मजदूर, किसान और रोटी के प्रश्न को उठाकर उसे सामान्य जनता के जीवन के निकट लाया गया। इसके परिणामस्वरूप साहित्य मे प्रगतिवादी धारा का अवतरण हुआ। यह हर्ष की बात है कि आज हिन्दी-भाषा का साहित्य अपने विविध रूपो के साथ, संसार की अन्य समृद्ध भाषाओं के साहित्य के समान ही सर्वतोमुखी उन्नति कर रहा है।

ऊपर हमने हिन्दी-भाषा और साहित्य की प्रगति के क्रमिक विकास का जिन परिस्थितियो के अन्तर्गत वर्णन किया है, उसी दृष्टि से हमारे विद्यार्थियों को प्रस्तुत इतिहास का अध्ययन करना चाहिए।

क्रम

हिन्दी-साहित्य और उसकी प्रगति

हिन्दी भाषा का जन्म

वैदिक संस्कृत भारत की सबसे प्राचीन भाषा है। इसका प्रमाण संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद है। ऋग्वेद की भाषा वैदिक संस्कृत है। यह उस समय आर्यों की मातृ-भाषा थी। उस समय का साहित्य भी इसी मे रचा गया, जो वैदिक साहित्य कहलाता है। समय के साथ-साथ वैदिक संस्कृत मे भी परिवर्तन हुआ। उसे शुद्ध करके, उसका संस्कार करके संस्कृत भाषा बनाई गई। जब सभ्य और शिक्षित जनता संस्कृत बोलती थी तो ग्रामीण जनता मे उसका विकृत रूप प्रचलित था। धीरे-धीरे इसी विकृत रूप ने सभ्य और शिक्षित वर्ग मे महत्त्व का स्थान प्राप्त कर लिया। यही भाषा 'पाली' या 'प्रथम प्राकृत' कहलाई।

जब प्रथम प्राकृत भाषा जन साधारण मे प्रचलित हो गई तब शिक्षित वर्ग ने उसे व्याकरण के नियमो मे बाँधकर साहित्योपयोगी बना दिया। जैसे विद्वानो ने प्राकृत भाषा के लिए पाणिनि के समान ही सूत्र-बद्ध व्याकरण तैयार कर दिया। उस समय का जैन-साहित्य और बौद्ध-साहित्य उसी प्राकृत भाषा मे ही लिखा गया। पाली या प्रथम प्राकृत के शिक्षित वर्ग की भाषा होने पर तत्कालीन बोल-चाल की भाषा ने जन-मन मे स्थान बनाया, यह 'दूसरी प्राकृत' कहलाई। यह प्राकृत भाषा भी उस समय चार भागो मे विभक्त थी—महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और अर्धमागधी।

जब दूसरी प्राकृत का विकास अपनी चरम सीमा को पहुँच गया तो वह भी केवल शिक्षित समुदाय की भाषा बन गई। सर्वसाधारण की

भाषा मे परिवर्तन होने लगा। प्राकृत के 'शुद्ध रूप मे प्रान्तिक और प्रादेशिक शब्दो की भरमार होने लगी। इस नवीन रूप को 'अपभ्रश' का नाम दिया गया। उपर्युक्त प्राकृत के चारो रूपो से अपभ्रश के अनेक रूपो का जन्म हुआ। पर तीन अपभ्रंश प्रमुख थी—नागर, उपनागर और ब्राचड। इनमे नागर-अपभ्रश से हिन्दी का जन्म हुआ। अत अपभ्रश भाषा को ही हिन्दी की जननी कहा जायगा।

हिन्दी-साहित्य का आविर्भाव (अपभ्रंश काल)

वस्तुत अपभ्रश भाषाओ की मूल प्रवृत्ति जन साधारण की अभिव्यक्ति से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाली है। अत· हिन्दी-साहित्य का आविर्भाव अपभ्रंशावस्था से ही माना जाता है। जनश्रुति के अनुसार तो स०७७० मे पुष्य नामक एक बन्दी-जन ने इस भाषा मे एक अलकार-ग्रन्थ लिखा, किन्तु वह अब प्राप्त नही। दसवी शताब्दी मे इसके कुछ उदाहरण मिलते है। और ग्यारहवी शताब्दी मे तो इसका विशेष प्रचार हो गया था।

स० ९९० में देवसेन नामक एक जैन ग्रन्थकार ने 'श्रावकाचार' नामक एक पुस्तक लिखी। इसमे अपभ्रश का अधिक प्रचलित रूप दिखाई देता है। उसका एक दोहा इस प्रकार है :

जे जिण सासण भाषियउ, सो मई कहियउ सार।
जो पालेउ सहभाउ करि सौ तरि पावइ पार॥

इसी प्रकार सहजिया-सम्प्रदाय की कुछ पोथियो मे इस भाषा के कुछ नमूने मिलते है। उसमे से 'कान्ह' की एक कविता का पद यह है :

भणइ 'कान्ह' मन कहवि न फुहई।
निच्चल पवन घर गधर बत्तई॥

इन धर्म-ग्रन्थो के अतिरिक्त अन्यत्र भी अपभ्रश काल के साहित्य के नमूने मिलते है। बारहवीं शताब्दी मे गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह के समय मे जैनाचार्य हेमचन्द हुए। उन्होने सिद्ध हेमचन्द

शब्दानुशासन' नाम का एक व्याकरण-ग्रन्थ लिखा। उसमे भी अपभ्रंश के 'दूहों' का सग्रह था। एक 'दूहा' यह है

भल्ला हुआ जो मारिआ, बहिणि महारा कंतु।
लज्जेजं तु वयसिअहु, जह भग्गा घरु एन्तु॥

इसके पश्चात् स० १२४१ मे सोमप्रभु सूरि ने 'कुमारपाल प्रतिबोध' नामक एक काव्य लिखा। उसमे कुछ प्राचीन अपभ्रश काव्य के नमूने और कुछ उनके ही बनाये हुए दूहो (दोहों) के नमूने मिलते है। जैनाचार्य मेरुतुङ्ग द्वारा रचित 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में भी अपभ्रश के बहुत से दोहे मिलते हैं। उदाहरणार्थ एक दोहा देखिये .

जा मति पच्छई संपजइ, सा मति पहिली होइ।
मुंज भणइ मृणालवइ। विघन न वेढ़इ कोइ॥

चौदहवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे शार्ङ्गधर ने 'शार्ङ्गधर-पद्धति' की रचना की। विद्यापति की 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' भी अपभ्रश भाषा के अन्तर्गत है। विद्यापति के समय में हम हिन्दी का परिष्कृत रूप पाते है। उस समय व्यवहार में कही-कही अपभ्रश का प्रचार नही रहा था, हाँ साहित्य मे यत्र-तत्र इसकी झलक दिखाई दे जाती थी।

अपभ्रंशोत्तर हिन्दी-साहित्य का काल-विभाग

हिन्दी-साहित्य के इतिहास पर एक दृष्टि डालने से हमे पता चलता है कि समय और परिस्थितियो के साथ-साथ साहित्य मे भी परिवर्तन होता रहा है। जिस समय जैसी परिस्थिति देश की थी, वैसी ही विचार-धारा काव्य में भी प्रस्फुटित हुई। क्योकि साहित्य तो मानव-समाज की विचार-धाराओं का प्रतिबिम्ब होता है। अत. साहित्य का निर्माण भी समयानुसार हुआ। देश के विप्लवकारी वातावरण में यदि वीर रस प्रधान साहित्य लिखा गया, तो अशांति और दु ख के समय में शाति प्राप्त करने के लिए भक्ति-विषयक रचनाओ का सृजन हुआ। इसी प्रकार जब शाति और सुख के समय मे जनता की रुचि प्रेम और शृङ्गार की ओर

प्रवृत्त हुई तो उस समय शृङ्गारिक साहित्य का निर्माण हुआ। और जब देश मे विभिन्न विषम परिस्थितियाँ समान रूप से जनता के सामने आईं तो साहित्य का रूप भी बहुमुखी हो गया।

इन भिन्न-भिन्न विचार-धाराओ को दृष्टि मे रखते हुए हिन्दी-साहित्य के इतिहास को चार युगो मे विभक्त किया गया है।

१. वीर-प्रशस्ति युग—स० १०५० से १३७५ तक
२. भक्ति युग— स० १३७५ से १७०० तक
३. शृङ्गार युग— स० १७०० से १६०० तक
४. नव चेतना युग— स० १६०० से आज तक

प्रत्येक युग का नामकरण उस युग की प्रमुख प्रवृत्तियो के आधार पर ही हुआ है। जैसे आदि काल मे वीर-रस-सम्बन्धी रचनाओ की प्रधानता रही तो उसका नाम वीर-प्रशस्ति युग पडा। प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर युग का नामकरण भी स्वर्गीय श्री आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्व प्रथम किया था। यह नामकरण इस बात का द्योतक है कि किस युग मे किस प्रकार की कविताएँ अधिक लिखी गई और कवियो की प्रवृत्ति किस दिशा मे चलती रही, किन्तु इससे यह परिणाम निकालना सर्वथा भ्रमपूर्ण होगा कि वीर-प्रशस्ति युग मे विशुद्ध या एक-मात्र वीर-प्रशस्ति की ही काव्य-धारा प्रवाहित होती रही या भक्ति युग मे शृङ्गार या वीर रस का काव्य नहीं रचा गया। वीर-प्रशस्ति युग के साहित्य के अनुशीलन से विदित होता है कि इस युग मे शृङ्गार रस की धारा उतनी ही वेगवती थी जितनी वीर-प्रशस्ति की। किन्तु वीर-प्रशस्ति का क्षेत्र तथा काव्य-सृजन की प्रवृत्ति का मूल उत्स उत्साह और बलिदान भाव मे था, अत. इस युग को वीर-प्रशस्ति युग कहा जाता है। इसका यह तात्पर्य नही, है कि उस युग में एक ही प्रकार के साहित्य का सृजन होता रहा, अन्य प्रकार की रचना हुई ही नही। हमारा आशय उस समय की प्रधान प्रवृत्तियो से है। जैसी रचनाओ का बाहुल्य जिस युग मे रहा, वैसा ही उसका नाम भी पडा।

१
वीर-प्रशस्ति युग
(सं० १०५०–१३७५)

सातवी शताब्दी के पश्चात् भारतवर्ष का अखड साम्राज्य पारस्परिक सघर्ष और गृह-कलह के कारण छिन्न-भिन्न होना प्रारम्भ हो गया था। देश मे छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गए थे। इन भिन्न-भिन्न वश के राजाओ मे पारस्परिक सद्भाव और प्रेम-भावना नष्ट हो गई थी और इसके विपरीत ईर्ष्या तथा द्वेष की अग्नि सुलग रही थी। छोटे-छोटे प्रदेश के राजा होते हुए भी ये अपने को सबसे बढकर शक्तिशाली और अधिपति समझते थे और एक-दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखते थे। छोटी-छोटी बातो पर ही तलवारे खिच जाती थी, अपनी वीरता की धाक जमाने के लिए ही एक-दूसरे पर आक्रमण कर बैठना उनके लिए एक मामूली बात थी। सक्षेप मे तत्कालीन भारत गृह-युद्ध का अखाड़ा बना हुआ था।

इसी समय उत्तर-पश्चिम की ओर से भारत पर मुसलमानों के आक्रमण होने लगे थे। इनकी टक्कर भारत के उत्तर-पश्चिम प्रात के निवासियो को लेनी पडी, जहाँ हिन्दुओ के बड़े-बडे राज्य प्रतिष्ठित थे। गुप्त साम्राज्य के समाप्त होने पर भारत का पश्चिमी भाग ही भारतीय सभ्यता और बल-वैभव का केन्द्र था। कन्नौज, दिल्ली, अजमेर, अन्हलवाडा आदि बडे-बडे रजवाडे उधर ही प्रतिष्ठित थे। उधर की भाषा ही शिष्ट भाषा मानी जाती थी और साहित्य का सृजन भी उसी भाषा मे होता था। प्रारम्भिक काल के साहित्य का आविर्भाव प्राय.

उसी भू-भाग मे हुआ है, इसलिए उस साहित्य पर उस भू-भाग की जनता की चित्त-वृत्ति का नैसर्गिक प्रभाव पडा। निरन्तर मुसलमान आक्रान्ताओं से टक्कर लेने तथा आपसी युद्ध के कारण जनता की प्रवृत्ति भी युद्ध की ओर झुक गई थी। जो राजा शक्तिशाली सिद्ध होते थे वे मृगया, विवाह(स्वयवर) आदि के द्वारा भी अपने पौरुष की धाक दूसरो पर जमाने के लिए वीर-कार्य करने में तत्पर रहते थे। फलत जिस समय हमारे साहित्य का अभ्युदय होता है, वह लडाई-भिडाई तथा पराक्रम-प्रदर्शन का समय था, वीरता के गौरव का समय था। उस सनय किसी को वीरता के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नही था, इसलिए उस समय अधिकांश वीर रस-प्रधान साहित्य का ही निर्माण हुआ।

एक बात और। उस समय राजपूत राजाओ के दरबार मे अनेक चारण या भाट रहते थे। ये लोग बडी ओजस्वी भाषा म अपने स्वामी के बल-विक्रम का बखान करते थे। यह वह समय नहीं था कि राज-दरबार मे खडे होकर राजा की दानशीलता का वर्णन करके लाखो रुपये का पुरस्कार प्राप्त कर लिया जाय, बल्कि उस समय तो जो भाट या चारण किसी राजा के पराक्रम, विजय आदि का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन करता था तथा रण-क्षेत्रों मे जाकर अपनी ओजपूर्ण कविता द्वारा वीरों के हृदय मे उमगें भरता था, वही सम्मान पाता था। इन लोगो ने फुट-कल काव्य भी बनाये और प्रबन्ध रूप मे वीर-प्रशस्तियाँ भी लिखी। अतः यह समय वीर-प्रशस्तियों का था, इसीलिए इस युग को 'वीर-प्रशस्ति युग' कहते हैं।

इस युग मे दो प्रकार की रचनाएँ हुई—एक प्रबन्ध-काव्य के रूप में और दूसरी वीर-गीतो के रूप मे। सबसे प्राचीन ग्रन्थ चन्दबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' है। इसके अतिरिक्त दलपति विजय ने 'खुमान रासो' और जगनिक ने 'परमाल रासो' लिखा। वीर-गीत के रूप मे सबसे पुरानी पुस्तक नरपति नाल्ह का 'बीसलदेव रासो' है।

खुमान रासो—दलपति विजय ने इस ग्रन्थ की रचना की। इसमें

चित्तौड के राजा खुमान द्वितीय और खलीफा अलमामूँ के युद्ध का वर्णन हैं। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता मे आजकल सन्देह किया जाता है। क्योकि खुमान द्वितीय का समय स० ८७० से ९०० तक था। और आजकल जो 'खुमान रासो' मिलता है, उसमे महाराणा प्रतापसिंह तक का वर्णन है। ऐसा जान पडता है कि बाद का वर्णन अन्य कवियो ने उसमे मिला दिया है।

बीसलदेव रासो—इस ग्रन्थ की रचना स० १२१२ मे नरपति नाल्ह ने की। यह एक वीर-गीतिकाव्य है। 'बीसलदेव रासो' की भाषा राजस्थानी (डिंगल) है। यह एक साहित्यिक काव्य न होकर साधारण वर्णनात्मक गीत-मात्र है। इसमे साँभर के राजा बीसलदेव का भोज परमार की पुत्री राजमती से विवाह, उडीसा-प्रस्थान, राजमती का विरह-वर्णन आदि का सजीव उल्लेख है। निम्न लिखित पद्य से उसकी वर्णन-शैली और भाषा का परिचय हमे मिलता है -

जाइ सिंघासण बइठो छइ राइ।
डोरो छोरी, जुहारी छइ माइ॥
सेज पधारी राव की।
अतिरंग स्वामी सूँ भीली राति॥
बेटी राजा भोज की।
राजमंती रंग बीसल राव॥

पृथ्वीराज रासो—इस महाकाव्य की रचना महाकवि चन्दबरदाई ने की है। चन्दवरदाई हिन्दी के प्रथम महाकवि कहे जाते है और 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य। यह जनश्रुति के आधार पर कहा जाता है कि चन्दवरदाई दिल्ली के सम्राट् महाराजा पृथ्वीराज के राज-कवि, सखा और सामन्त थे। इनका जन्म स० १२२५ मे लाहौर में हुआ। ये भट्ट जाति के अन्तर्गत जगत गोत्र के थे। कहते है कि पृथ्वीराज और चन्द का जन्म एक ही तिथि को हुआ और मृत्यु भी दोनो की एक ही दिन एक साथ-साथ हुई। चन्द जीवन-पर्यन्त पृथ्वीराज के साथ

रहे और सच्ची मित्रता का अपूर्व परिचय दिया। ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर चन्दबरदाई का जीवन-वृत्त अभी तक स्थिर नही हो सका है, अत: प्रामाणिक रूप से हम भी कुछ नही कह सकते, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से हम 'रासो' का मूल्याङ्कन अवश्य कर सकते हैं।

'पृथ्वीराज रासो' की रचना सं० १२२५ से १२४६ के भीतर हुई। इसकी भाषा राजस्थानी-मिश्रित है। छन्दो मे प्राचीन कवित्त, दोहा, तोमर, तोटक, और आर्या आदि का प्रयोग किया गया है। इसमे निग्रत्र कुल के क्षत्रियो की उत्पत्ति से लेकर पृथ्वीराज के पकडे जाने तक का सविस्तर वर्णन है। रासो का अन्तिम भाग चन्द के पुत्र जल्हन द्वारा पूरा किया गया है। रासो मे लिखा है

पुस्तक जल्हन हत्थ दै, चलि गंजन नृप काज।

रासो के एक पद्य का उदाहरण नीचे दिया जाता है जिससे उसकी भाषा का आभास मिलता है .

प्रिय प्रिथिराज नरेस जोग लिषि कग्गर दिन्नौ।
लगन बरग रचि सरब दिल द्वाद्दस ससि लिन्नौ॥
सै ग्यारह अरु तीस साष संवत परमानह।
जो पित्री-कुल सुद्ध बरन, वरि रक्खहु प्रानह॥

युद्ध-वर्णन का एक पद्य देखिए ·

बज्जिय घोर निसान रान चौहान चहौं दिस।
सकल सूर सामंत समरि बल जन्त्र मन्त्र तिस॥
उट्ठिराज पृथिराज बाग मनो लग्ग वीर नट।
कढ़त तेग मनबेग लगत मनो बीजु झट्टघट॥
थकि रहे सूर कौतिक गगन, रंगन मगन भई शौन घर।
हृदि हरषि बीर जग्गे हुलसि, हुरेउ रंग नवरत्त वर॥

कई विद्वानो का कहना है कि 'पृथ्वीराज रासो' चन्दबरदाई का लिखा हुआ नहीं है। वे यह प्रमाण देते है कि रासो मे आये हुए संवत् शिला--लेखादि से मेल नही खाते। इसकी अनेक घटनाएँ इतिहास के विरुद्ध हैं

और अनेक स्थानो पर भाषा भी उस समय की भाषा से भिन्न है। इसके विरुद्ध कई विद्वानो का मत है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रामाणिक नही, प्रत्युत कुछ स्थान, जो पीछे के लोगो द्वारा जोडे गए है, अप्रामाणिक है, प० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने रासो की प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे यह उक्ति दी है कि रासो मे एक अन्य सवत् का प्रयोग हुआ है, जिसमे विक्रमी सवत् से ९० वर्ष का अन्तर है। रासो के सवत् ९० वर्ष कम करने से ऐतिहासिक सवत् से मेल खा जाते है। अभी इस बात पर विद्वानो मे मतभेद ही बना हुआ है।

'रासो' शब्द का अर्थ

'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ के विषय मे भी विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है। विभिन्न विद्वान् विभिन्न स्रोतो से इस शब्द का विकास मानते हैं। फ्रेंच लेखक गार्सां दतॉसी ने 'रासो' शब्द की उत्पत्ति **'राजसूय'** शब्द से मानी है। मिश्रबन्धुओ ने **'रहस्य'** शब्द को रासो का रूप दिया है। आचार्य शुक्ल जी ने **रसायण** शब्द को रासो का बीज स्वीकार किया है। राजस्थानी भाषा के विद्वान् रासो शब्द का मूल **'रासक'** कहते हैं। इस 'रासक' शब्द का ही रूपान्तर अपभ्रश तथा राजस्थानी भाषा में **'रासउ'** हुआ, कुछ लोगो के विचार से यह 'रासउ' ही रासो बन गया। प्राचीन राजस्थानी मे 'रासक' शब्द का अर्थ है—कथा-काव्य। व्रजभाषा मे भी प्रेम कथा के लिए कही-कही यह शब्द व्यवहृत हुआ है। गुजराती और राजस्थानी मे अनेक रासो-ग्रथ लिखे गए है। हो सकता है आगे चलकर यह रासो शब्द वीर-रसात्मक, युद्ध-कथापूर्ण ऐतिहासिक काव्य मे रूढ हो गया हो। कुछ विद्वान् रासो को रासौ, रसड़ा, रास्सा आदि के साम्य से भी ढूँढकर युद्ध-कथा के अर्थ मे उचित समझते है।

रासो की भाषा

रासो की भाषा के सम्बन्ध मे भी विद्वानो का पर्याप्त मतभेद दृष्टि-गत होता है। जैसा ग्रथ की प्रामाणिकता का प्रश्न है वैसा ही

भाषा का भी। रासो की विषय-वस्तु को देखकर जिस प्रकार यह निर्णय नही हो पाता कि यह बारहवी शताब्दी की रचना है उसी प्रकार यह भी कहना कठिन है कि इसमे उसी शताब्दी को भाषा का प्रयोग है। यदि अन्तिम रूप से यह निर्णय हो जाय कि रासो १७ वी शताब्दी की रचना है तो भाषा की स्थिति का निर्णय कठिन होगा। भाषा-विज्ञान की कसौटी पर भाषा की परख करने से यह किसी एक काल की भाषा प्रतीत नही होती। भाषा की प्रकृति को दृष्टि मे रखकर इसी कारण इसका काल-निर्धारण भी कठिन है। यो रासो का काल यदि तेरहवी शताब्दी माना जाय तो निश्चय ही उसकी भाषा उस काल की न होकर परवर्ती युग की ठहरती है। अपभ्र श तथा तत्कालीन प्राकृतो के जो रूप साहित्य मे प्रचलित थे उनका शुद्ध रूप रासो में नही है। रासो मे तत्सम शब्दो की प्रधानता के साथ-साथ अपभ्रश, प्राकृत, राजस्थानी, अरबी, सधुक्कडी, फारसी आदि अनेक भाषाओ का सम्मिश्रण मिलता है। स्वय कवि चन्द ने अपनी भाषा को छै भाषाओ की खिचडी कहा है:

'षट् भाषा कुरानं च पुराणं च कथितं मया।'

रासो की भाषा के विषय मे मूल प्रश्न यह है कि इसका मूल ढॉचा व्रजवाषा का है या डिंगल भाषा का। कुछ समीक्षक रासो की भाषा को पिगल—अर्थात् व्रजभाषा का प्राचीन रूप मानते है।[1] और कुछ राजस्थानी विद्वान् रासो की भाषा को डिंगल कहते है। डिंगल भाषा के विषय मे भी विद्वानो मे मतैक्य नही है। डॉ० टैसीटैरी के अनुसार डिंगल का अर्थ है—अनियमित (Irregular)। पं० हरप्रसाद शास्त्री के मत मे डिंगल शब्द डगलट (मिट्टी का ढेला) से निकला है। जो भाषा मिट्टी के अनगढ ढेले के समान हो वह डिंगल है। कुछ लोग ध्वनि-साम्य से डमरू की ध्वनि के समान ध्वनि वाली भाषा को डिंगल कहते है। दूसरे विद्वान् 'डीग मारने वाली' भाषा को डिंगल कहते है। राजस्थानी विद्वान् डिंगल का अर्थ दुरूह भाषा करते है।

---

१. देखो डॉ० श्यामसुन्दरदास का 'हिन्दी-साहित्य'।

संक्षेप में, रासो की भाषा अपभ्र श भाषा के अति निकट की डिंगल भाषा का रूप है जिसमे वाद के युग मे प्रक्षिप्तांश मिलने से पिंगल, तत्सम, अरबी, फारसी आदि अनेक रूपो का समवाय हो गया। राजस्थानी भाषा की प्रचुरता भी निस्सन्देह परवर्ती काल का ही परिणाम है। शुक्ल जी ने अपने इतिहास में इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया है—**"अपभ्र श के योग से शुद्ध राजस्थानी भाषा का जो साहित्यिक रूप था वही डिंगल कहलाता था।"** भाषा-विज्ञान की कसौटी पर रासो की भाषा शौरसेनी अपभ्रंश और आधुनिक हिन्दी के बीच की कडी है। रासो की भाषा मे तत्कालीन प्रायः सभी प्रचलित भाषाओ के शब्दो का प्रयोग कवि ने किया है। व्याकरण की दृष्टि से डिंगल को ही हम रासो की भाषा कह सकते है।

रासो की प्रामाणिकता का विवेचन

आज से कुछ वर्ष पूर्व तक यह ग्रन्थ सर्वथा प्रामाणिक इतिहासिक रचना के रूप मे स्वीकार किया जाता रहा, किन्तु इधर कुछ समय से इसकी प्रामाणिकता व इतिहासिकता के सम्बन्ध मे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विवाद उठ खडा हुआ है।

श्रीयुत महामहोपाध्याय श्यामलदास व श्रीयुत रायबहादुर महामहोपाध्याय प० गौरीशकर हीराचन्द ओझा-जैसे विख्यात ऐतिहासिक विद्वानो ने अपने अनेक अकाट्य प्रमाणो द्वारा इसे अप्रामाणिक या सदिग्ध सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। ओझाजी के तर्कों का सार इस प्रकार है

(१) इसमे दिये गए सवत् सर्वथा असत्य है, क्योकि इसमे पृथ्वीराज का जन्म १११५ में, दिल्ली में गोद आना ११२२ में और कन्नौज पर आक्रमण ११५१ मे तथा शहाबुद्दीन के साथ युद्ध ११५८ मे बताया गया है, किन्तु पृथ्वीराज के चार, जयचन्द के बारह और परमर्दीदेव के ६ प्राप्त शिलालेखो में पृथ्वीराज का समय सवत् १२२४ से १२५८ तक

का दिया हुआ है, फारसी की तवारीखो (इतिहासो) मे भी शहाबुद्दीन का पृथ्वीराज पर आक्रमण सवत् १२४८ मे ही लिखा है।

(२) 'पृथ्वीराज रासो' मे दी गई घटनाएँ भी सर्वथा कपोल-कल्पित तथा असत्य है, क्योकि हाँसी के शिला-लेख और काश्मीरी कवि जयानक-रचित 'पृथ्वीराज-विजय' नामक सस्कृत महाकाव्य के आधार पर कहा जा सकता है कि न तो सोमेश्वर का विवाह दिल्ली के राजा अनगपाल की लडकी से हुआ था और न जयचन्द ही पृथ्वीराज का मौसेरा भाई था। इनका आपस मे किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न था। साथ ही पृथ्वी-राज का अपने नाना के गोद जाना भी कल्पना-मात्र है। इसके अतिरिक्त आबू के अग्नि-कुण्ड से चार क्षत्रिय-कुलो की उत्पत्ति की कथा भी ऐति-हासिक नही कही जा सकती, क्योकि चौहान, सोलकी आदि राजपूत अपने-आपको सूर्य या चन्द्रवशी ही कहते है न कि अग्निवशी। शहाबुद्दीन भी पृथ्वीराज के हाथो शब्दबेधी बाण से नही मारा गया था। इसी प्रकार और भी कई अनैतिहासिक घटनाएँ इस ग्रन्थ मे भरी पडी है।

(३) इसमे दिये गए व्यक्तियो के नाम भी ठीक नही है, क्योकि 'पृथ्वीराजरासो' मे पृथ्वीराज की माता का नाम 'कमला देवी' दिया गया है, किन्तु 'पृथ्वीराज-विजय' काव्य तथा शिला-लेखो मे उसका नाम 'कर्पूर देवी' मिलता है।

(४) पृथ्वीराज से बहुत समय पश्चात् होने वाले चगेजखाँ, तैमूरलग आदि अनेको व्यक्तियो के नाम भी इसमे पाये जाते है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ओझा जी ने 'पृथ्वीराज रासो' को एक सर्वथा अप्रामाणिक सोलहवी शताब्दी मे रचा हुआ 'भाट भणन्त'-मात्र सिद्ध किया है।

ओझाजी के सिद्धान्तों का खण्डन

इसके विपरीत अनेक विद्वानो ने उक्त युक्तियो का खण्डन करके 'पृथ्वीराज रासो' को प्रामाणिक ठहराने का प्रयत्न किया। इन विद्वानो मे

उदयपुर के मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या, काशी के श्री डॉक्टर श्याम-सुन्दरदास बी० ए० और सोलन के महामहोपाध्याय राजगुरु श्री प० मथुराप्रसाद जी दीक्षित विशेष उल्लेखनीय हैं।

मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने सवतो के सम्बन्ध मे बतलाया कि 'पृथ्वीराज रासो' मे दिये गए सवतो में सच्चे सवतो से लगभग ९०-९१ वर्षो का अन्तर पडता है, सो ऐसा जान-बूझकर हुआ है, क्योकि

'एकादस सै पंचदह, विक्रम साक अनंद।
तिहि रिपुजय पुरहरन को भए पृथिराज नरिन्द' ॥

उक्त दोहे मे 'अनद' शब्द का अर्थ—अ = शून्य, नद = नौ अर्थात् नव्वे (वर्ष कम) किया गया है। किन्तु इस सम्बन्ध मे विचारणीय बात यह है कि—प्रथम तो 'अनद' का अर्थ ९० हो नही सकता, फिर भी यदि 'वादीतोष न्याय' से यह अर्थ मान भी लिया जाय तो भी 'वर्ष' और 'कम' किन शब्दो के अर्थ हे ? केवल 'नव्वे' कहने से ही तो कुछ काम नही चल सकता और दूसरी बात यह है कि किसी प्रचलित सवत् मे से नव्वे वर्ष कम क्यो किये जायँ ? 'नन्दो' के शूद्र राज्य के नव्वे वर्षो को भाटो ने द्वेषवश अपने सवत् मे से निकाल दिया, यह कहना तो बडा ही हास्यास्पद है। क्योकि एक तो आज तक ऐसा कभी हुआ नही, दूसरे नदो का राज्य विक्रम से पूर्व ही समाप्त हो चुका था, इसलिए उसके नव्वे वर्षो को विक्रम-सवत् मे से निकालने की कल्पना सर्वथा अमान्य ही है। साथ ही सवतो के अतिरिक्त अधिकाश घटनाएँ, जो इतिहास-विरुद्ध भरी पडी हे उनका कुछ सन्तोषजनक समाधान नही दिया जा सकता। इसी प्रकार डॉक्टर श्यामसुन्दरदास जी ने भी कोई बुद्धिग्राह्य अकाट्य तर्क रासो के पक्ष मे उपस्थित नही किया। उनके कथन का सार भी यही है कि महाभारत और पुराणो की भाँति 'पृथ्वीराज रासो' में भी समय-समय पर बहुत-कुछ प्रक्षेप होता रहा, अत उसमें नवीन नाम व अनैतिहासिक घटनाएँ आ गईं। असली व प्राचीन 'पृथ्वीराज रासो' अवश्य पृथ्वीराज के समय मे बना होगा।

जगनिक—इनका जन्म सवत् १२३० है। ये कालिंजर के राजा परमाल के यहाँ भाट थे। इन्होने 'आल्ह खड' की रचना की है, जिसमे महोबा के प्रसिद्ध वीर आल्हा और ऊदल के वीर-चरित का विस्तृत वर्णन है। इनके वीर-गीत आज भी उत्तर भारत मे उत्साह से गाये जाते है। 'आल्ह खड' की भाषा वर्तमान कालिक बैसवारे की है, इसलिए उसे जगनिक-कृत नही माना जाता। कुछ विद्वानो का मत है कि जगनिक की वास्तविक कृति 'परमाल रासो' थी, जो अब उपलब्ध नही है। बाद मे उसी के आधार पर 'आल्ह खड' के वीर-गीत बनाये गए। आल्हा का प्रचार देश के अनेक प्रातो मे आज भी है। वर्तमान युग के आल्हा-गीतो पर नवीन युग की छाप तो है पर वे गीत प्राचीन भाषा का स्वरूप प्रस्तुत नहीं करते। यहाँ हम पहले जगनिक के आल्हा-गीत का एक उदाहरण प्रस्तुत करके बाद मे आधुनिक आल्हा-गीत भी प्रस्तुत करेंगे। जगनिक के आल्हा-गीत की कुछ पक्तियाँ निम्न है :

मुर्चा लौटो तब नाहर को, आगे बढ़े पिथौरा राय।
नौ सौ हाथिउ के हलका मां, अकले घिरे कनौजी राय॥
सात लाख से चढ्यो पिथौरा नदी बेतवा के मैदान।
आठ कोस लौं चले सिरोही, नाही सूझै अपुन बिरान॥

वर्तमान युग के आल्हा-गीत का यह उदाहरण भी पठनीय है

पटक पादुका पहनो प्यारे, बूट इटाली का लुकदार।
डालो डबल वाच पाकट में, चमके नैन कंचनी चार॥
रख दो गाँठ गठीली लकुटी, छाता बेंत बगल में यार।
मुरली तोड़ मरोड़ बजाओ, बाँकी बिगुल सुने संसार॥
वैनतेय तज व्योम-यान पर, करिये चारों ओर विहार।
फक-फक फूं-फूं फूँको चुरटें, उगले गाल धुएँ की धार॥
यों उत्तम पदवी फटकारो, माधो मिस्टर नाम धराय।
बाँटो पदक नई प्रभुता के, भारत जाति-भक्त हो जाय॥

(शकर)

केदार भट्ट (१२२४–१२४२)—जिस प्रकार चन्द ने पृथ्वीराज को कीर्तिमान किया है, उसी प्रकार केदार भट्ट ने कन्नौज-नरेश जयचन्द का यश गाया है। इन्होने 'जयचन्द-जस-चंद्रिका' नामक महाकाव्य बनाया है।

अन्य फुटकल रचनाएँ

वीर-प्रशस्ति युग के अन्त में हमे जनता की वहुत-कुछ असली वोल-चाल और पद्यो की भापा के वास्तविक रूप का पता चलता है। इस काल के दो कवियो—खुसरो और विद्यापति—की रचनाओं मे हमे इसका आभास मिलता है। पश्चिम की वोल-चाल, गीत, मौखिक पद्य आदि का नमूना अमीर खुसरो की कृति में मिलता है और पूरव का नमूना विद्यापति की पदावली मे। इसके पश्चात् फिर भक्ति युग के कवियो ने प्रचलित देश-भापा और साहित्य के वीच पूरा-पूरा सामजस्य स्थापित करके हिन्दी-साहित्य का चरम विकास किया।

खुसरो—ये दिल्ली के रहने वाले थे। इनका रचना-काल स० १३४० के आस-पास माना जाता है। ये फारसी और अरबी के भी वडे विद्वान् थे। इन्होने हिन्दी मे भी कविता की। इनकी पहेलियाँ और मुकरनियाँ वहुत प्रसिद्ध है। सवसे पहले इन्ही की कविता मे शुद्ध खडी वोली का आभास मिलता है। कुछ पहेलियो का नमूना देखिए

एक थाल मोती से भरा, सवके सर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाल फिरे, मोती उससे एक न गिरे॥
(आकाश)

आदि कटे से सवको पाले, मध्य कटे से सवको घाले।
अन्त कटे से सवको मीठा, सो खुसरो मै आँखो दीठा॥
(काजल)

इनके शृङ्गार-रस के दोहे और गीत भी देखिए .

खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोऊ भरा इक रंग॥

दोहे और गीतो में व्रजभाषा का प्रयोग किया गया है .

मोरा जोवना नवेलरा भयो है गुलाल।
कैसे गर दीनी वलम मोरी माल॥
सूनी सेज डरावन लागे, बिरहा अग्नि मोहि डस-डस जाय।

विद्यापति—ये तिरहुत (विहार) के राजा शिवसिंह के राज-कवि थे। इनका रचना-काल सं० १४६० के आस-पास माना जाता है। इन्होंने हिन्दी के अतिरिक्त अपभ्रंश मे भी 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति-पताका' नामक दो पुस्तके लिखी। 'विद्यापति की पदावली' एक अत्यन्त मधुर गीति-काव्य है। इस रचना के कारण ही ये 'मैथिल कोकिल' कहलाए। 'पदावली' की रचना शृङ्गारिक काव्य की दृष्टि से की गई है। 'विद्यापति' ने यों तो १४ ग्रथो का प्रणयन किया, किन्तु उनकी कीर्ति को अमर बनाने मे उनकी पदावली ही प्रधान है। 'विद्यापति की पदावली' को देखकर आलोचको ने उनकी भक्ति-भावना को शृङ्गारी भावना से ओत-प्रोत पाया है। जयदेव कवि ने जिस प्रकार सस्कृत के कृष्ण-काव्य को माधुर्य-पूर्ण बनाकर मधुरा-भक्ति का सृजन किया, ठीक उन्ही पद-चिह्नो पर विद्यापति ने भी लोक-भाषा मे राधा-कृष्ण की भक्ति प्रस्तुत करके अपने हृदय के मधुरतम भावो को व्यक्त किया। फलत शृङ्गारमयी प्रवृत्ति की उसमे छाप आ गई। इनके पदो का नमूना नीचे दिया जाता है

माधव की कहब सुन्दरि रूपें।
कतेक जतन बिहि आनि समारल
देखल नयन सरूपे॥
पल्लवराज चरन-जुग सोभित
गति गजराज क भाने।
कनक-कदलि पर सिंह समारल
ता पर मेरु समाने॥
मेरु उपर हुई कमल फुलायन
नाल बिना रुचि पाई।
मनि-मय हार धार बहु सुरसरि
तओ नहिं कमल सुखाई॥

सरस वसन्त समय भल पावलि, दछिन पवन बह धीरे। ·
सुमनहु रूप वचन इक भाषिय, मुख से दूरि करु चीरे॥
तोहर वदन सम चाँद होत नहिं, कैयो जतन बिह केला।
कै बेरि काटि बनावल नव कै, तैपो तुलत नहि मेला॥
लोचन तुग्र कमल नहिं भय सव, से जग के नहिं जाने।
से फिर जाय लुकैलन्ह जल भएँ, पंकज निज अपमाने॥

२
भक्ति युग
(सं० १३७५-१७००)
सामान्य परिचय

हिन्दी का वीर-प्रशस्ति युग एक युद्ध-कालीन सघर्षमयी परिस्थितियो का युग था। देश मे अशान्ति और लडाई-झगडे का वातावरण व्याप्त था। किन्तु युद्ध और सघर्ष की तीन शताब्दियो के बाद मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो जाने पर राजनैतिक वातावरण मे अपेक्षाकृत शान्ति उपस्थित हुई। जनता को शान्ति और सन्तोष की साँस लेने की घडी आई। उधर राजपूत राजाओ की शक्ति भी क्षीण हो चुकी थी; उनकी वीरता की गाथाएँ गाने का समय समाप्त हो चुका था। परस्पर लड़ने वाले स्वतन्त्र राज्य भी अब नही रह गए थे। विदेशी शासन की स्थापना के कारण हिन्दुओ के ऊपर एक आतक और निराशा का साम्राज्य छा गया था। मुसलमान शासक उन पर मनमाना अत्याचार करते थे। उनके सामने उनके देव-मन्दिर गिराए जाते, मूर्तियाँ तोडी जाती, और पूज्य-पुरुषो का अपमान होता था। वे विवश थे, असमर्थ थे और एकदम निराश थे। इस भीषण राजनैतिक परिवर्तन से हिन्दू जाति पर बहुत दिनो तक उदासीनता छाई रही। हिन्दू जाति विषण्ण भाव से भक्ति का अवलम्बन लेने के सिवा और कुछ आश्रय न खोज सकी। अपने गौरव से हताश जनता ने भगवान् का सहारा लिया। वही तो है निर्बल का बल। इसके अतिरिक्त सतप्त हिन्दू जनता और कर भी क्या सकती थी?

हिन्दू जाति में भक्ति-भावना का चिर अनादि से प्राधान्य रहा है, अत उसी भक्ति को इस सकट-वेला मे भी अपना अवलम्ब बनाकर हिन्दुओ ने भगवान् का स्मरण प्रारम्भ किया।

इस राजनैतिक परिवर्तन ने जनता का ध्यान भक्ति की ओर आकर्षित करने के साथ-साथ भक्त कवियो को भी जन्म दिया। अथवा यो कहिए कि वीर-प्रशस्ति युग के वीर महात्माओ ने भक्त महात्माओ के रूप मे ही जैसे अवतार लिया हो। इन भक्त कवियो ने दुखी जनता को धैर्य देकर उसे सुख-शान्ति का भक्ति का मार्ग दिखाया। भक्ति के इस आन्दोलन मे कुछ ईश्वर-भक्त मुसलमानो ने भी योग दिया। इन लोगो का उद्देश्य भक्ति-मार्ग द्वारा हिन्दू-मुसलमानो के बीच उत्पन्न हुई वैमनस्य-भावना को दूर करना था। भक्ति का यह आन्दोलन विभिन्न धाराओ के रूप मे प्रारम्भ हुआ। दक्षिण मे स्वामी माधवाचार्य (स० १२४५-१३२३) ने अपना द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय चलाया। उधर पूर्व भाग मे जयदेव जी कृष्ण-प्रेम की धारा बहा रहे थे। उत्तर मे स्वामी रामानुजाचार्य के अनुयायी स्वामी रामानन्द जी रामोपासना पर जोर दे रहे थे। दूसरी ओर श्री वल्लभाचार्य ने कृष्णोपासना मे जनता को रसमग्न कर दिया। इस प्रकार रामोपासक एव कृष्णोपासक वैष्णव सम्प्रदायो की भक्ति-क्षेत्र मे नीव पडी। ये भक्त कवि राम और कृष्ण के सगुण रूप की उपासना मे विश्वास करते थे, अत. ये सभी सगुणोपासक कहलाते है।

यह तो हुई सगुणोपासना की बात। दूसरी ओर निर्गुणोपासना का क्षेत्र तैयार हो रहा था। वीर-प्रशस्ति युग से ही वज्रयानी सिद्ध और कापालिक आदि देश के पूर्वी भागो मे और नागपथी जोगी पश्चिमी भाग में अपना प्रचार कर रहे थे। इन लोगो मे जाति-पाँति का भेद-भाव न होने के कारण विद्वान् अनुयायियो का अभाव था। ये अपनी सिद्धियो और रहस्यमयी वाणियो द्वारा साधारण जनता पर मोहक प्रभाव डालने में समर्थ थे। इन लोगो का कहना था कि अर्थ-शून्य बाह्य विधि-विधान,

पूजा-पाठ, तीर्थाटन, पर्व-स्नान आदि सब व्यर्थ हैं तथा अन्तः साधना से सर्व व्यापक परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। आगे चलकर कबीर पर इन्ही लोगो का प्रभाव पडा। औपचारिक बाह्य साधना-पद्धति की अवहेलना करके शुद्ध ज्ञान पर इन्होने बल दिया। अत इस सम्प्रदाय को हम ज्ञानाश्रयी सम्प्रदाय कह सकते है। ज्ञान द्वारा ईश्वर-प्राप्ति इस सम्प्रदाय का उद्देश्य था।

निर्गुणोपासना की एक दूसरी धारा भी चली। इन योगियो के साधना-मार्ग मे रागात्मक भक्ति-भावो का अभाव था, इसलिए य निराश जनता की चित्त-वृत्ति को आकर्षित नही कर सकते थे। इसी समय महाराष्ट्र के एक प्रमुख भक्त नामदेव ने हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए ईश्वर-भक्ति का एक सामान्य मार्ग खोजा—प्रेम द्वारा निराकार ईश्वर की प्राप्ति। सूफी मत के मुसलमान भक्त भी इसी प्रेम-मार्ग के अनुयायी थे। सूफी सम्प्रदाय मे प्रेम द्वारा ईश्वर-प्राप्ति का वर्णन उसी प्रकार किया गया है जिस प्रकार सासारिक प्रेम का वर्णन किया जाता है, अत· सूफी भक्त निर्गुण धारा के प्रेम-मार्गी भक्त कवि है। ये ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी निर्गुण मार्ग एकेश्वरवाद की नीव पर खड़े हुए थे। सगुणोपासक भक्त ईश्वर को साकार मानकर उसकी भक्ति करते थे। इस प्रकार भक्ति की दो धाराएँ इन चार शाखाओ मे एक साथ प्रवाहित हुईं—

१—निर्गुण धारा—(ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी)।

२—सगुण धारा—(रामोपासक और कृष्णोपासक)।

निर्गुण धारा : ज्ञानमार्गी

गोरखनाथ—ये नाथ पथियो मे बड़े प्रसिद्ध सिद्ध हुए है। इनके उपदेश तात्कालिक हिन्दी-गद्य मे ही है, साथ ही इन्होने कुछ पद्य भी लिखे है। गोरखनाथ जी खडी बोली के प्रथम लेखक थे। इन्होने ४० के लगभग ग्रन्थ लिखे हैं। गोरखनाथ की रचनाओ का समय १४०७ के

लगभग माना जाता है। इनका 'सिष्ट-प्रमाण' खड़ी बोली गद्य का प्रथम ग्रन्थ था। इनकी भाषा का नमूना नीचे दिया जाता है—

"श्री गुरु परमानन्द तिनको दंडवत है। है कैसे वे परमानन्द, आनन्दसरूप है शरीर जिन्हके नित्य गायें तें चेतन्नि अरु आनन्दभाव होतु है। ······स्वामी तुम्ह सतगुरु, अम्ह तो सिय। सबद एक पूछिबा, दया करि कहिबा, मनि न करब रोष।"

कबीरदास—निर्गुण धारा की ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीर अपनी नूतन साधना-पद्धति और क्रान्तिकारी विचार-धारा के कारण मध्य युग के सबसे अधिक प्रखर प्रतिभा वाले विचारक, तत्त्व-वेत्ता, सुधारक और पथ-प्रदर्शक व्यक्ति हैं। इनका जन्म सवत् १४५६ मे और मृत्यु १५७५ मे हुई। इनके जन्म के सम्बन्ध मे किंवदन्ती है कि ये एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से महात्मा रामानन्द के आशीर्वाद के फल-स्वरूप उत्पन्न हुए थे। लोक-लाजवश माता ने शिशु को एक तालाब के किनारे फेंक दिया। दैवात् नीरू नाम का जुलाहा अपनी स्त्री सहित उधर आ निकला तथा वह इन्हे उठाकर घर ले गया और उसने इनका पालन-पोषण करके बड़ा किया।

वाल्य-काल से ही ये विरक्त थे। बचपन में ही इनके मन में राम-नाम के प्रति प्रेम का अकुर उत्पन्न हो गया था। बड़े होने पर इन्होने रामानन्द जी को अपना गुरू बनाकर उनसे ही राम-नाम का मन्त्र लिया, जो इनके जीवन की निधि हो गई। कबीर कोरे अनपढ थे, किसी पाठ-शाला मे बैठकर कबीर ने अक्षराभ्यास तक भी नही किया था। पढने-लिखने को वे जीवन की चरम सफलता के लिए आवश्यक भी नही समझते थे—अपने अशिक्षित होने के विषय मे उन्होने स्वय लिखा है—**"मसि कागद छूई नहीं, कलम गही नहिं हाथ।"** किन्तु अक्षराभ्यास के बिना भी वे पूरे ज्ञानी और तत्त्व-दर्शी थे। इस तत्त्व-ज्ञान का कारण उनका 'बहुश्रुत' होना था। साधुओ की सगति से इन्होने अपार ज्ञान संचय कर लिया और हिन्दू-मुसलमानो को सामान्य रूप से उपदेश देने

में आजीवन संलग्न रहे। बहुत से लोग इनकी मृत्यु के बाद इनके अनुयायी हो गए, जो 'कबीर-पथी' कहलाए।

कबीर जाति-पाँति और रूढिवाद के कट्टर विरोधी थे। इन्होने हिन्दू और मुसलमान दोनो को उनकी सकीर्णता पर खूब फटकारा ह। इन्होने मूर्ति-पूजा, मिथ्या आडम्बर और छूत-छात का जोरदार खण्डन किया था। मूर्ति-पूजा के लिए इन्होने कहा है :

कबिरा दुनिया बावरी, पाथर पूजन जाय।
घर की चाकी कोई न पूजै, जाका पीसा खाय॥

कबीर की दृष्टि मे हिन्दू-मुस्लिम का भेद-भाव न था, वे मानव-मात्र की एकता मे विश्वास करते थे और उसको दृष्टि मे रखकर वे अपने मन्तव्यो को जनता के सामने रखते थे। इसको ध्यान मे रखकर ही उन्होने एकेश्वरवाद का उपदेश दिया

एक निरंजन अल्लह मेरा।
हिन्दू तुरक दोउ नहिं तेरा॥
राखूँ बरत न मुहरम जाना।
तिस ही सुमिरौं जो रहे निदाना॥

कही वे पण्डित को ललकारते नज़र आते है तो कही मुल्लाओ पर गरम होते है .

पाँडे कौन कुमति तोहि लागी।
तू राम न जपहि अभागी॥

कबीर स्पष्टवक्ता थे, इसलिए उनसे पण्डित और मुल्ला सभी नाराज़ थे। इसका यह अर्थ नही है कि उनके हृदय मे प्रेम की भावना नही थी। वे भावुक भी थे। अपने दोहो मे उन्होने प्रेम के सूक्ष्म तत्त्वो का मार्मिक वर्णन भी किया है :

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देय ले जाय॥

ईश्वर, जीव और ससार के रहस्यो का उद्घाटन करने के लिए कबीर

ने वाह्य साधना का प्रचार नही किया, किन्तु आभ्यन्तर साधना और आचरण की पवित्रता पर जोर देकर उन्होने आत्म-तत्त्व के रहस्य को सुलझाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। इस प्रयत्न मे ईश्वरीय तत्त्वो का जो बोध हुआ वह इनकी अटपटी वाणी से अभिव्यक्त होकर जनता तक आया, किन्तु वह वाणी ऐसी विशृङ्खल तथा अस्पष्ट थी कि उसमे अभिव्यग्य का वोध सरलता से नही होता था। यथार्थ मे जब मानव अपने सीमित ज्ञान के आधार पर उस असीम, अगोचर तथा सर्वशक्तिमान् का वर्णन करता है तो उसकी यही दशा हो जाती है। उस वाणी को ही रहस्यमयी वाणी कहने लगते है। परमात्मा की उस अनुभूति को मानव अपनी स्थूल वाणी से कह ही नही सकता—वह तो गूँगे का गुड हो जाती है।

कवीर की वाणी मे रहस्यवाद का पुट भी मिलता है

> **लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।**
> **लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥**
> **सपने में प्रीतम मिले, सोता लिया जगाय।**
> **आँख न खोलूँ डरपता, मत सपना ह्वै जाय॥**

कवीर की वाणी 'बीजक' नामक ग्रन्थ मे सगृहीत है। इसके तीन भाग है— सब्द, साखी और रमैनी। इनकी भाषा में खडी बोली, अवधी, पूर्वी आदि कई भाषाओ का सम्मिश्रण है। कही-कही ब्रजभाषा का भी समावेश है। कबीर की रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से ऊँची नही है। फिर भी उनमे भावपक्ष की प्रधानता है। इनकी कविता का चमत्कार काव्य के ऊपरी नियमो मे नही, वरन् इनकी हृदय की सचाई और तीव्र अनुभूति में निहित है। ईश्वरीय सम्बन्ध की रहस्यमयता को इन्होने बड़ी सूक्ष्मता से व्यक्त कर दिखाया है।

कबीर की मृत्यु स० १५७५ मे मगहर मे हुई। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध मे यह प्रसिद्ध है कि इन्होने जान-बूझकर काशी में मरना उचित नही समझा और मगहर चले गए, क्योकि वहाँ मरने से नरक मिलता है।

वे मरते समय तक अंध-विश्वासो को चुनौती देते रहे और उन पर सक्रिय चोट भी करते रहे। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध मे यह दोहा प्रचलित है .

पन्द्रह सौ पिचहत्तरैं, कियो मगहर को गौन।
ज्येष्ठ सुदी एकादशी, मिली पौन में पौन॥

रैदास—ये जाति के चमार थे और रामानन्दजी के शिष्यो मे थे। **'कह रैदास खलास चमारा'**। इनको मीराबाई का गुरु कहा जाता है। इनकी वाणी 'गुरु ग्रन्थ साहब' मे सगृहीत है। कबीर की भाँति इनका भी सम्प्रदाय है। इनकी कविता का नमूना देखिये :

प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी, जाकी अँग-अँग बास समानी।
प्रभु जी तुम वन-घन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभु जी तुम माली हम बागा, जैसे सोनहिं मिलत सुहागा।
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै 'रैदासा'॥

धर्मदास—ये जाति के वैश्य थे। बचपन से ही इनकी प्रवृत्ति भक्ति की ओर थी। बाद मे ये कबीरदास के शिष्य हो गए। उनकी मृत्यु के पश्चात् ये ही उनकी गद्दी के अधिकारी हुए। कबीर की साधना-पद्धति को धर्मदास ने अपनी रचनाओ तथा पन्थ द्वारा पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। इन्होने अनेक पद रचे है। इनकी रचनाओ पर कबीर की ऐसी गहरी छाप है कि दोनो को पृथक्-पृथक् करके देखना कही-कही कठिन हो जाता है। उनका निम्न पद इसका ज्वलन्त उदाहरण है :

झरि लागे महलिया गगन घहराय।
खन गरजै, खन बिजुली चमकै, लहरि उठै सोभा बरनि जाय।
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम आनन्द ह्वै साधु नहाय॥
खुली किवरिया मिटी अँधरिया, धन सतगुरु जिन दिया लखाय।
'धरमदास' बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरन में रहत समाय॥

गुरु नानक—इनका जन्म स० १५२६ मे लाहौर जिले के अन्तर्गत तलवण्डी नामक ग्राम मे हुआ था। इनके पिता का नाम कालराम था और

वे जाति के खत्री थे। ये बचपन से ही विरक्त थे और अपना अधिकाश समय भगवद्भजन तथा साधुओ की सगति मे बिताते थे। बाद मे ये घर-बार छोडकर साधु हो गए। गुरु नानक ने भी एक पथ चलाया, जो 'सिख-सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध है। कबीर के बाद सम्प्रदाय-प्रवर्तन मे गुरु नानक का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नानक सत-साधना के अन्तर्गत अपना विशिष्ट स्थान इसलिए भी रखते है कि आपकी शिष्य-परम्परा मे जो दस गुरु हुए उन्होने भोग-विलास को तिलाजलि देकर भारतीय गौरव की रक्षा के लिए विदेशी शासको से लोहा लिया और अपने शौर्य-पराक्रम का अच्छा परिचय दिया। गुरु नानक ने देशाटन द्वारा अपनी वैराग्य-भावना की धाक दूर-दूर तक जमाई थी। नानक कवि नही साधक थे, अत काव्य के अभाव मे भी उनकी वाणी मे आत्म-तेज है। इनकी मृत्यु सवत् १५९६ मे हुई। इनके दो दोहे नीचे दिये जाते है

हिरदे जिनके हरि वसे, से जन कहियहि सूर।
कही न जाई 'नानका', पूरि रह्या भरपूर॥
मन की दुविधा ना मिटै, मुक्ति कहाँ ते होय।
कउड़ी बदले 'नानका', जन्म चल्या नर खोय॥

दादूदयाल—इनका जन्म गुजरात के अन्तर्गत अहमदाबाद मे हुआ था। कवीर की भाँति इनके नाम से भी 'दादू पथ' प्रचलित है। दादू-पन्थी निराकार के उपासक है और 'सत्तनाम' कहकर अभिवादन करते है। दादू की वाणी हिन्दी के अतिरिक्त राजस्थानी, गुजराती और पजाबी मे भी पाई जाती है। इनकी भाषा पश्चिमी हिन्दी है, जिसमे राजस्थानी का अच्छा पुट है। इन्होने कबीर की तरह खडन-मडन नही किया प्रत्युत सीधी-सादी वाणी मे अपनी बात जनता से कहते रहे। इनकी रचना का उदाहरण देखिए .

छवि दूध में रम रहा, व्यापक सव ही ठौर।
दादू वकता बहुत है, मथि काढ़ें ते और॥

दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर में धरा न माहरा, जो कर दिया न होय॥

सुन्दरदास—इनका जन्म स० १६५३ मे जयपुर राज्य के अन्तर्गत दौसा नगर मे हुआ था। ये जाति के खडेलवाल वैश्य थे। इन पर दादू-दयाल का बहुत प्रभाव पडा था। सुन्दरदास अन्य सत कवियो की भाँति अनपढ़ नही थे। ये काव्य-रीति से भी परिचित थे। 'सुन्दर विलास' इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। इनकी रचनाएँ साहित्यिक और सरस है। इनकी रचनाओ मे चमत्कार और अनुप्रास आदि अलकार भी मिलते है। इन्होने 'चित्र-काव्य', 'छत्र-प्रबन्ध', 'कमल-प्रबन्ध' तथा 'नाग-बन्ध' आदि ग्रन्थ लिखे है, जो इनके काव्य-रीति से अभिज्ञ होने के निदर्शन हैं। इनकी रचना का नमूना नीचे दिया जाता है :

पुरुष प्रकृति संयोग, जगत उपजत है ऐसे।
रवि-दर्पण दृष्टान्त अग्नि उपजत है वैसे।
सुई होय चैतन्य यथा चुम्बक के संगा।
यथा पवन संयोग उदधि में उठइ तरंगा॥
अरु यथा सूर संयोग पुनि, चक्षु रूप को गहत है।
यों जड़ चेतन सयोग से, सृष्टि उपजती रहत है॥

मलूकदास—ये इलाहाबाद जिले के कडा नामक ग्राम के निवासी थे। अन्य सन्त कवियो की अपेक्षा इनकी भाषा शुद्ध और सुसंस्कृत थी। इन्हे भी छन्दो का ज्ञान था। इन्होने 'रत्न खान' और 'ज्ञान बोध' नामक दो पुस्तके लिखी है। आलसियो तथा अहदियो के सम्बन्ध मे इनका यह दोहा बड़ा प्रसिद्ध है :

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास 'मलूका' यूँ कहैं, सबके दाता राम॥

अक्षर अनन्य—इनका जन्म संवत् १७१० के आस-पास बताया जाता है। ये दतिया रियासत के अतर्गत सेनुहरा ग्राम के कायस्थ थे। कुछ दिनो तक ये दतिया के राजा पृथ्वीचन्द के दीवान रहे, फिरविरक्त

होकर चले गए। महाराजा छत्रसाल ने इन्ही से दीक्षा ली थी। इन्होने योग और वेदान्त पर कई ग्रन्थ लिखे है, जिनमे 'राज योग','विज्ञान योग', 'ध्यान योग','सिद्धान्त वोध' और 'ब्रह्म ज्ञान' उल्लेखनीय है। इन्होने 'दुर्गा सप्तशती' का पद्य मे अनुवाद भी किया है। सन्त कवियो मे अक्षर अनन्य अपनी विद्वत्ता और शास्त्र-ज्ञान के लिए प्रसिद्ध है। काव्य-रीति से परिचित होने की अपेक्षा आप शास्त्रो से अधिक परिचित थे।

इनके अतिरिक्त ज्ञानमार्गी शाखा मे जगजीवन साहव, पलटूदास, तोंवरदास, तुलसी साहव, भीखा साहव आदि अनेक सन्त हुए है। इनमे से कोई वेदान्त का, कोई साधना-तत्त्व का और कोई प्रेम-तत्त्व का अनुयायी हुआ। यद्यपि साहित्यिक दृष्टि मे इन सन्त कवियो की रचनाओ का कोई महत्त्व नही है तथापि हिन्दू-मुस्लिम-सास्कृतिक-सघर्ष काल मे इनकी शान्तिमयी वाणी ने सवको प्रेम से प्लावित किया। निम्न श्रेणी की जनता पर इनका अधिक प्रभाव पडा। इनके द्वारा दलित जातियो के जीवन मे उत्साह और शक्ति का सचार हुआ। इस दृष्टि से इन सन्त कवियो का हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे अपना विशिष्ट स्थान है। सन्त कवियो की परम्परा का विश्लेषण करते समय हमे यह अवश्य ध्यान मे रखना चाहिए कि ये सन्त कवि काव्य-रचना मे लीन होकर उपदेश और साधना मे लीन रहते थे। इनका उद्देश्य काव्य-साधना नही था। अत काव्य-शास्त्र की कसौटी पर इनकी कृतियाँ भले ही प्रथम श्रेणी की सिद्ध न हो, किन्तु भावना और भक्ति की कसौटी पर वे प्रथम श्रेणी की ही है।

सूफी मत : प्रेममार्गी

सूफी मत का प्रचलन मुहम्मद साहव से प्राय दो सौ वर्ष बाद हुआ। सूफी शब्द का अर्थ है ज्ञानी। सूफी लोग पीर (गुरु) को अधिक मानते है। ये ईश्वर और जीव में प्रेम का सम्वन्ध मानते है। सूफी फकीर सगीत के प्रेमी होते है। सूफी शब्द से श्वेत या सफेद का भी आभास

मिलता है, यह भी इस बात का द्योतक है कि सफेद ऊन के शुभ्र वसन धारण करके सूफी फकीर अपने अन्त करण की शुभ्रता का बाह्य परिधान से भी परिचय देना चाहते हैं। जिस प्रकार उनका बाह्य वेश सफेद और स्वच्छ है वैसे ही उनका अन्त.करण भी स्वच्छ और दोष-रहित निर्मल है। इनमे अन्य मुसलमानो की भाँति कट्टरता नही। भारत मे सूफी कवियो की रचनाओ मे ईश्वरीय प्रेम का वर्णन होता है। जिसका बाह्य रूप लौकिक प्रेम के रूप मे आभासित होता है। इनकी शैली फारसी की मसनबियों के ढग की होती है। नीचे कुछ सूफी कवियो का उल्लेख किया जाता है—

शेख कुतबन—इनका समय सवत् १५५० के समीप माना जाता है। ये चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे। इन्होने सवत् १५५८ मे 'मृगावती' काव्य की रचना की। इसमें चन्द्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कचनपुर की राजकुमारी की प्रेम-कथा का वर्णन है। कथा के बीच-बीच में प्रेम-मार्ग की कठिनाइयो का अच्छा चित्रण किया है। कई स्थानो मे रहस्यवाद की झाँकी मिलती है। इसकी भाषा अवधी है।

मंझन—इनका रचना-काल सं०१५५० से १५९५ तक माना गया है। इन्होने 'मधु मालती' नामक आख्यान-काव्य लिखा है। इसमे कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर का महारस नगरी की राजकुमारी मधुमालती के साथ पारस्परिक प्रेम और वियोग का वर्णन है। यह काव्य बड़ा सुन्दर और सरल है। इसकी भाषा जायसी के 'पद्मावत'-जैसी है। इसमे विरह-वर्णन का अच्छा ढग है :

रतन कि सागर सागरहिं, गज मोती गज कोइ।
चन्दन वन-वन ऊपजै, विरह के तन-तन होइ॥

मालिक मोहम्मद जायसी—प्रेममार्गी कवियो मे इनका सबसे उच्च स्थान है। इनके जन्म-सवत् का ठीक-ठीक पता नही चलता। ये प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मुहीउद्दीन के शिष्य थे और जायस में रहते थे।

'पद्मावत' मे इन्होने स्वय बताया है

जायस नगर धरम अस्थानू ।
जहाँ कीन्ह कवि कथा बखानू ॥

'पद्मावत' इनका महाकाव्य है, जिसका रचना-काल स० १५५७ है। 'पद्मावत' में चित्तौड के राजा रतनसेन और सिंहल द्वीप की राज-कन्या पद्मावती की प्रेम-गाथा का विस्तृत वर्णन है। यह प्रेममार्गी गाथाओ में सबसे श्रेष्ठ काव्य माना जाता है। इसमे विरह-वियोग का बड़ा मार्मिक वर्णन है :

नहिं पावस उहि देसड़ा, नहिं हेमन्त बसन्त ।
नहिं कोयल न पपीहड़ा, जेहि सुन आवै कन्त ॥

'पद्मावत' का विषय आध्यात्मिक है, किन्तु इसे सूफियो की शैली के अनुसार लौकिक प्रेम-गाथा के रूप मे लिखा गया है। इस रहस्य का वर्णन अन्त में मिलता है .

तन चित उर मन राजा कीन्हा ।
हिय सिंहल बुधि पद्मिनी चीन्हा ॥
गुरु सूआ जेहि पन्थ दिखावा ।
बिन गुरु जगत का निरगुन पावा ॥
नागमती यह दुनिया धन्धा ।
बाँचा सोइ न एहि चित बन्धा ॥
राघव दूत सोइ सैतानू ।
माया अलाउद्दीन सुलतानू ॥

प्रेममार्गी सूफी शाखा के कवियो मे जायसी का स्थान प्रबन्ध-काव्य की रचना करने के कारण बहुत प्रसिद्ध है। प्रबन्ध-काव्य के लिए जिन तत्त्वो की अनिवार्य आवश्यकता होती है वे सभी गुण जायसी के 'पद्मावत' में उपलब्ध होते है। कथानक के साथ समासोक्ति-पद्धति को स्वीकार करके कवि ने अपनी सूझ-बूझ का अच्छा परिचय दिया है। महाकाव्य के लिए आवश्यक ऋतु-वर्णन, बारहमासा, नख-शिख, सयोग-

वियोग, शृङ्गार, प्रकृति के आलम्बन तथा उद्दीपन पर रूपो का वर्णन 'पद्मावत' मे प्रचुर परिमाण मे मिलता है। कवि का ध्यान हृदय के रागात्मक सम्बन्धो की ओर भी पूर्ण रूप से रहा है और उसने मनुष्य-जीवन के उन सभी पहलुओ पर ध्यान दिया है जो प्रबन्ध-काव्य को सर्वांगपूर्ण बनाने के साथ-साथ कथानक को भी चमत्कारपूर्ण बनाने मे सफल होते है।

उसमान—ये गाजीपुर के निवासी थे। इनके पिता का नाम शेख हुसैन था। ये शाह निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्य-परम्परा में बाबा हाजी के शिष्य थे। इनका उपनाम 'मान' था। इन्होने १६७० में 'चित्रावली' की रचना की। इसमे नेपाल के राजकुमार धरनीधर का चित्रावली के साथ विवाह का वर्णन है। इनकी भाषा 'पद्मावत' से मिलती-जुलती है।

शेख नबी—ये मऊ जिला जौनपुर के निवासी थे। इन्होने स० १६७६ मे 'ज्ञान दीप' नामक आख्यान-काव्य की रचना की। इसमे राजा ज्ञानदीप और रानी देतजानी की कथा है।

नूर मोहम्मद—ये जौनपुर और आजमगढ की सीमा पर स्थित सबरहद नामक स्थान के रहने वाले थे। इन्होने सं० १८०१ मे 'इन्द्रावती' नामक आख्यान-काव्य लिखा है, जिसमे कालिजर के रामकुमार राज-कुँवर और आगमपुर की राजकुमारी इन्द्रावती की प्रेम-कथा है।

सगुण-धारा : राम-भक्ति

हमारे देश मे ईश्वरोपलब्धि अथवा मोक्ष-प्राप्ति के तीन मार्ग आदि-काल से प्रचलित है—भक्ति, ज्ञान और कर्म। इन तीनो मे भक्ति-मार्ग सबसे अधिक आकर्षक और मानव-प्रकृति के अनुकूल है। ज्ञान-मार्ग की नीरस और कठिन साधनाओ को प्रत्येक मनुष्य नही कर सकता। कर्म-मार्ग का तो निर्णय करना भी कठिन कहा गया है। भक्ति-मार्ग एक प्रेम का मार्ग है, इसलिए वह अधिक लोकप्रिय हुआ। भक्ति-मार्ग के प्रवर्त्तक स्वामी रामानुजाचार्य थे, जिनका जन्म सं० १०७३ बताया जाता

है। उन्होने संसार की सत्यता स्थापित करके विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय चलाया और रामानुजाचार्य ने अपनी उद्देश्य-पूर्ति करते हुए 'ब्रह्मसूत्र' पर 'श्रीभाष्य' लिखा और जगत् की सत्यता और ईश्वर की सगुणता का पाण्डित्यपूर्ण प्रतिपादन किया। उन्होने ज्ञान और कर्म की अपेक्षा भक्ति-मार्ग पर अधिक जोर दिया। दक्षिण मे रामानुजाचार्य की भक्ति-परम्परा का अच्छा प्रचार हुआ।

श्री रामानुजाचार्य बड़ी उदार प्रकृति के मानव थे। वे शूद्रो का भी आदर करते थे, किन्तु फिर भी उसके सिद्धान्त 'वर्णाश्रम धर्म के पोषक श्री रामानुज की शिष्य-परम्परा मे सम्वत् १३५६ मे स्वामी रामानन्द का जन्म हुआ। इन्होने जाति-पाँति का भेद-भाव मिटाकर भक्ति का द्वार सवके लिए खोल दिया। कबीर तथा रैदास आदि अछूतो को भी वैष्णव धर्म आश्रय दिया। उनकी परम्परा मे कबीर-जैसे निर्गुणवादी सन्त और तुलसी-जैसे सगुणवादी भक्त सम्मिलित है। रामानन्द ने लोगो को राम-नाम का पाठ पढाया, उन्होने नारायण के स्थान पर राम को प्रतिष्ठित किया। रामानन्द की शिष्य-परम्परा में ही गोस्वामी तुलसीदासजी आते है जो राम-भक्ति को सगुण भक्ति के क्षेत्र मे सर्वाधिक व्यापक वना सके।

भक्त कवियों की विशेषताएँ

भक्त कवि विष्णु भगवान् के सगुण और साकार रूप के उपासक थे। रामकृष्णादि को विष्णु का अवतार मानकर उन्हे ब्रह्म से भी अधिक प्रधानता देते थे। अपने इष्टदेव का गुण-गान करना उनका परम कर्त्तव्य था। वे कथा-कीर्तन द्वारा भी अपने स्वामी को रिझाते थे। इसमें उनके हृदय का उल्लास और आत्म-निवेदन भी सम्मिलित रहता था। इन्होने अपने कर्मो और गुणो की अपेक्षा भगवान् की कृपा को अधिक महत्ता दी थी।

भक्त कवि-कविता को अभिव्यक्ति का साधन-मात्र मानते थे और

उन्होंने उसको कभी साध्य नही माना। इन्होने शृङ्गारयुगीन कवियो की भाँति कविता और कला को मुख्यता नही दी। वे जो कुछ लिखते थे, 'स्वान्त. सुखाय' अथवा 'लोकहितार्थ' लिखते थे। इन्होने आश्रय की परवाह नही की। शृङ्गारयुगीन कवियो की भाँति ये दरबारी कवि नही थे, अपितु जनता के कवि थे।

भक्त कवियो की सगुण भक्ति ने प्रचार द्वारा ईश्वर और मानव के बीच जो दूरी है उसे पाटने का सरल मार्ग खोज निकाला। इन भक्तो की दृष्टि मे ईश्वर की सत्ता का अनुभव हम इसी लोक मे उसके अवतारी रूप में कर सकते है। राम और कृष्ण के अवतार मे भक्ति-कवियो ने विष्णु के दिव्य स्वरूप की झाँकी प्रस्तुत करके जन-साधारण के लिए ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग को सुगम और सुलभ बनाया।

भक्ति के क्षेत्र मे प्रेम और माधुर्य के सम्मिश्रण से भक्ति की जटिलता और ज्ञान-मार्ग की दुरूहता दूर हुई और मानव-मात्र के लिए भगवत्-भक्ति का पथ प्रशस्त हुआ। साथ ही जनता ने भगवान् को अपने दु:ख का साथी और सहायक अनुभव करके एक प्रकार से शान्ति और सुख की साँस ली।

भक्त कवियों में आत्म-निर्भरता पूर्ण रूप से व्याप्त थी, वे किसी राजा या नवाब की सेवा में पारितोषिक-प्राप्ति के लिए कवित्त-सवैये पढने नही जाते थे, अत उनकी वाणी में तेज और ओज का होना सहज स्वाभाविक है। इन भक्त कवियो की ऊर्जस्वित वाणी का ही यह प्रभाव है कि आज हिन्दी-भाषा और साहित्य की चर्चा करते हुए हमे गौरव और अभिमान का अनुभव होता है। सूर, कबीर और तुलसी की कला को हम काव्य, साहित्य, दर्शन, धर्म और अध्यात्म सभी क्षेत्रों की सर्व श्रेष्ठ-कला कहकर परितुष्ट हो सकते है। यथार्थ में यह भक्ति युग ही हिन्दी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ या स्वर्णिम काल है। इसके बाद तो शृङ्गार और विनोद के लिए कवियो ने रचना करना स्वीकार कर लिया था। नीचे कुछ प्रमुख भक्त कवियों का उल्लेख किया जाता है :

गोस्वामी तुलसीदास—तुलसीदास के जन्म-सवत् एव स्थान के विषय में अभी तक पर्याप्त मतभेद है। डॉ० ग्रियर्सन तथा प० रामगुलाम द्विवेदी आदि ने इनका जन्म स० १५८९ माना है। परन्तु वेणीमाधव-कृत 'गोसाईं-चरित्र' के अनुसार उनका जन्म स० १५५४ माना जाता है·

पंद्रह सै चौवन विषै, कालिंदी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरयो सरीर॥

इनके जन्म-स्थान के विषय मे भी बहुत मतभेद है। कोई कहता है कि इनका जन्म राजापुर मे हुआ था, कोई चित्रकूट के पास हाजीपुर को इनका जन्म-स्थान बताता है। किसी ने यह स्थान शूकर क्षेत्र अर्थात् सोरो बताया है। फिर भी बहुमत के अनुसार इनका जन्म-स्थान राजापुर ही माना जाता है। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे, इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। जनश्रुति के अनुसार ये अमागलिक घडी मे पैदा हुए, इसलिए माता-पिता ने इन्हे त्याग दिया था, तब मुनिया नाम की दासी ने इनका पालन-पोषण किया। पाँच वर्ष के पश्चात् जब मुनिया की भी मृत्यु हो गई, तब ये घर-बार छोडकर भिक्षाटन करते हुए राम के भजन गाते फिरने लगे। कालान्तर मे ये बाबा नरहरिदास की मडली मे सम्मिलित हो गए। उनकी सत्सगति से ये पक्के राम-भक्त और साधु हो गए। एक बार ये अपने गुरु के साथ काशी आए और पंच गगा के घाट पर रामानन्दजी के पास रहने लगे। यहाँ इन्होने एक परम विद्वान् शिव सनातनजी से वेद-वेदाग, इतिहास, पुराणादि की पूर्ण शिक्षा प्राप्त की।

पन्द्रह वर्ष तक अध्ययन करने के पश्चात् गोस्वामीजी पुन अपनी जन्म-भूमि राजापुर लौट आए वहाँ एक भारद्वाज गोत्रीय दीनबन्धु पाठक ने इनकी विद्वत्ता और तेजस्विता पर मुग्ध होकर अपनी लडकी रत्नावली का विवाह इनके साथ कर दिया। तुलसीदासजी अपनी पत्नी पर इतने अनुरक्त थे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर वे रात्रि के समय अन्धकार, तूफान और आँधी को चीरते हुए, एक बडी नदी को पार

करके उससे मिलने घर जा पहुँचे। इस पर उनकी स्त्री ने उन्हें बहुत लज्जित किया और कहा :

लाज न आवत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहहुँ हौं नाथ।।
अस्थि-चरममय देह मम, ता में ऐसी प्रीत।
होती जो श्रीराम महँ, होति न तो भव-भीति।।

यह सुनकर वे तुरन्त लौट पडे और विरक्त हो गए। आपने संवत् १५६७ मे वैराग लिया और १६ वर्ष तक देशाटन और तीर्थ-यात्रा करते रहे। अपने इस भ्रमण मे ये काशी, अयोध्या, चित्रकूट, जगन्नाथ-पुरी, रामेश्वर, द्वारिका आदि होते हुए बद्रिकाश्रम पहुँचे और वहाँ से कैलाश तथा मानसरोवर तक निकल गए। सवत् १६३१ में इन्होने अयोध्या मे 'राम चरित मानस' की रचना प्रारम्भ की और २ वर्ष १ मास मे उसे पूर्ण किया। 'मानस' का कुछ अश काशी मे भी लिखा गया है। 'मानस' के पूर्ण हो जाने पर वे काशी मे ही रहने लगे।

'मानस' के अतिरिक्त गोस्वामीजी के 'दोहावली', 'कवितावली', 'गीता-वली', 'रामाज्ञा प्रश्नावली', 'विनय पत्रिका', 'रामलला नहछू', 'पार्वती मगल', 'जानकी मगल', 'बरवै रामायण', 'वैराग्य-सदीपिनी' और 'कृष्ण गीतावली' आदि ग्यारह और प्रामाणिक ग्रन्थ है।

'रामचरित मानस' गोस्वामीजी का सबसे अधिक प्रसिद्ध महाकाव्य है। गोस्वामीजी मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी के अनन्य भक्त थे, वे समस्त संसार को 'सियाराममय' देखते थे। उन्होंने भक्ति और प्रेम की पिपासा में चातक को आदर्श माना है। मर्यादा के अनुकूल वे अन्य देवी-देवताओं की भी उपासना करते थे, किन्तु उनसे राम-भक्ति की याचना करके अपनी अनन्यता की रक्षा के लिए ही। तुलसीदासजी की भक्ति-सेव्य-सेवक-भाव की थी। सेवक पद को ही वे ऊँचा मानते थे :

सेवक पद सुनकर सदा, दुखी सेव्य पद जान।
यथा बिभीषण रावनहिं, तुलसी समझ प्रमान॥

'मानस' में उन्होने जीवन के सभी पहलुओ पर प्रकाश डाला है। विद्वानो के मत से 'मानस' की टक्कर का महाकाव्य अभी तक हिन्दी मे तो क्या विश्व की किसी भी भाषा मे नही लिखा जा सका है। काव्य की दृष्टि से भी यह सर्वाङ्गपूर्ण तथा उत्कृष्ट ग्रन्थ है। ऐसा कोई रस नही, जिसका परिपाक इसमे न हुआ हो। ऐसा कोई भाव नही, जिसकी व्यजना इसमें नही हुई हो। गोस्वामीजी की रचना-शैली अत्यन्त प्रौढ और सुव्यवस्थित है। वे शब्द-चमत्कार के चक्कर मे नही फँसे और न उन्होने व्यर्थ के अलकारो की भरमार ही की है। अपनी रचनाओ मे उन्होने छन्द-रचना की सभी प्रणालियो को अपनाया है। उन्होने अपने काव्यो मे कभी मर्यादा का उल्लघन नही किया। जिस समय साहित्य मे उच्छृङ्खलता और मर्यादा का उल्लघन करना एक साधारण बात थी, उस समय वे अपने ग्रन्थो में कभी भी असयमित नही हुए।

गोस्वामीजी के ग्रन्थो में मानव-प्रकृति की अत्यन्त सूक्ष्म ग्रहणशीलता तथा सम्पूर्ण मनोविकारो के प्रति सवेदनशीलता का चित्रण है। वास्तव मे गोस्वामीजी हिन्दी-साहित्य के सिरमौर भक्त-शिरोमणि और हिन्दू जाति के धर्म-रक्षक है। ऐसे समय मे जब कि विधर्मियो द्वारा हिन्दू जनता का धर्म सकटमय था, मानव-जीवन की सारी आवश्यकताएँ, समस्त हिन्दू आदर्श और मानव-धर्म की पराकाष्ठा मानव मे सगृहीत करके इन्होने हिन्दू-धर्म की रक्षा की।

'रामचरित मानस' के अतिरिक्त 'विनय-पत्रिका' की रचना करके गोस्वामीजी ने अपनी समन्वय-भावना का आदर्श प्रस्तुत किया है। धर्म, दर्शन तथा काव्य सभी क्षेत्रो मे गोस्वामीजी अपनी सामजस्य-भावना के लिए अप्रतिम है।

गोस्वामी जी की मृत्यु स० १६८० मे हुई। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रचलित है

संवत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

गोस्वामी तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे, अतः स्थान-स्थान पर उन्होंने अपने ग्रन्थों में उन्ही की महिमा का वर्णन भक्ति के अगाध मानस मे आकण्ठ निमग्न होकर किया है। इस सम्बन्ध मे हम उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'राम चरित मानस' और 'विनय-पत्रिका' से दो उदाहरण देना उपयुक्त समझते हैं। इससे उनकी भक्ति का प्रत्यक्ष परिचय पाठकों को मिल जायगा :

बंदौं राम-नाम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
विधि-हरि-हर-मय वेद प्रान सों। अगुन अनूपम गुन निधान सों॥
महा मन्त्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गन राऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
जान आदि कवि नाम-प्रतापू। भयउ शुद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि सिव-बानी। जपि जेंई पिय संग भवानी॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय-भूषन ती को॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। काल कूट फल दीन्ह अमी को॥
(रामचरित मानस)

राम रावरो नाम मेरो मातु-पितु है।
सुजन सनेही गुरु साहब सखा सुहृद
राम-नाम-प्रेम-पन अविचल वितु है॥
सत कोटि चरित अपार दधि-निधि मथि
लियो काढ़ि वामदेव नाम-घृतु है।
नाम को भरोसो बल, चारिहू फल को फल,
सुमिरिए छाँड़ि छल, भलो कृतु है॥
स्वारथ-साधक परमारथ-दायक नाम
राम नाम सारिखो न और हितु है।

'तुलसी' सुभाय कही, साँचिये परैगी सही
सीतानाथ-नाम चितहू को चितु है ॥
(विनय-पत्रिका)

स्वामी अग्रदास—ये रामानन्द की शिष्य-परम्परा में तीसरी पीढी से हुए है। इन्होंने 'हितोपदेश उपखान बावनी', 'ध्यान मजरी', 'रामध्यान मजरी' और 'कुडलिया' नामक चार पुस्तके लिखी है। इनका रचना-काल स० १६३२ के आस-पास माता है। इनकी कविता का एक नमूना देखिये :

कुंडल ललित कपोल जुगल अस परम सुदेसा।
तिनको निरखि प्रकास लजत राकेस दिनेसा ॥
मेचक कुटिल बिसाल सरोरुह नैन सुहाए।
मुखपंकज के निकट मनो मृगछौना आये ॥

नाभादास—ये स्वामी अग्रदास जी के शिष्य थे। ये बडे भक्त और साधु-सेवी थे। इनका समय स० १६५७ के लगभग माना जाता है। तुलसीदास जी की मृत्यु से पीछे तक ये जीवित रहे है। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भक्तमाल' है, जिसमे २०० भक्तो के चमत्कारपूर्ण चरित्र लिखे गए है। इनका एक छप्पय देखिए :

त्रेता काव्य निबन्ध करी सत कोटि-रमायन।
इक अक्षर उच्चरै ब्रह्म इत्यादि परायन-॥
अब-भक्तन सुख-दैन बहुरि लीला विस्तारी।
रामचरण रस मत्त रहत अहनिस व्रतधारी॥
संसार अपार के पार को, सुगम रूप नौका लियो।
कलि-कुटिल जीव निस्तार-हित, बाल्मीकि तुलसी भयो ॥

प्राणचन्द चौहान—इन्होने सं० १६६७ में 'रामायण महानाटक' लिखा। इनकी शैली केवल सवाद रूप की है। रचना का ढग नीचे दिया जाता है :

कातिक मास पच्छ उजियारा।
तीरथ पुण्य सोम कर वारा ॥

ता दिन कथा कीन्ह अनुमाना।
शाह सलेम दिलीपति ध्याना।।
संवत् सोरह सो सत साठा।
पुण्य प्रकास पाप भय नाठा।।

हृदयराम—ये पंजाब के निवासी कृष्णदास के पुत्र थे। इन्होंने सं० १६२० मे 'हनुमन्नाटक' की रचना की। इनकी कविता बड़ी सुन्दर और परिमार्जित है। इसमें कवित्त और सवैयों में बड़े अच्छे संवाद है। इनकी रचना का उदाहरण नीचे दिया जाता है :

देखन जो पाऊँ तौ पठाऊँ जमलोक हाथ,
दूजो न लगाऊँ वार करौं एक वर कों।
मीजि मारौं उर तें उखारि भुजदंड, हाड़,
तोरि डारौं बर अवलोक रघुबर को।।
कासों राम द्विज को, रिसात महारात राम,
अति महरात गात लागत है घर को।
सीता को संताप मेटि प्रगट प्रताप मानों,
को है वह आप चाप तोरयो जिन हर को।।

राम-भक्ति-शाखा के कवियों में संख्या की दृष्टि से अधिक कविगण नहीं हुए, किन्तु तुलसीदास की काव्य-प्रतिभा ने इस राम-भक्ति का प्रचार उत्तरीय भारत में जिस प्रबल रूप से किया वह इस बात का प्रमाण है कि संख्या की दृष्टि से व्यक्तित्व की अधिक प्रधानता है।

सगुण धारा : कृष्ण-भक्ति

जिस प्रकार राम-भक्ति-शाखा के प्रवर्तक स्वामी रामानुजाचार्य थे, उसी प्रकार कृष्ण-भक्ति-शाखा के प्रवर्त्तक स्वामी वल्लभाचार्य थे। भक्ति-मार्ग के लिए प्रेम और श्रद्धा दोनो को आपने आवश्यक माना है। प्रेम-भक्ति की साधना के लिए इन्होंने प्रेम को प्रधानता दी है, श्रद्धा उसकी सहायक है। इन्होने प्रेम-साधना मे लोक-मर्यादा और वेद-मर्यादा दोनो

का त्याग विधेय ठहराया है। इनका कहना था कि प्रेम-लक्षण-भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति तभी होती है जब भगवान् का अनुग्रह होता है। इस अनुग्रह को उन्होंने पोषण या पुष्टि कहा है। इसी कारण उन्होंने अपने मार्ग का नाम 'पुष्टि मार्ग' रखा है।

स्वामी वल्लभाचार्य ने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पूर्व मीमासा भाष्य', 'उत्तर मीमासा भाष्य','श्रीमद्भागवत की दो सूक्ष्म टीका' और 'तत्त्वदीप-निबंध' तथा १६ छोटे-छोटे प्रकरण-ग्रन्थ लिखे हैं। उन्होंने भारत के अनेक स्थानो का भ्रमण किया और अनेक विद्वानो से शास्त्रार्थ करके अपने मत का प्रचार किया। अन्त में उन्होंने मथुरा में जाकर अपनी गद्दी स्थापित की और 'वल्लभ-सम्प्रदाय' के नाम से अपना मत चलाया। इस सम्प्रदाय की उपासना व सेवा-पद्धति में भोग-राग-विलास की प्रभूत सामग्री के प्रदर्शन की प्रधानता रही। अत उक्त सम्प्रदाय के भक्तो ने प्रेम-संगीत की जो धारा बहाई, उसने हिन्दू जनता के जीवन को रसमय और प्रफुल्लित कर दिया। अन्य सम्प्रदायो के कृष्ण-भक्त भी इसी प्रेम-धारा में बह गए। ये लोग भागवत में वर्णित कृष्ण की ब्रज-लीला को ही लेकर चले। महाभारत के नीति-परायण पराक्रमी कृष्ण पर उनकी दृष्टि नही पडी। क्योंकि उन्हे तो अपनी प्रेम-लक्षण-भक्ति के लिए कृष्ण के मधुर रूप की ही आवश्यकता थी। इसलिए उन्होंने कृष्ण के लोक-रक्षक और धर्म-संस्थापक स्वरूप को जनता के सामने नही रखा। कृष्ण-भक्ति-शाखा के कवियो में शृङ्गारात्मक मूर्ति और भावना का ही प्रभाव रहा और उनके काव्य में भी उसी का विकास हुआ।

इन्ही दिनो दक्षिण के मन्दिरो में एक विलक्षण प्रथा प्रचलित थी, जिसे देवदासी-प्रथा कहते थे। माता-पिता लडकियो को मन्दिरो में चढा आते थे, वहाँ उनका विवाह भी ठाकुर जी के साथ हो जाया करता था। इस प्रथा ने भी राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला के प्रचार में सहायता दी। श्री वल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र श्री विट्ठलनाथ के शिष्यो में आठ शिष्य प्रमुख थे, जो 'अष्ट छाप' के नाम से प्रख्यात थे। ये सभी कवि थे।

इनके नाम हैं—सूरदास, कुम्भनदास, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी, नन्ददास, कृष्णदास और परमानन्ददास। इन भक्त-कवियो के काव्य मे ब्रजभाषा का बडा विकास हुआ।

सूरदास – सूरदास जी का जन्म स० १५४० मे आगरा के निकट रुनकता नामक ग्राम मे हुआ। कुछ लोग इनका जन्म-स्थान दिल्ली के पास सीही नामक ग्राम को मानते हैं। यह सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रामलाल था। कुछ लोगो का मत है कि ये ब्रह्मभट्ट थे और चद बरदाई इनके पूर्व पुरुषों मे से थे। सूरदास आगरा और मथुरा के बीच 'गऊ घाट' पर रहा करते थे। उस समय वे साधु हो चुके थे और भगवद्-भजन करते तथा शिष्य बनाया करते थे। एक बार श्री वल्लभाचार्य वहाँ आये। वे सूरदास जी की भक्ति पर बडे प्रसन्न हुए और इन्हें अपना शिष्य बना लिया।

सूरदास जी के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती प्रचलित है कि इनका वास्तविक नाम बिल्वमगल था। ये तिलोत्तमा नामक एक सुन्दरी पर आसक्त हो गए थे। जब इन्हे ज्ञान हुआ तो पश्चात्ताप-स्वरूप अपने दोनो नेत्र फोड़ लिए थे। इन्होने अपने नेत्रो को ही मन के विचलित होने का कारण समझा था। इस सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'सूरदासेर प्रार्थना' नामक बडी सुन्दर और भावपूर्ण कविता लिखी है।

जो कुछ भी हो, यह तो स्वीकार करना ही होगा कि सूरदासजी बडे भावुक पुरुष थे। इनकी रचनाओ से ऐसा प्रकट होता है कि ये जन्मान्ध नही थे, क्योकि उनके वर्णन ऐसे सजीव हैं कि वे बिना निजी अनुभव के नही लिखे जा सकते। उन्होने बाल-कृष्ण के सोते हुए अधर-पुट हिलने का अथवा गोपियो की क्रीडा तथा रास-लीला का जो वर्णन किया है वह ऐसा नहीं है कि किसी से सुनकर लिख दिया गया हो। विविध रगो और दृश्यों का वर्णन भी जन्मान्ध व्यक्ति के लिए सभव नही। साथ ही उनकी आँखे फोड़ने की घटना भी कुछ जँचती नही।

यदि अपने-आप आँखें फोड़ते तो वह भगवान् को अपने अन्धे होने का उलाहना न देते

मित्र सुदामा कौन अयाचक, प्रीति पुरानी जानि।
'सूरदास' सो कहा निठुराई, नैनन हू की हानि॥

सूरदास की प्रसिद्ध रचना 'सूरसागर' है, जो 'श्रीमद्भगवत' के आधार पर तत्कालीन ब्रजभाषा मे लिखा गया है। सूर की रचना शृङ्गार और वात्सल्य से पूर्ण है। 'सूरसागर' मे सबसे मर्मस्पर्शी अंश 'भ्रमर गीत' है, जो गोपिकाओं की वचन-वक्रता और वाग्-विदग्धता से युक्त है। ऐसा सुन्दर उपालम्भ अन्यत्र कही नही मिलता। इसमे उद्धव और गोपियो के सवाद द्वारा सगुण भक्ति की स्थापना और निर्गुण ब्रह्म-निरूपण की नीरसता का वर्णन किया गया है। यह सूर की सूक्ष्म अनुभूति का द्योतक है।

सूरदास की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। उसमे कही-कही सस्कृत का भी पुट है। कही-कही ब्रजभाषा के ठेठ ग्रामीण शब्दो का भी प्रयोग हो गया है। उनकी भाषा माधुर्य गुण से युक्त है। सूर के शब्दो मे बडी सुन्दर व्यजना रहती है। इन्होने मुहाविरो का भी सार्थक प्रयोग किया है। उनकी कविता मे प्राचीन आख्यान और कथाओ का भी सुन्दर हवाला दिया गया है।

इनकी भाषा और रचना का उदाहरण नीचे देखिए :

देखि री! हरि के चंचल नैन!
खंजन मीन मृगज चपलाई, नहि पटतर इक सैन॥
राजिवदल, इंदीवर, शतदल, कमल, कुशेशय जाति।
निसि मुद्रित प्रातहि वे विगसत, ये विगसे दिन-राति॥
अरुन असित सित झलक पलक प्रति, को बरनै उपमाय।
मनो सरस्वति गंग-जमुन मिलि, आगम कीन्हो आय॥

'सूरसागर' के अतिरिक्त इनके—'सूर सारावली', 'साहित्य लहरी', 'नल-दमयन्ती', 'ब्याहलो' आदि चार ग्रन्थ और है। सूरदास जी हिन्दी

के हिन्दी के उच्च कोटि के कवियो मे थे, वात्सल्य रस के वर्णन में तो वे अद्वितीय है।

इसका एक उदाहरण देखिए :

मैया मेरी, मैं नहिं माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहि पठायो।
चार पहर बंसीबट भटक्यो साँझ परे घर आयो॥
मैं बालक बहियन को छोटो छीको किस विध पायो।
ग्वाल बाल सब बैर परे है, बरबस मुख लपटायो॥
तू जननी मन की अति भोरी, इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपजि है जान परायो जायो॥
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहिं नाच नचायो।
'सूरदास' तब बिहँसि जसोदा ले उर कण्ठ लगायो॥

इनकी मृत्यु स० १६२० के लगभग पारसौली नामक ग्राम में हुई। उस समय श्री विट्ठलनाथजी वही उपस्थित थे। उनकी उपस्थिति में सूरदासजी ने निम्न लिखित पद गाया था

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसय चारु चपल अनियारे, पल-पिंजरा न समाते॥
उड़ि-उड़ि जात निकट स्रवननि के, उलट-पलट ताटंक फँदाते।
'सूरदास' अंजन गुन अटके नतरु अबहिं उड़ि जाते॥

नन्ददास—कृष्ण-भक्ति-शाखा के कवियो मे सूरदास के बाद नन्द-दास का स्थान है। ये सूरदास जी के समकालीन थे। इनका रचना-काल स० १६२५ माना गया है। इन्होंने अपने प्रसिद्ध काव्य 'रास-पचाध्यायी' की रचना रोला छन्द मे की है। इनकी कविताओ की भाषा बड़ी सजीव और प्रवाहमयी है। 'पचाध्यायी' के अतिरिक्त इनके 'भ्रमर गीत', 'अनेकार्थ मंजरी', 'रस मजरी', 'स्याम सगाई' तथा 'रुक्मिणी-मंगल' आदि ग्रथ भी बडे प्रसिद्ध है। इनमे 'भ्रमर गीत' अधिक लोकप्रिय है। इनकी भाषा की गति और सजीवता देखिए .

छवि सो निर्तनि, पटकनि लटकनि, मंडल डोलनि ।
कोटि अमृत सम मुसकनि, मंजुलता थेई थेई वोलनि ॥

कृष्णदास—ये जाति के शूद्र थे । ये भी वल्लभाचार्य के शिष्य और अष्ट-छाप में थे । शूद्र होते हुए भी ये आचार्य की कृपा से मन्दिर के मुखिया हो गए थे । उन्होंने 'भ्रमरगीत', 'जुगल मान-चरित', और 'प्रेम तत्त्व-निरूपण' नामक ग्रथो की रचना की है ।

इनके अतिरिक्त अष्टछाप के परमान्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी और गोविन्द स्वामी भी अपनी अनन्यता और तन्मयता की दृष्टि मे अच्छे कवि हुए हैं । व्रजभापा पर इन लोगो का पूर्ण अधिकार था । अपने हृदय की अनुभूति से प्रेरित होकर ये अपने भावो को सगीतमयी भापा में अभिमन्त्रित करते थे । इन्होंने अपनी मधुर स्वर-लहरी मे समस्त व्रज को आप्नावित कर दिया । ये लोग स्वान्त' सुखाय ही कविता करते थे । इन्हे किसी सम्मान या राज्याश्रय की चाहना नही थी । एक वार कुम्भनदास जी को अकवर वादशाह ने सीकरी वुलाया था, वहाँ उनका वडा सम्मान किया, परन्तु उस सम्मान से भी उन्हें ग्लानि ही रही । वाद में उन्होंने कहा था :

सतन को कहा सीकरी सों काम ।
आवत जात पनहियाँ टूटीं, विसर गयो हरि नाम ॥
जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिवै पडी सलाम ।

हित हरिवंश—इनका जन्म मथुरा जिले के अन्तर्गत सादावाद गाँव में स० १५५६ में हुआ । ये 'राधा-वल्लभ' सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे । रचना-काल स० १६०० मे १६४० तक माना जाता है । इनके सम्प्रदाय में राधिका जी को स्वय भगवान् श्रीकृष्ण से भी अधिक प्रधानता दी गई है । कारण, भगवान् अपनी प्रवृत्ति के ही वशीभूत रहते है । राधा जी की कृष्ण की शक्ति की प्रतीक है, अत' शक्ति की पूजा-अर्चना से भगवान् कृष्ण स्वय परितुष्ट होकर मन पर अनुग्रह करते है । इनके सरस और मधुर पद्यो का सग्रह 'हित चौरासी' नाम से प्रसिद्ध है । 'राधा सुधानिधि'

नाम से संस्कृत मे भी इन्होने एक सुन्दर ग्रथ लिखा है। इनकी कविता का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :

आजु बन नीको रास रचायौ।
पुलिन पवित्र सुभग जमुना-तट, मोहन बेनु बजायौ।
कल कंकन किंकिनि नूपुर-धुनि, सुनि खग-मृग सचु पायौ॥
जुबतिन मंडल मध्य श्यामघन, सारँग राग जमायौ।
ताल मृदंग अंग मुरज डफ, मिलि रस-सिन्धु बढ़ायौ॥

गदाधर भट्ट—ये गौड़िया सम्प्रदाय के कवियो मे प्रमुख थे। ये दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे और चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे। इन्होंने कृष्णजी की वन्दना के साथ-साथ नन्द-यशोदा की वन्दना भी की है। इनकी रचना संस्कृत-गर्भित भाषा मे होती थी। इनकी रचना का नमूना देखिए :

जयति श्री राधिके, सकल सुख साधिके,
तरुनि मनि नित्य नवतन किसोरी।
कृष्णतन लीन-मन रूप की चातकी,
कृष्ण मुख हिम-किरण की चकोरी॥

मीराबाई—ये मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की सुपुत्री थी। इनका जन्म संवत् १५७३ मे चौकड़ी नामक ग्राम मे हुआ था। इनको बचपन से ही कृष्ण का इष्ट हो गया था और वे अपने को उन्ही से विवाहित समझती थीं। वैसे इनका सासारिक विवाह चित्तौड़ के राणा साँगा के पुत्र भोजराज से हुआ था। विवाह के कुछ दिन उपरान्त ही ये विधवा हो गई। ये प्रायः सन्तो की संगति मे रहती थी, और मन्दिरो मे जाकर कृष्ण की मूर्ति के सामने नाचती और गाती थी। इनके इस व्यवहार से राज-कुल के लोग इनसे रुष्ट रहते थे। इन्हे मारने की चेष्टा मे कई बार विष तक दिया गया, किन्तु भगवत्कृपा से इन्हे कुछ न हुआ।

'राणा जी ने भेजो विष का प्याला, सो अमृत कर पीज्यो जी।'

मीरा-रचित चार ग्रथ बतलाये जाते है—'नरसी का मायरा', 'गीत गोविन्द टीका', 'राम गोविन्द' और 'राग सोरठ'।

मीरा की वाणी का गुजरात मे बहुत आदर है । इन्होंने राजस्थानी और व्रजभाषा दोनो मे ही रचना की है । इनके पदो से इनकी तीव्रानु-भूति तथा हार्दिकता का परिचय मिलता है । उनमें निजी प्रेम-पीडा है । उन्होने गोपियो का विरह-वर्णन न करके अपना विरह-वर्णन किया है । इनका एक पद्य देखिए :

बसौ मेरे नैनन में नन्दलाल ।
मोहिनी मूरति, साँवरि सूरति, नैना बने बिसाल ।
अधर सुधा रस मुरली राजति, उर बैजन्ती माल ।।
छुद्र घण्टिका कटि तट सोभित, नूपुर शब्द रसाल ।
'मीरा' प्रभु सन्तन सुखदाई, भक्त-बछल गोपाल ।।

स्वामी हरिदास—ये निम्बार्क-सम्प्रदाय के अन्तर्गत टट्टी सम्प्रदाय के सस्थापक थे । ये अकबर के समय मे एक सिद्ध भक्त और सगीता-चार्य माने जाते थे । इनका कविता-काल सवत् १६०० से १६१७ माना जाता है । कहते हैं कि स्वय अकबर और प्रसिद्ध गायक तानसेन इनके सगीत पर मुग्ध थे । इनके पद कठिन राग-रागिनियो मे गाने योग्य हैं, पढने मे कुछ वेढगे से लगते हैं । पद-विन्यास भी और कवियो की भाँति कोमल और मधुर नही है । हाँ, भाव अच्छे हैं । इनके पदो के संग्रह—'हरिदासजी के ग्रथ', 'हरिदासजी की बानी' और 'स्वामी हरिदासजी के पद' के नामो से मिलते हैं । इनका निम्न लिखित पद पठनीय है

ज्यों ही ज्यों तुम राखत हो त्यों ही त्यों ही रहियत हौं, हे हरि !
और अपरचै पाय धरौं सुतौ कहौ कौन के पैंड भरि ।।
जदपि हौं अपनो भायो कियो चाहौं, कैसे करि सकौं जो तुम राखो पकरि ।
कहै 'हरिदास' पिंजरा के जनावर लौं तरफाय रह्यौ उड़िबे को कितोऊ करि ।।

हरिराम व्यास—ये ओरछा-नरेश मधुकर साह के राजगुरु थे । पहले ये गौड सम्प्रदाय के वैष्णव थे, बाद मे हित हरिवशजी के शिष्य होकर राधावल्लभी हो गए । इनका रचना-काल सवत् १६२० के आस-

पास है। इनकी कविता का नमूना देखिए

आज कछु कुञ्जन में बरषा सी।
बादल दल में देखि सखी री, चमकति है चपला सी॥
मंद मंद गरजिनि सी सुनियतु, नाचत मोर सभा सी।
इन्द्र धनुष बा पंगति डोलति, बोलति कोक कला सी।
इन्द्र बधू छबि छाइ रही मनु, गिरि पर अरुन घटा सी॥

रसखान—ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। इनका जन्म लगभग सवत् १६१५ मे हुआ, इनका वास्तविक नाम सैयद इब्राहीम था। कहते है कि ये एक बनिए के लडके से प्रेम करते थे। एक बार वृन्दावन जाने पर स्वामी विट्ठलनाथ जी के उपदेश से इन्हे ज्ञान प्राप्त हुआ। तब से श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हो गए और इनका नाम 'रसखान' पड गया। इनकी रचनाओ के दो सग्रह—'प्रेम वाटिका' और 'सुजान रसखान' नाम से मिलते है। जिनमे श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति का प्रदर्शन किया गया है।

रसखान की रचना अत्यत सरस, कोमल और भावगर्भित है। इन्होने बडे मार्मिक शब्दो में प्रेम की अभिव्यजना की है। इनकी रचनाओ मे भगवान् कृष्ण के प्रति आत्म-समर्पण, अनन्य प्रेम और तल्लीनता ही दिखाई देती है। भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। इनका एक सवैया देखिए :

मानुस हों तो वही रसखान, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हों तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हों तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरंदर-धारन।
जौ खग हों तो बसेरो करौं मिलि, कालिंदी-कूल कदंब की डारन॥

ध्रुवदास—कहते है कि ये स्वप्न मे श्री हितहरिवशजी के शिष्य हो गए थे। ये वृन्दावन मे रहा करते थे। इनका रचना-काल सवत् १६६० से १७०० तक माना जाता है। इन्होने पदो के अतिरिक्त दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया आदि अनेक छन्दो मे भक्ति और प्रेम तत्त्व का वर्णन किया है। इन्होने छोटे-छोटे सब मिलाकर ८० के लगभग ग्रथ लिखे है। इनकी रचना का नमूना देखिए

वहु बीती थोरी रही, सोऊ बीती जाय।
हित ध्रुव वेगि विचार कै, वसि वृन्दावन आय॥
वसि वृन्दावन आय त्याग लाजहि अभिमानहि।
प्रेम लीन ह्वै दीन आपको तृन सम 'जानहि॥
सकल सार को सार, भजन तू करि रस रीती।
रे मन सोच-विचार, रही थोरी, वहु बीती॥

कृष्ण-भक्ति-शाखा के भक्त-कवियो की सख्या इतनी विशाल है कि उसका उल्लेख स्थान-सकोच के कारण नही किया जा सकता। राधा-वल्लभ, निम्वार्क और वृन्दावनस्थ गौडीय सम्प्रदाय मे ऐसे अनेक कवि हुए है, जिनका साहित्य वृन्दावन के मन्दिरो में हस्तलिखित पुस्तको मे भरा पडा है। राधावल्लभ सम्प्रदाय की हस्तलिखित सैकडो उच्चकोटि की रचनाएँ आज भी प्रकाश मे नही आई है। हिन्दी-प्रेमी विद्वानो को उनको प्रकाश मे लाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

अकवर-दरवार के कवि

रहीम—इनका पूरा नाम अब्दुल रहीम खानखाना था। इनके पिता खानखाना वैरमखाँ थे। इनका जन्म स० १६१० मे हुआ था। रहीम सस्कृत, अरवी और फारसी के पूर्ण विद्वान् थे। भाषा पर इनका पूरा अधिकार था। ये प्रकृति के वडे दयालु थे। दानशील भी पूरे थे और वीरता मे भी भरपूर थे। रहीम के दोहो मे 'तुलसी' की सी मार्मिकता और भावुकता के दर्शन होते है। तुलसीदासजी से उनकी घनिष्ठ मित्रता थी। एक वार ये अपना सव-कुछ लुटाकर फकीर हो वैठे। माँगने वालो ने फिर भी पीछा न छोड़ा तो इन्होने यह दोहा कहा

यारो यारी छोड दो, वे रहीम अव नांय।
वे रहीम निर्धन भये, माँग मधुकरी खांय॥

रहीम के दोहो मे कही-कही हास्यरस भी मिलता है

कमला थिर न रहीम कह, जानत है सव कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय॥

मुसलमान होने पर भी रहीम ने हिन्दू-धर्म और सस्कृति का अच्छा परिचय प्राप्त किया था। उन्होने हिन्दू-धर्म के अनेक रीति-रिवाजो का अपने दोहो मे उल्लेख किया है। भाषा की दृष्टि से भी रहीम को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। रहीम की भाषा सरलता, सुबोधता और प्राजलता के कारण 'टकसाली' बन गई थी, जो आज तक बोल-चाल मे उद्धृत की जाती है।

रहीम ने नायिका-भेद-सम्बन्धी बडे सरस बरवै लिखे है। ये बरवै अवधी भाषा मे है। इन्हे बरवै छन्द का जन्मदाता माना जाता है। इन्होने 'रहीम दोहावली', 'बरवै नायिका भेद', 'शृङ्गार सोरठ', 'मदनाष्टक' और 'रास पचाध्यायी' की रचना की है। इनकी मृत्यु सवत् १६८३ मे हुई।

नरहरि और गंग—ये दोनो अकबर के दरबार के श्रेष्ठ कवि थे। नरहरि का जन्म १५६२ मे और मृत्यु १६६७ मे हुई। अकबर ने इन्हे महापात्र की उपाधि से विभूषित किया था। इनके रचित ग्रन्थ ये है—'रुक्मिणी मगल', 'छप्पय नीति' और 'कवित्त सग्रह'। इनका एक छप्पय बडा प्रसिद्ध है, जिस पर अकबर ने गो-वध बन्द कर दिया था .

अरिहु दन्त तिनु धरै ताहि नहिं मार सकत कोइ।
इक सतत तिनु चरहिं, वचन उच्चरहिं हीन होइ॥
अमृत पय नित स्रवहिं, बच्छ महि थंभन जावहिं।
हिंदुहि मधुर न देहि, कटुक तुरकहिं न पियावहिं॥
कह कवि 'नरहरि' अकबर सुनौ, विनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुएहु चाम सेवइ चरन॥

गग कवि के जन्म-काल का ठीक पता नही चलता। गग ने शृङ्गार और वीर दोनो रसो की कविता की है। गग की तुलना तुलसीदासजी से की जाती है। इस सम्बन्ध मे एक दोहा प्रचलित है

तुलसि गग दोऊ भये, सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन में मिलै, भाषा विविध प्रकार॥

कहते हैं कि किसी राजा या नवाब की आज्ञा से इन्हे हाथी से रौंदवा डाला गया था। उस समय मरने से पहले इन्होने यह पद कहा था :

सब देवन को दरबार जुर्‌यो तहँ पिंगल छन्द बनाय के गायो।
जब काहु तै अर्थ कह्यौ न गयो, तब नारद एक प्रसंग चलायो॥
मृतलोक में है नर एक गुनी,कवि 'गंग' को नाम सभा में बतायो।
जब चाह भई परमेश्वर को तब गंग को लेन गनेस पठायो॥

वास्तव मे गग अपने समय के प्रधान कवियो मे थे। इनकी कविता में सरसता के अतिरिक्त वाग्वैचित्र्य भी प्रचुर मात्रा में होता था। घोर अतिशयोक्तिपूर्ण वस्तु-व्यजना-पद्धति पर इन्होने विरह-ताप का वर्णन भी किया है। एक कविता का नमूना देखिये

बैठी थी सखीन सग, पिय को गवन सुन्यो,
सुख के समूह में वियोगि आगि भरकी।
'गग' कहै त्रिविधि सुगंध लै पवन बह्यौ,
लागत ही ताके तन भई बिथा जरकी॥
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर कहँ,
लागत ही औरै गति भई मानसर की।
जलचर जरे और सेवार जरि छार भये,
जल जरि गयो, पंक सूख्यो, भूमि धरकी॥

नरोत्तमदास—ये सीतापुर जिले के बाडी नामक कस्बे के रहने वाले थे। इनका रचना-काल स० १६०२ के आस-पास बताया जाता इनका 'सुदामा चरित' बडा सुन्दर और प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य है। यह शुद्ध ब्रजभाषा में है। छोटा सा काव्य होते हुए भी सरसता और भावुकता से परिपूर्ण है। इनकी 'सुदामा-चरित' के अतिरिक्त अन्य कोई पुस्तक नही मिलती। 'सुदामा-चरित' मे सुदामा जी की दरिद्रता, श्रीकृष्ण की आदर्श मित्रता आदि का सुन्दर और चित्ताकर्षक वर्णन है। प्रवाहमयी सरस अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'सुदामा-चरित' हिन्दी का एक अच्छा काव्य है।

वाग्-वैदग्ध्य और रोचक कथा-तत्त्व के कारण 'सुदामा चरित' के बहुत से अंश जनता मे पर्याप्त प्रसिद्ध हो गए है। इनकी कविता का उदाहरण देखिए :

सीस पगा न झगा तन में, प्रभु जानें को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु, पाँय उपानहुँ को नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देख, रह्यो चकिसो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपुनो नाम सुदामा॥

सेनापति—इनका जन्म स० १६४६ के लगभग अनूपशहर मे हुआ था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। पहले इनका राज-दरबार से सम्पर्क था, बाद मे सन्यास धारण कर लिया। ये बडे सहृदय कवि थे, इन्होने ऋतु-वर्णन बडा ही सुन्दर किया है। इनके ऋतु-वर्णन मे प्रकृति-निरीक्षण पाया जाता है और पद-विन्यास भी इनका ललित है। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। यमक और अनुप्रास की प्रचुरता होते हुए भी इनकी रचनाओ मे कही भी भद्दापन नही आया है। साराशत ये अपने समय के श्रेष्ठ कवि थे 'कवित्त रत्नाकर' और 'काव्य-कल्पद्रुम' इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इनकी रचनो का नमूना नीचे दिया जाता है

दूरि जदुराई सेनापति सुख दाई देखो,
आई ऋतु पावस न पाई प्रेम पतियाँ।
घोर जलधर की सुनत धुनिधर की औ,
दरकी सुहागिन की छोह भरी छतियाँ॥
आति सुधि बरकी, हिये में आनि खरकी,
तू मेरी प्रानप्यारी यह प्रीतम की बतियाँ।
हुई औधि आवन की, लाल मनभावन की,
डग भई बावन की सावन की रतियाँ॥

बनारसीदास—इनका जन्म स० १६४३ मे हुआ। ये जौनपुर के निवासी तथा जैन धर्मावलम्बी थे। पहले से शृङ्गार-रस की कविता किया करते थे। पीछे ज्ञान होने पर इन्होने वे सब कविताएँ गामती

नदी में फेंक दी और ज्ञानोपदेशपूर्ण कविताएं करने लगे। इन्होने 'अर्द्ध कथानक' के नाम से अपनी आत्म-कथा भी लिखी है। पुराने हिन्दी-साहित्य मे यह प्रथम आत्म-चरित था। इससे इसका महत्त्व वहुत अधिक है। इसके अतिरिक्त इन्होने 'वनारसी-विलास', 'नाम माला', 'वनारमी-पद्धति', 'कल्याण-मन्दिर-भापा', 'मोक्षपदी' आदि ग्रन्थो की भी रचना की है।

मुवारक—इनका जन्म स० १६४० मे हुआ। इनका कविता-काल स० १६७० से पीछे का माना जाता है। सस्कृत, फारसी और अरवी के अच्छे विद्वान् होने के अतिरिक्त ये हिन्दी के सहृदय कवि थे। इन्होने अधिकतर शृङ्गारिक कविता की है। इन्होने नायिका-भेद पर वडी सुन्दर कविता की है। इनके रचित ग्रन्थ 'अलक शतक' और 'तिलाशतक' हैं, जिसमे नायिका के एक-एक अग को लेकर दसो अगो पर सौ-सौ दोहे लिखे गए है। इनके कुछ दोहे नीचे दिये जाते है .

परी मुवारक तिय-वदन अलक ओप अति होय।
मनो चन्द की गोद में, रही निसा सी सोय॥
चिवुक कूप में मन परचो, छवि जल तृषा विचारि।
कढ़ति मुवारिक ताहि तिय, अलक डोरि सी डारि॥

३

शृङ्गार युग

(सं० १७००–१६००)

सामान्य परिचय

शृङ्गार युग के साहित्य का गम्भीर अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रमुख भक्त कवियो के बाद के छोटे-छोटे कवियो की कविता मे भक्ति-तत्त्व की अपेक्षा शृङ्गारिक भावना का पुट अधिक हो चला था। इसका एक कारण यह था कि उस समय राम-काव्य की अपेक्षा कृष्ण-काव्य का अधिक विस्तार हुआ। कृष्ण-चरित्र का जो रूप तत्कालीन कवियो ने काव्य-साधना के क्षेत्र मे स्वीकार किया वह लोक-रक्षक न होकर मन-रजक एव सौदर्य की अमित आभा से ओत-प्रोत था, राम-चरित्र के लोक-रंजक-लोक-साधक भाव का उसमे अपेक्षाकृत बहुत न्यून समावेश हुआ था। कृष्ण के माधुर्य ने जनता और कवियो का ध्यान सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। कृष्ण-काव्य मे भक्ति और शृङ्गार का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ था। कृष्ण-भक्त कवियो ने भक्ति और प्रेम के वशीभूत होकर ही शृङ्गार का वर्णन किया था। उस शृङ्गार मे एक जीवन-सगीत था, जिसने मृत हिन्दू-जनता मे जीवन संचार किया था। जिस शृङ्गार की मदिरा ने भक्ति युग मे औषध का काम किया था वही पीछे से एक घातक व्यसन बन गई। कला-पक्ष मे जब तक जीवन का सम्बन्ध रहेगा वह उन्नतिशील रहेगा, किन्तु जब कला की ही पूजा होने लगती है तो जीवन का स्रोत सूखने

लगता है। पहले भक्त कवि शृङ्गारिक कविता अपने इटष्देव को भक्ति का एक अग मानकर करते थे, किन्तु पीछे के कवियो के हाथो मे वह एक वाणी-विलास या व्यसन बनकर रह गई। राधा और कृष्ण-शृङ्गारिक कविता के आलम्बन-मात्र रह गए। उन्होने नायक-नायिकाओ का स्थान ले लिया। शृङ्गारिक कविता मे अब भक्ति-भावना की अपेक्षा विलासमयी वासना की तृप्ति होने लगी। पीछे के कवियो मे कवित्व (कला पक्ष) का प्राधान्य हो गया और भक्ति की ओट मे उनकी विलासमयी भावनाएँ पोषण पाने लगी।

दूसरी बात यह कि उस समय देश मे लडाई-झगड़े प्राय समाप्त हो चुके थे। रात-दिन सब आमोद-प्रमोद मे ही अपना समय बिताते थे। सुख-शान्ति की शीतल छाया में नारी-सौदर्य ने अपने मोहक आकर्षण का जादू डालना प्रारम्भ कर दिया था। अतः अपने आश्रयदाताओ की भाँति कवियो की मनोवृत्ति भी विलासमयी हो गई। अपने आश्रयदाताओ को प्रसन्न करने के लिए वे नारी-सौदर्य के नाना रूप उनके सामने प्रकट करने लगे। इसलिए शृङ्गारिक कविताओ की बाढ-सी आ गई। जन-साधारण से हटकर इस समय की कविता राज-दरबार की वस्तु बन गई थी। कवि लोग धन-प्राप्ति के लिए अपने आश्रयदाताओ की प्रशसा मे छन्द बनाने लगे। इनकी प्रशसा में तथ्य का अभाव सा ही रहता था, हाँ जमीन-आसमान के कुलावे खूब मिलाये जाते थे। सक्षेप में काव्य-प्रतिभा फरमाइश के रूप में प्रकट होकर दामो पर बिकने लगी। चमत्कार-पूर्ण ढग के प्रशसात्मक एव शृङ्गारिक कवित्त बनाने के लिए नई-नई रीतियो और अलकारो का प्रयोग होने लगा। ब्रजभाषा की एकरूपता नष्ट हो गई और छन्दोपयोगी बनाने के लिए भाषा को खूब तोडा-मरोडा जाने लगा। अरबी-फारसी के शब्द भी ठूँसे गए। विषय-वस्तु की दृष्टि से भी काव्य पर गहरा प्रभाव पडा। कविगण किसी उदात्त एव शाश्वत विषय को स्वीकार करके काव्य-रचना करने के स्थान मे राजा-महाराजाओ की प्रशंसा तक ही सीमित हो गए और किसी ऐतिहासिक, धार्मिक या

नैतिक आख्यान को वे अपने काव्य का विषय न बना सके। फलतः प्रबन्ध-काव्य-रचना की परम्परा समाप्त हो गई और स्फुट छन्दो मे मुक्तक प्रणाली का प्रचार हो गया।

इस काल मे काव्य-कला का अधिक प्रदर्शन होने के कारण हिन्दी मे रीति-ग्रन्थो का भी निर्माण हुआ। इन रीति-ग्रन्थों के निर्माण के लिए हिन्दी-कवियो ने सस्कृत के ग्रन्थो का सहारा लिया। किन्तु सस्कृत के इस 'सहारे' ने उनकी स्वतत्र प्रतिभा के विकास का मार्ग कुण्ठित कर दिया। उनके सामने सस्कृत आचार्यो के लक्षण-ग्रन्थ उपस्थित थे, इसलिए उन्हे रीति-ग्रन्थो, रस और अलकार आदि विषयो की पुस्तको के सम्बन्ध मे अधिक परिश्रम नही करना पड़ा। बहुत से हिन्दी के कवियो ने तो सस्कृत के ग्रन्थो का सहारा लेकर पुस्तको की रचना की और स्वतत्र अथवा मौलिक रूप से इस क्षेत्र मे कुछ भी कार्य नही किया। यदि हिन्दी वाले उतना विवेचन और करते तो हिन्दी-साहित्य का यह अग अधिक प्रौढ़ और पूर्ण हो जाता। किन्तु इस समय आचार्यो ने विवेचना की परिपाटी त्यागकर पद्यो मे सक्षिप्त तथा कभी-कभी अपूर्ण और काम चलाऊ मात्र लक्षण और परिचय देकर उनके उदाहरण-निर्माण मे अधिक प्रतिभा लगाई। परिणाम यह हुआ कि इस युग का निर्माण, उदाहरणो की दृष्टि से ललित होने पर भी शास्त्रीय दृष्टि से अपरिपक्व एव अप्रौढ ही रहा।

पर इतना तो अवश्य कहा जायगा कि शास्त्रीय विवेचन को दृष्टि से महत्त्वहीन होने पर भी ललित काव्य-रचना की दृष्टि से (चाहे उनका निर्माण उदाहरण के लिए ही क्यो न हुआ हो) यह युग पर्याप्त समृद्ध रहा है। शृङ्गार रस की अति सरस एव लालित्यपूर्ण रचनाओ के विपुल साहित्य का इस काल मे निर्माण हुआ है। देव, बिहारी, मतिराम, पद्माकर आदि की अनेक रचनाएँ अत्यन्त स्मरणीय है।

इस युग मे दो प्रकार के कवि हुए—एक तो वे, जिन्होने काव्य-लक्षण लिखकर उदाहरण दिये है, इनमे भूषण, देव आदि है। दूसरे

वे, जिन्होने केवल उदाहरण दिये हैं, उनमें विहारी आदि हैं। यद्यपि केशवदास से पूर्व कृपाराम आदि रीति-ग्रन्थ लिख चुके थे, किन्तु उनका प्रचार तथा लक्षण-निर्माण में प्रयोग प्राय बहुत कम हुआ, इसलिए केशवदास ही रीति-ग्रन्थो के सर्वप्रथम आचार्य माने जाते हैं। अब हम इस युग के प्रमुख कवियो और उनकी रचनाओ का उल्लेख करेंगे।

केशवदास—आचार्य केशवदास का जन्म स० १६१२ मे और मृत्यु १६७४ मे हुई। काल की दृष्टि से केशव का समय भक्ति युग ठहरता है, किन्तु विषय तथा काव्य-शैली की दृष्टि से हम इनको रीति-काल का प्रवर्त्तक मानते है, अत. इनका उल्लेख शृङ्गार युग मे किया जा ये रहा है। ये ओरछा नगर के सनाढ्य ब्राह्मण पडित काशीनाथ के पुत्र थे और ओरछा-नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह के आश्रित थे। ये संस्कृत के अच्छे पडित थे। सस्कृत का ज्ञान इन्हे पैतृक सम्पत्ति के रूप में ही मिला था। स्वय केशवदास ने अपने कुल की परम्परा के विरुद्ध हिन्दी में कविता करने के लिए खेद प्रकट किया है.

भाषा वोलि न जानहि, जिनके कुल के दास।
तिन भाषा कविता करी, जड़मति केशवदास॥

यद्यपि इनसे पूर्व शृङ्गार-काव्य की रचनाएँ आरम्भ हो चुकी थीं, तथापि इन्होने 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' मे काव्यागो का जैसा शास्त्रीय विवेचन किया है, वैसा अव तक किसी ने नही किया। केशव ने दण्डी और रूपक का आधार लेकर प्राचीन काल की अवस्था का प्रतिपादन किया था। उस अवस्था मे अलकार्य (विषय) और अलकारादि का भेद न था। इन्होने रस को भी अलकार ही माना था। किन्तु उनकी 'कविप्रिया' में अलकार का अर्थ व्यापक था। उनके रचे इस समय सात ग्रन्थ प्राप्त है—'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया', 'रामचन्द्रिका', 'विज्ञान गीता,' 'वीरसिंह देव चरित', 'रतन वावनी' और 'जहाँगीर जसचन्द्रिका'।

'रामचन्द्रिका' एक प्रवन्ध-काव्य है, किन्तु प्रवन्ध-काव्य मे जिस शृङ्खला की अपेक्षा की जाती है, उसका इसमें अभाव है। जगह-जगह

पर शृङ्खला विशृङ्खल होती रहती है। सुहृद कवि न होने के कारण उनकी रचना मे भावुकता और सहृदयता नही। अलंकारो की इतनी भरमार है कि उनके आगे भाव का अस्तित्व लुप्त सा हो गया है। एक दरबारी कवि होने के कारण केशवदास जी ने बाहरी तडक-भडक और कृत्रिम दृश्यावली अथवा राजसी ठाट-बाट का ही वर्णन अधिक किया, प्राकृतिक दृश्यो का नही। 'राम चन्द्रिका' मे अपने पाडित्य का प्रदर्शन करने के कारण वे प्रबन्ध-काव्य की आवश्यकताओ का भी ध्यान न रख सके, अत. 'राम चन्द्रिका' को महाकाव्य बनाने मे वे सर्वथा असफल रहे। वास्तव मे प्रतिभा-सम्पन्न कवि की दृष्टि से उनका स्थान इतना ऊँचा नही, जितना आचार्यत्व की दृष्टि से है। उनकी रचना का नमूना देखिए :

राघव की चतुरंग चमू चम, को गनै केसव राज समाजन।
सूर तुरंगन के उरझैं पग तुंग पताकिन की पट साजन॥
टूट परैं तिनके भुक्ता, धरनी उपमा बरनी कवि राजन।
बिन्दु किधौं सुख फेनन के किधौं राजसिरी स्रवै मंगल लाजन॥

चिन्तामणि—इनका जन्म १६६६ मे कानपुर जिले के अन्तर्गत तिकवाँपुर नामक ग्राम मे हुआ था। इनके पिता का नाम पडित रत्नाकर था। ये प्रसिद्ध कवि भूषण और मतिराम के भाई थे। इनके बनाये हुए पाँच ग्रन्थ उपलब्ध है—'काव्य-विवेक','काव्य-प्रकाश', 'कवि-कुल-कल्पतरु', 'रामायण' और 'छन्द विचार'। चिन्तामणि ने काव्य के प्राय. सभी अगो पर ग्रन्थ रचना की। इनकी कविता बडी सरस तथा अलकारपूर्ण है। ये मकरन्दशाह के आश्रित थे। शाहजहाँ और रुद्रशाह सोलकी से इन्हे अतुल धन मिला था। चिन्तामणि की गणना तत्कालीन उत्कृष्ट कवियो मे की जाती है। उनकी कविता का नमूना देखिए .

आँखन मूँदिबे के मिस आनि अचानक दीठि उरोज लगावै।
कै हूँ कहूँ मुसकाय चितै अँगराय अनूपम अंग दिखावे॥

नाह छुई छल सों छतियां, हँस भौंहि चढ़ाय आनन्द बढ़ावै।
जोवन के मद मत्त तिया हित सों पति को नित चित्त चुरावै॥

महाराज जसवन्तसिंह—मारवाड के प्रतापी नरेश महाराज जसवन्तसिंह का जन्म स० १६८३ मे हुआ था। ये साहित्य के अच्छे मर्मज्ञ और तत्त्व-ज्ञान-सम्पन्न पुरुष थे। इन्होने स्वय भी अनेक ग्रन्थ लिखे तथा दूसरे विद्वानो से भी लिखवाये। इनका 'भापा-भूषरा' नामक अलकार-ग्रन्थ वहुत प्रचलित है। 'भापा-भूपरा' के अतिरिक्त इन्होने तत्त्व-ज्ञान-सम्वन्धी और भी ग्रन्थ लिखे है। इनकी विशेषता यह है कि इन्होने अपने को आचार्य-कोटि तक ही सीमित रखा। इन्हे कवि-कोटि मे नही रखा जा सकता। 'चन्द्रा लोक' की छाया पर अपना 'भाषा-भूषरा' ग्रन्थ रचकर इन्होने अलंकारो की सुन्दर पाठ्य-पुस्तक तैयार की।

विहारीलाल—इनका जन्म स० १६६० में ग्वालियर के निकट वसुवा गोविन्दपुर नामक ग्राम मे हुआ। ये माथुर चौवे थे। ये जयपुर के महाराज जयसिंह के दरवार मे रहा करते थे। इन्होने अधिकतर रचना दोहो में की है। ये शृङ्गार-रस के उत्कृष्ट कवि थे। कहते है कि महाराज जयसिंह इनके सरस दोहो पर मुग्ध होकर इन्हे प्रत्येक दोहे पर एक-एक अशर्फी देते थे। इन्होने 'विहारी सतसई' की रचना की है, जिसमें शृङ्गार-रस के सात सौ दोहो का सग्रह है।

'विहारी सतसई' हिन्दी-साहित्य का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस पर अनेक विद्वानो ने टीकाएँ की है। विहारी की रचना की विशेषता यह है कि वे अपनी वाग्-विदग्धता और शब्द-चमत्कार से एक-एक दोहे मे वडी ऊँची उडान भरते थे। उनका काव्य 'गागर मे सागर' के समान है। फिर भी विहारी की कविता मे शृङ्गार की प्रधानता है, प्रेम की अनाविल उच्च भूमि पर वे नही पहुँचे है।

विहारी की विशेपता इसमें है कि उन्होने हिन्दी का सवसे लघु छन्द दोहा अपनाया और उसमे प्रवाह तथा मादकता का पूर्ण रूप से समावेश करके कवित्त तथा सवैये-जैसी व्यापकता पैदा कर दी। गागर

मे सागर भरने की उक्ति हिन्दी मे यदि कही पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है तो वह बिहारी के दोहो मे ही होती है। समास-पद्धति को अपनाकर बिहारी ने भावो की गम्भीरता और व्यापकता दोनो का सन्तुलित रूप से निर्वाह किया है तभी तो किसी कवि ने कहा है .

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं घाव करैं गम्भीर॥

बिहारी के काव्य को पढकर उनकी बहुज्ञता का भी अच्छा परिचय मिलता है। दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक, गणित आदि विषयो का दोहो मे उन्होने स्थान-स्थान पर वर्णन किया है। दर्शन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उनका यह अद्वैतवादी दोहा देखिए :

जोग जुगति सिखए सबै, मनौ महामुनि मैन।
चाहत पिय अद्वैतता, काननु सेवत नैन॥

ज्योतिष-ज्ञान का आभास इस दोहे मे प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है .

सनि कज्जल चख-झख-लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यों न नृपति ह्वै भोगवै, लहि सुदेस सबु देहु॥

संयोग और वियोग-शृङ्गार के वर्णन मे तो बिहारी को आश्चर्यजनक सफलता मिली है। उनके दोहे आज इन दोनो भावो को व्यक्त करने के लिए टकसाली सिक्के के रूप मे प्रयुक्त होते है। एक-एक शब्द से उन्होने मानसिक भावों की व्यजना की है। दोहे का प्रत्येक शब्द एक विशिष्ट भाव को अभिव्यक्त करके पाठक के अन्तर को शृङ्गार-भावना से परिपूर्ण कर देता है। सयोग-शृङ्गार का एक दोहा देखिए ·

बत-रस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहन हँसै दैन कहै नटि जाय॥

वाग्वैदग्ध्य और उक्ति-वैचित्र्य मे तो बिहारी की समता करने वाला कवि हिन्दी-साहित्य मे हुआ ही नही। उनका वाग्वैदग्ध्य अर्थ-प्रदर्शन और रचना-सौष्ठव दोनो का पूर्णत. सहायक होकर सौन्दर्य-वृद्धि करता हुआ पाठक को मोह लेता है :

अनियारे दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान।
वह चितवन औरै कछू, जिहिं वस होत सुजान॥
सखी सिखावत मान विधि, सैननि वरजति वाल।
हरुए कहि मो हिय वसत, सदा विहारीलाल॥
मेरी भव वाधा हरो राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परै स्याम हरित दुति होय॥

मतिराम–ये शृङ्गार युग के प्रमुख कवि तथा भूपरण और चिन्तामणि के भाई थे। इनका जन्म सं० १६७४ के लगभग तिकवाँपुर (जिला कानपुर) मे हुआ। ये वूँदी के महाराज भावसिंह के आश्रित थे। 'ललित ललाम' इनका प्रसिद्ध अलकार-ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त 'छन्द-सार', 'रस राज', 'साहित्य सार' और 'लक्षरण शृङ्गार' भी इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इन्होने 'विहारी सतसई' के ढग पर 'मतिराम सतसई' भी लिखी, किन्तु उसमे विहारी-जैसी सरसता नही आ सकी।

मतिराम की रचना की विशेपता यह है कि उसकी सरसता अत्यन्त स्वाभाविक है। उसमें न तो भावो की कृत्रिमता है और न भापा की। उनकी भापा आडम्वर-हीन है। केवल चमत्कार दिखाने के लिए उन्होने दोहो के अतिरिक्त कवित्त और सवैये भी लिखे हैं। उनकी रचना का उदाहरण नीचे दिया जाता है

दोऊ अनन्द सो आँगन माँझ विराजै असाढ़ की साँझ सुहाई।
प्यारी के वूझत और तिया को अचानक नाम लियो रसिकाई॥
आई उनै मुँह में हँसि कोहि, तिया पुनि चाप सी भौंह चढ़ाई।
आँखन तें गिरे आँसू के वूँद, सुहास गयो उड़ि हंस की नाईं॥

भूपरण—शृङ्गारयुगीन परम्परा में वीर रस का प्रवर्तन करने वाले आप सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनका जन्म स० १६७० मे तिकवाँपुर मे हुआ। चित्रकूट के सोलकी राजा रुद्र ने इन्हे कवि भूपरण की उपाधि दी थी, तभी से ये भूपरण के नाम से प्रसिद्ध हुए 'कवि भूषरण पदवी दई, हृदय राम सुत रुद्र।' भूपरण कई राजाओ के यहाँ रहे हैं, अन्त मे इन्होने

अपने वीर काव्य का नायक छत्रपति शिवाजी को बनाया। शिवाजी ने इन्हे एक-एक छन्द पर लाखो रुपए दिए। पन्ना के महाराज छत्रसाल के यहाँ भी भूषण का बड़ा मान हुआ। कहा जाता है कि छत्रसाल ने इनकी पालकी में अपना कन्धा लगाया था। तभी इन्होंने कहा था :

शिवा को बखानों कि बखानों छत्रसाल को।

भूषण की विशेषता यह है कि उन्होने ऐसे काल मे, जब कि शृङ्गार के अतिरिक्त लोगो को कुछ सूझता ही नही था, वीर-रस की कविता को अपनाया। साथ ही उनके वीर-रस-पूर्ण उद्‌गार सारी जनता के हृदय की सम्पत्ति बने। कारण, उन्होने जिन दो वीर नायको की वीरता को अपने काव्य का विषय बनाया, वे अन्याय-दमन मे तत्पर, हिन्दू-धर्म के सरक्षक और और इतिहास-प्रसिद्ध वीर थे। इनके प्रति जनता की पूरी सहानुभूति थी। भूषण की कविता मे झूठी खुशामद या प्रशसा नही है, वरन् एक सत्यता है, तभी वह इतनी लोकप्रिय हो गई। भूषण को हिन्दी-साहित्य का प्रारम्भिक जातीय या राष्ट्रीय कवि भी कहा जाता है। भूषण ने मुगल-साम्राज्य की स्थापना के बाद भी भारतीय गौरव, सस्कृति, सभ्यता, धर्म और भाषा को प्रतिष्ठित करने वाले वीर हिन्दू राजाओ को प्रोत्साहित किया और छत्रपति शिवाजी तथा छत्रसाल की प्रशंसा करके हिन्दू, हिन्दी और हिन्द की रक्षा का प्रयत्न किया।

भूषण रचित तीन ग्रन्थ—'शिवराज-भूषण', 'शिवा बावनी' और 'छत्रसाल-दसक' मिलते है। इनमे क्रमश. शिवाजी और छत्रसाल की वीरता का वर्णन किया गया है। भूषण की कविता वीर-रस का साकार रूप है। उनके युद्ध-वर्णन मे युद्ध का साक्षात् दृश्य आँखो के सामने आ जाता है। उनकी रचना का उदाहरण नीचे दिया जाता है :

छूटत कमान और गोली तीर बानन के,

मुशकिल होत मुरचान हू की ओट में।

ताहि समय सिवराज हाँकि, मारि हल्ला कियो,
दावा बाँधि परै सल्ला वीर वर जोट में ॥
'भूषण' भनत तेरी हिम्मत कहाँ लौं कहै,
किस्मत जहाँ लगि है जाकी भट ओट में ।
ताव दै-दै मूंछन, कँगूरन पै पाँव दै-दै,
अरि मुख घाव दै-दै, कूद पड़े कोट में ॥

कुलपति मिश्र—ये महाकवि विहारीलाल के भानजे थे और आगरा के रहने वाले थे । ये जाति के चौवे थे और इनके पिता का नाम परशुराम मिश्र था । ये महाराज जयसिंह के पुत्र रामसिंह के दरबारी कवि थे । इन्होने 'रस-रहस्य' नामक रस-सम्वन्धी ग्रन्थ लिखा है । 'रस-रहस्य' की रचना मम्मटाचार्य के 'काव्य-प्रकाश' की छाया लेकर की गई है । इसके अतिरिक्त इनके 'द्रोण-पर्व','मुक्ति-तरंगिणी', 'नख-शिख', 'संग्रह-सार', 'गुण-रस-रहस्य' नामक ग्रन्थो का और पता चलता है । मिश्रजी का कविता-काल संवत् १६२४ से १७४३ के बीच माना जाता है ।

देवदत्त (देव)—महाकवि देव इटावा के रहने वाले थे । वीसरिया कवि देव को, नगर इटावा वास । ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका जन्म-स० ११३० के आस-पास माना जाता है । शृङ्गार युग के कवियो में देव का ऊँचा स्थान है । जितने ग्रथ देव ने लिखे हैं, उतने तत्कालीन किसी कवि ने नही लिखे । इन्होंने सोलह वर्ष की अवस्था मे 'भाव-विलास' की रचना की थी । इन्होंने लगभग ७२ ग्रन्थ लिखे हैं । इनके रीति-ग्रन्थो मे 'काव्य-रसायन' और 'शब्द-रसायन' प्रसिद्ध है । हिन्दी के रसवादी कवियो में देव का स्थान सर्व-श्रेष्ठ माना जाता है । प्रेम का लक्षण, स्वरूप, महत्त्व, तथा विविध रूपो का वर्णन करने मे देव ने जिस सूक्ष्म पैठ का परिचय दिया है वैसा और कोई कवि नही दे सका । नायिका-भेद और 'नख-शिख' पर और देव की रचनाओ की तुलना कोई कवि नही कर सकता ।

शृङ्गारिक चमत्कार के साथ उनके काव्य में ज्ञान और वैराग्य का भी पुट दीख पडता है। कदाचित् वृद्धावस्था मे उनकी वृत्तियाँ वैराग्योन्मुख हो गई होगी और उसी के फलस्वरूप उन्होने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के पद लिखे हो। देव की भाषा प्राजलप्रौढ, कोमल और प्रभावपूर्ण है। ब्रजभाषा का माधुर्य और लोच उसमे भरा पडा है। शब्दो की नैसर्गिक छटा और पदो की तरलता को देखकर लगता है कि ब्रजभाषा को इन्होने सिद्ध कर लिया था। अलकार और गुणो का अपने काव्य मे उन्होने आचार्य होने के कारण इतना प्रचुर परिणाम मे समावेश किया है कि वह इनके पाडित्य की छाप डाले बिना नही रहता। श्रुति-कटु और दुष्ट शब्द इनकी रचनाओ मे नही मिलते। शृङ्गार युग का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतिभा-सम्पन्न लेखको मे देव का स्थान उल्लेखनीय है। उनमे शृङ्गार युगीन काव्य-परम्परा की समस्त शक्तियाँ और कमजोरियाँ एक साथ देखने को मिलती है।

देव कोरे कवि ही नही थे, आचार्य भी थे। इनके रीति-ग्रन्थो मे काव्यागो का बडा सुन्दर निरूपण किया गया है। इनकी कविता मे इनकी सूक्ष्म प्रतिभा, मौलिकता और पाण्डित्य के दर्शन होते है। इन्होने शाब्दिक उड़ाने नही भरी है, बल्कि भावो की गहराई तक पहुँचकर कविता को स्वाभाविक बना दिया है। इनकी भाषा ब्रजभाषा थी। देव और बिहारी को लेकर हिन्दी-जगत् मे जो वाद-विवाद चला था, वह सर्व विदित है। मिश्रबन्धुओ ने 'देव और बिहारी' नाम का बहुत सुन्दर आलोचना-ग्रन्थ लिखा है, जिसमे देव को बिहारी से ऊँचा स्थान दिया गया है। इनकी कविता का उदाहरण दिया जाता है :

धार में जाय धँसी निराधार ह्वै, जाय फँसी उकसी न अँधेरी।
री! अँगराई गिरी गहरी, गहि फेरि फिरी न घिरी नहिं घेरी॥
'देव' कछू अपनो बसु ना, रस लालच लाल चितै भई चेरी।
बेग ही बूड़ि गई पखियाँ, अँखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी॥

भिखारीदास—इनका कविता-काल स० १७८५ से १८०७ तक

माना जाता है। ये जाति के कायस्थ और प्रतापगढ के पास डोंगा नामक ग्राम के निवासी थे। दास जी की गणना उच्चकोटि के कवियो मे की जाती है। इन्होने अपनी कविता मे विषय का प्रतिपादन और भाव-प्रदर्शन बडा सुन्दर किया है। इनकी भाषा शब्दाडम्बर और चमत्कार से रहित है। इनका 'काव्य-निर्णय' नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। जिसमें प्राय सभी काव्यागो का विवेचन किया गया है। इसमे काव्य के गुण तथा शब्द की शक्ति पर भी विचार किया है।

'काव्य-निर्णय' के अतिरिक्त दास जी के 'रस साराश,' 'छन्दार्णव-पिंगल', 'शृङ्गार-निर्णय', 'नाम प्रकाश,' 'छन्द प्रकाश,' 'अमर प्रकाश,' 'पुराण-भाषा,' और 'शतरज शतक' नामक ग्रन्थो का भी पता चलता है।

श्रीपति—ये कवि होने के साथ-साथ ऊँचे दर्जे के आचार्य भी थे। इन्होने 'काव्य-सरोज' नामक रीति-ग्रन्थ बनाया, जिसका रचना-काल स० १७७७ माना जाता है। इसके अतिरिक्त इनके ६ काव्य-ग्रन्थ और है, जिनके नाम ये हैं—'कवि-कल्पद्रुम', 'रस-सागर', 'अलकार गगा', 'सरोज कलिका', 'अनुप्रास-विनोद', और 'विक्रम-विलास'।

श्रीपति के ग्रन्थो मे काव्य के प्रत्येक अग का विशद निरूपण किया गया है। इन्होंने काव्य के दोष भी दिखाए है और दोषो के उदाहरण मे केशवदास के बहुत से दोषयुक्त पद्य रखे गए है। इससे ज्ञात होता है कि ये साहित्य का सम्यक् ज्ञान रखने वाले, स्पष्ट-बोधी तथा स्वतन्त्र विचार रखने वाले आचार्य थे। यदि उस समय गद्य मे व्याख्या की पारिपाटी चल गई होती तो वास्तव मे इनका आचार्यत्व और भी अधिक पूर्णता के साथ प्रकट होता।

तोष निधि—ये शृङ्गवेरपुर के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम चतुर्भुज शुक्ल था। इन्होने स० १६६१ मे रस-भेद और भाव-भेद-सम्बधी 'सुधानिधि' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसके अतिरिक्त इन्होने 'विनय-शतक' और 'नख-शिख' नाम से दो पुस्तके और लिखी है।

इनके लक्षण बड़े सुलभ और शास्त्रयुक्त हैं। ये बड़े सहृदय थे।

रसलीन—ये हरदोई जिले के अन्तर्गत बिलग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम गुलाम नबी था। इन्होंने स० १७९४ में 'अंग-दर्पण' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'रस-प्रबोध' की रचना भी की, जिसमे रसो का निरूपण दोहो मे किया गया है। इनकी कविता में सूक्तियो का चमत्कार बडा सुन्दर होता है। इनके दोहे वास्तव में बिहारी की टक्कर के होते थे। उदाहरण के लिए देखिए :

अमिय हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।
जियत-मरत झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥

दूलह—ये उदयनाथ कवीन्द्र के पुत्र थे। इनका रचना-काल स० १८०० से १८२५ के लगभग माना जाता है। दूलह ने कवित्त और सवैयो मे 'कवि-कुल कण्ठाभरण' की रचना की। इस ग्रन्थ मे अलकारो का स्पष्ट और सुबोध विवेचन किया गया है। इन्होंने एक ही छन्द मे लक्षण और उदाहरण दिए हैं। दूलह के सम्बन्ध मे यह प्रसिद्ध है : **'और बराती सकल कवि, दूलह दूलहराय'**। इनकी रचना मधुर, मार्मिक और प्रौढ होती थी। उदाहरण देखिए :

मानें सनमानें तेइ मानें सनमानें सन,
मानें सनमानें सनमान पाइयतु है।
कहै कवि 'दूलह' अजानें अपमानें,
अपमान सों सदन तिनही को छाइयतु है॥
जानत हैं जेऊ तेऊ जात हैं बिराने द्वार,
जानि-बूझि भूले तिनको सुनाइयतु है।
काम बस परे-कोऊ गहत गरूर तो वा,
अपनी जरूर जा जरूर जाइयतु है॥

बेनी बन्दीजन—ये बेती के रहने वाले थे और अवध के प्रसिद्ध वजीर महाराज टिकैतराय के आश्रय मे रहते थे। उन्ही के नाम पर

इन्होने 'टिकैतराय-प्रकाश' नामक अलकार-ग्रन्थ बनाया। इसका रचना-काल स० १८४९ है। इनका दूसरा ग्रन्थ 'रस-विलास' है, जिसमे रसो का निरूपण किया गया है। ये हास्य-रस के प्रसिद्ध कवि थे। इनकी हास्यरस की रचनाएँ 'भडौवा सग्रह' मे सगृहीत है। इनका रचना-काल १८४९ से १८८० तक माना जाता है। इनके हास्य रस का उदाहरण देखिए

> आध पाव तेल में तैयारी भई रोशनी की,
> आध पाव रुई में पोशाक भई वर की।
> आध पाव छाले के गिनौरा दियो भाइन को,
> माँगि-माँगि लायौ है पराई चीज घर की॥
> आधी-आधी जेरि 'बेनी कवि' की विदाई कीनी,
> ब्याह आयौ जब तें न बोले बात थिर की।
> देखि-देखि कागद तबीयत सुमादी भई,
> सादी कहा भई बरबादी भई घर की॥

बेनी प्रवीन—ये लखनऊ के वाजपेयी ब्राह्मण थे। इन्होने स० १८७४ मे 'शृङ्गार-भूषण' नाम का ग्रन्थ बनाया। इसके पश्चात् 'नवरस-तरग' की रचना की, जिसमें रसो के निरूपण के साथ-साथ शृङ्गार और नायिका-भेद का भी वर्णन है। इनकी भाषा बहुत साफ-सुथरी और प्रवाहमयी है। ये ब्रजभाषा के मतिराम-जैसे कवियो के समकक्ष है। और भाषा तथा भाव के माधुर्य मे कही-कही तो ये पद्माकर से भी बढ गए है। इनकी कविता का नमूना देखने ही योग्य है .

> घनसार पटीर मिलै-मिलै नीर चहै तन लावै-न-लावै चहै।
> न बुझै बिरहागिनि झार-झरी हू चहै घन लावै-न-लावै चहै॥
> हम टेरि सुनावतीं 'बेनी प्रवीन' चहै मन लावै-न-लावै चहै।
> अब आवै बिदेस तें पीतम गेह, चहै धन लावै-न-लावै चहै॥

पद्माकर—इनका जन्म स० १८१० मे बाँदा नामक स्थान पर हुआ और मृत्यु १८९० में हुई। इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट

था। शृङ्गारयुगीन परम्परा मे ये सर्वोत्कृष्ट कवि हुए है। इनका 'जगद्विनोद' नामक ग्रन्थ बड़ा प्रसिद्ध है। इनकी कविता मे भावुकता और कल्पना दोनो का मधुर मिलन है। भाषा के प्रत्येक रूपों पर इनका पूर्ण अधिकार था।

'जगद्विनोद' के अतिरिक्त इनके—'पद्माभरण', 'हितोपदेश', 'राम-रसायन', 'प्रबोध पचासा' और 'गंगा लहरी' आदि अच्छे ग्रन्थ है। इनकी कविता की बानगी लीजिए :

फागु की भीर अभीरन में गहि, गोविंदै लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पद्माकर', ऊपर नाई अबीर की झोरी॥
छीनि पीतम्बर कम्मर तै, सुविदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुकाय, 'लला फिर आइयो खेलन होरी'॥

ग्वाल—ग्वालि कवि मथुरा-निवासी थे। इनके पिता का नाम सेवाराम भट्ट था। ये ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे। इन्होने ऋतु-वर्णन अच्छा किया है, साथ ही शृङ्गार के भी सुन्दर चित्र खीचे है। ग्वाल कवि-रचित 'रसिकानन्द,' 'रस-रंग',' कृष्णजू का नख-शिख' और 'कृष्ण-दर्पण' नामक चार ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त 'यमुना-लहरी', 'गोपी-पचासा' आदि और भी छोटे-छोटे ग्रन्थो की रचना की है।

वृन्द—ये मेडता (जोधपुर) के निवासी थे और हरणगढ-नरेश महाराज राजसिंह के गुरु थे। इन्होने स० १७५१ मे 'वृन्द-सतसई' की रचना की, जिसमे नीति के सात सौ सुन्दर दोहो का सग्रह है। इसके अतिरिक्त 'शृङ्गार-शिक्षा' और 'भाव-पचासिका' नाम की पुस्तके भी इन्ही की बनाई हुई है।

प्रतापसाहि—आपका जन्म-सवत् आपके कविता-काल के आधार पर १८३० के आस-पास ठहरता है। आपका ग्रन्थ-रचना-काल सवत् १८५२ से १९०० तक है। आप चरखारी राज्य के अधिपति महाराज विक्रमशाह के यहाँ रहते थे। इन्होने 'व्यंग्यार्थ-कौमुदी' और 'काव्य-विलास' नामक दो प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थो की रचना की। इनके अतिरिक्त 'शृङ्गार-

मजरी', 'अलकार-चिन्तामरिण', 'काव्य-विनोद', 'रत्नचन्द्रिका' आदि इनके और भी कई रीति-ग्रन्थ उपलब्ध होते है। इनकी कविता मे आचार्यत्व का समावेश बहुत उच्च-कोटि का है। कवित्व के साथ-साथ आचार्यत्व का निर्वाह करने मे इनकी गणना शृङ्गारयुगीन श्रेष्ठ कवियो मे की जाती है। भाषा मे सरसता, प्रवाह और माधुर्य इतने नैसर्गिक रूप मे है कि हम कह सकते है शृङ्गार युगीन दो-तीन कवियो को छोडकर किसी मे भी वैसा प्रवाह उपलब्ध नही होता। पदो के अन्तिम चरण तो बहुत ही गठे हुए, सुथरे और गतिपूर्ण होते है—एक उदाहरण देखिये।

चंचला-चपला चारु चकमत चारो ओर,
झूमि-झूमि पुरवा धरनि परसत है।
सीतल समीरं लागै दुखद वियोगन्हि,
संयोगन्हि समाजसुख-साज सरसत है॥
कहै 'परताप' अति निविड़ अँधेरो माँहि,
मारग चलत नाँहि नेकु दरसत है।
घुमड़ि झलान चहुँ कोप तें उमड़ि आज,
धाराधर धारन अपार वरसत है॥

बनवारी—इनका समय स० १६९० से १७०० के आस-पास माना जाता है। इन्होने अमरसिंह राठौर की वडी प्रशसा की है। इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही है। हाँ, स्फुट कविताएँ अवश्य मिलती है, जिनसे इनकी भाषा और भावो की सुन्दरता का परिचय मिलता है।

सवलसिंह चौहान—इन्होने महाभारत की कथा दोहा-चौपाइयो में लिखी है। जिसका रचना-काल १७१८ से १७८१ तक माना गया है। भाषा सरल और सुवोध है। कविता जन-साधारण के मतलव की है।

गुरु गोविन्दसिंह—ये सिखो के दसवे और अन्तिम गुरु थे। वीर सैनिक होते हुए भी ये वडे साहित्य-प्रेमी थे। स्वय भी अच्छी कविता करते थे। इनका रचा हुआ 'चण्डी-चरित' प्रसिद्ध है, जिसकी रचना वड़ी ओजपूर्ण है। ये वड़ी शुद्ध और साहित्यिक व्रजभाषा लिखते

थे। 'चण्डी-चरित' के अतिरिक्त इनके 'सुमति प्रकाश,' 'सर्वलोह,' 'प्रेम सुमार्ग,' और 'बुद्धि सागर' ग्रन्थ भी अच्छे है।

घनानन्द—इनका जन्म सवत् १७४६ मे और मृत्यु सवत् १७९६ मे हुई। ये जाति के कायस्थ थे और दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मीर मुन्शी थे। कहते है कि पहले ये सुजान नामक वेश्या पर आसक्त थे, बाद मे ज्ञान होने पर ये विरक्त होकर वृन्दावन चले गए और वैष्णव सम्प्रदाय मे सम्मिलित हो गए। इनके लिखे हुए—'सुजान सागर', 'विरह-लीला', 'कोक सार', 'रसकेलि-वल्ली' और 'कृपा काड' आदि पाँच ग्रथ है। इनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा थी। ये वियोग शृङ्गार के प्रधान कवि थे। इनकी कविता का उदाहरण निम्न है

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँचे चलै तजि आपनपौ, झिझकै कपटी जो निसाँक नहीं॥
'घन आनन्द' प्यारे सुजान सुनौ, इत एक तै दूसरौ आँक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

गिरधर कविराय—इनका जन्म सवत् १७७० बताया जाता है। इनकी नीति-सम्बन्धी कुण्डलियाँ बहुत प्रसिद्ध है। सरल और सुबोध भावो मे होने के कारण सर्वसाधारण मे इनका बहुत प्रचार है। व्यावहारिक बातो को कविता मे लिखना ही इन्हे कवि-कोटि मे पहुँचाता है। काव्य का पुट कुडलियो मे नही है।

दीनदयाल गिरि—इनका जन्म सवत् १८५९ मे काशी मे हुआ था। ये जाति के गुसाईं थे। सस्कृत के भी अच्छे मर्मज्ञ थे। इनका 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' हिन्दी-जगत् मे बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त इन्होने 'विश्वनाथ नवरत्न', 'अनुराग बाग,' 'वैराग्य दिनेश', 'दृष्टान्त तरगिनी' आदि की भी रचना की है। अपनी अन्योक्तियो के कारण ये बडे प्रसिद्ध है। अन्योक्ति अलकार को जिस रूप मे गिरिजी ने अपनी कुडलियो मे रखा वैसा अन्य कोई नही रख सका। इनकी कुडलियो मे काव्यत्व की छाप है

बरखै कहा पयोद इत मानि मोद मन माँहि ।
यह तो ऊसर भूमि है अंकुर जमिहै नाँहि ।।
अंकुर जमिहै नाँहि वरष जो सतजल जैहे ।
गरजै तरजै कहा ? बृथा तेरो स्रम जैहे ।।
बरनै 'दीनदयाल' न ठौर-कुठौरहि परखै ।
नाहक गाहक बिना, बलाहक ह्याँ तू बरखै ।।

ठाकुर—ठाकुर नाम के दो कवि और हुए है, किन्तु वे इतने प्रसिद्ध नही हुए । प्रस्तुत ठाकुर बुन्देलखण्ड के निवासी थे । इनका जन्म सवत् १८२२ मे ओरछा मे हुआ था । ये जाति के कायस्थ थे और इनका पूरा नाम ठाकुरदास था । शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ये जयपुर-नरेश के दरबार मे रहने लगे । ये स्वतत्र प्रकृति के देश-प्रेमी कवि थे । इनकी कविता बडी मधुर और स्वाभाविक होती थी । इनकी कविताओ का सग्रह 'ठाकुर-ठसक' के नाम से प्रकाशित हुआ है ।

बोधा—इनका जन्म सवत् १८०४ मे राजापुर (जिला बाँदा) मे हुआ । ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे । ये पन्ना-दरबार के आश्रित रहते थे । ये बडे रसिक कवि थे । इन्होने 'विरह वारीश' और 'इश्कनामा' दो पुस्तके लिखी है । इनकी कविता बडी हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी होती थी । भाषा भी चलती और मुहाविरेदार है । ये अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे । इनकी कविता का उदाहरण निम्न है .

अति छीन मृनाल के तारहु तै, तेहि ऊपर पाँव दे आवनो है ।
सुई बेध के द्वार सकै न तहाँ, परतीत को टाँडो लदावनो है ।।
'कवि बोधा' अनी घनी नेजहुँ तै, चढ़ि ता पै न चित्त डरावनो है ।
यह प्रेम को पंथ कराल महा, तरवार की धार पै धावनो है ।।

आलम—मुसलमान कवियो मे शेख आलम का नाम पर्याप्त प्रसिद्ध है इनके जन्म-सवत् का तो ठीक-ठीक पता नही, किन्तु इनका कविता-काल सवत् १७४० से १७६० तक माना जाता है । इनके विषय मे यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि आप जाति से ब्राह्मण थे । किन्तु एक शेख नाम

की रँगरेजिन (मुसलमान युवती) अच्छी कविता करती थी, उसकी कविता पर मुग्ध होकर उससे विवाह करने के लिए आप भी इस्लाम धर्म में दीक्षित हो गए। आपकी रचनाएँ 'आलम केलि' नामक पुस्तक मे संगृहीत हैं।

आलम ने शृङ्गार-परम्परा के अनुसार लक्षण और उदाहरण नही लिखे। प्रेम के आवेश मे जो भाव आपके हृदय मे आता है उसे उसी रूप मे लिखने में आपकी पटुता देखी जा सकती है। इसी कारण आपकी रचनाओ मे हृदयत्व की प्रधानता परिलक्षित होती है। शृङ्गार की हृदयहारिणी सरस उक्तियाँ आलम की कविता मे भरी पडी हैं। एक उदाहरण लीजिए ·

जा थल कीन्हे बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यों करै।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यों करै॥
'आलम' जौन से कुंजन में करीं केलि तहाँ अब सीस धुन्यों करै।
नैनन में जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यों करै॥

लाल कवि—वीर रस की परम्परा मे भूषण के बाद जिन कवियो का नाम प्रसिद्ध है, उनमे गोरेलाल पुरोहित उपनाम 'लाल कवि' है। आप बुंदेलखड के मऊ नामक स्थान के रहने वाले थे आपने महाराज छत्रसाल का जीवन-चरित्र बडी ही ओजस्वी भाषा मे लिखा है। आपकी पुस्तक का नाम 'छत्र प्रकाश' है और वीर-काव्यो मे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुस्तक मे घटनाओ का कार्यक्रम तो अव्यवस्थित है किन्तु उसकी भाव-भूमि बडी ही सुदृढ और परिपक्व है। शिवाजी और छत्रसाल की प्रशसा को भारतीय गौरव का रूप ही कवि ने स्वीकार किया है। 'छत्र-प्रकाश' मे प्रबन्ध-कौशल की न्यूनता नही है जो प्राय शृङ्गार युग के कवियो मे देखी जाती है।

सूदन—वीर रस के तीसरे कवि माथुर चौबे सूदन है। आप भरत-पुर के महाराज सुजानसिह उपनाम सूरजमल के आश्रित थे और उन्ही

की प्रशसा में 'सुजान चरित्र' नामक विशाल काव्य-ग्रथ रचा है। इनका जन्म-संवत् १७६० के आस-पास ठहरता है।

'सुजान-चरित्र' मे सूदन ने तत्कालीन अनेक युद्धो का बड़ा ही ओज-पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है। युद्ध आदि के वर्णन मे वस्तु-परिगणन की शैली इनकी विशेषता है। वर्णन का विस्तार और आधिक्य इस कोटि तक है कि पाठक पढते-पढते ऊव जाता है। इनमे वर्णन की प्रतिभा होने पर भी वस्तु-परिगणन और विस्तार के कारण काव्य में रस की कमी दीख पडती है। शब्दो को तोडने-मरोडने की आदत तो इनकी इतनी अधिक है कि भाषा मे कही-कही अत्यधिक भौडापन आ गया है। शृङ्गार युग में भूषण की परिपाटी को आगे वढाने में इनका योग अवश्य स्वीकार किया जायगा।

गिरिधरदास -इनका जन्म स० १८६० में हुआ। ये भारतेन्दु वावू हरिश्चन्द्र के पिता थे। इनका नाम तो लाला गोपालचन्द्र था, किन्तु ये कविता मे 'गिरिधरदास' लिखते थे। ये व्रजभाषा के वड़े प्रौढ कवि थे। इनके पास हमेशा विद्वानो और कवियो का समागम रहता था। भारतेन्दु जी ने इनके लिखे ४० ग्रन्थो का उल्लेख किया है, किन्तु वहुतो का अव पता नही। 'रस रत्नाकर', 'भारती भूषण' और 'भाषा व्याकरण' इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इनकी कविता रसात्मक कम थी और चमत्कारात्मक अधिक। फिर भी इनकी सवसे वडी साहित्य-सेवा यही थी कि उन्होने हिन्दी को भारतेन्दु-जैसा पुत्र दिया।

निष्कर्ष

शृङ्गार युग का गम्भीर अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि कला के दृष्टिकोण से यह युग वहुत सम्पन्न रहा है। इसमें कला का वाह्य पक्ष तथा जीवन-सौन्दर्य अत्यन्त अनुरजन के साथ प्रकट हुआ। किन्तु अधिकतर इतिहासकार शृङ्गार युग की वुराई ही करते है। उनका कहना है कि शृङ्गार युग से साहित्य के विस्तृत

विकास में प्रगति की अपेक्षा बाधा ही अधिक पडी है। कवियों की दृष्टि केवल शारीरिक सौन्दर्य तक ही सीमित रही; प्रकृति की अनेक-रूपता, जीवन की उदात्त एवं शाश्वत समस्याओ तथा जगत् के नाना रहस्यो की ओर कवियों का ध्यान ही नही गया। उनकी काव्य-प्रतिभा एक प्रकार से बद्ध और परिमित सी हो गई, उनका क्षेत्र सकुचित हो गया। यह आरोप कहाँ तक सत्य है, हम इस वाद-विवाद में नही पड़ना चाहते। फिर भी इतना अवश्य कहेगे कि जितना अधिक काव्य-सौष्ठव तथा प्राकृतिक दृश्य-वर्णन इस युग मे है उतना हिन्दी-साहित्य के शायद ही किसी युग मे रहा हो। ऋतु-वर्णन की शैली मे प्रत्येक ऋतु का सौन्दर्य और मनोभावो पर पडने वाले उसके प्रभाव का चित्रण योग और वियोग दोनो रूपो मे बडी सरसता के साथ चित्रित हुआ है। रही जीवन की विविध शाश्वत समस्याओ की बात, सो इस पर चाहे शृङ्गारिक अथवा रसिक कवियो ने विशेष न लिखा हो, किन्तु प्रेम और शृङ्गार से सम्बन्ध रखने वाले मनोभावो पर इन्होने पर्याप्त लिखा है। केशवदास ने 'वीरसिह देव चरित', भूषण ने 'शिवराज भूषण', गोरेलाल ने 'छत्र प्रकाश', सूदन ने 'सुजान चरित्र', 'जोधराज ने 'हम्मीर रासो' और पद्माकर ने 'हिम्मत बहादुर विरुदावली', लिखकर राजनीति को दूर से स्पर्श करने के साथ पौरुषमय जीवन का बडा स्पष्ट और ओजपूर्ण चित्रण किया है। हमे शृङ्गार युग की केवल शृङ्गारिकता पर ही ध्यान नही देना चाहिए। 'भक्ति युग' और 'वीर-प्रशस्ति युग' की प्रेरणाओ को आत्मसात् करके जीवन के लौकिक पक्ष को कभी राजनीति और कभी प्रेम से मिलाकर अत्यन्त कलात्मक रूप देने का श्रेय शृङ्गार-युग को ही है। यदि शृङ्गारयुगीन कवि प्रकृति-वर्णन को आलम्बन रूप में चित्रित कर पाते तो निस्सन्देह यह युग अपनी विविधता मे भा कई कदम बढ जाता। प्रकृति को केवल उद्दीपन रूप मे स्वीकार करने के कारण शृङ्गारयुगीन कवियो की काव्य-प्रतिभा ही सीमित न हुई वरन् साथ-ही-साथ उनका वर्ण्य विषय भी बहुत सकुचित हो गया, जिसका

कारण यह हुआ कि कविगण नारी रूप के वाह्य पक्ष पर ही रीझकर रह गए। इस सकीर्णता का कारण नर-काव्य-रचना करना ही है, साथ ही फरमाइशी कविता लिखने के कारण इस त्रुटि का होना सहज सम्भाव्य है।

सक्षेप मे हम यही कहेगे कि शृङ्गार युग मे साहित्य-शास्त्र की विशेप विवेचना हुई और रसराज 'शृङ्गार' रस की समस्त अनुभूतियो के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये गए। हिन्दी मे नीति-ग्रथो और काव्य-ग्रथो निर्माण हुआ, चाहे वह सस्कृत-ग्रथो का सहारा लेकर ही किया गया हो। सस्कृत-साहित्य से हिन्दी-साहित्य का जो सम्वन्ध है उसे देखते हुए यह प्रवृत्ति कोई अनुचित भी नही है। हम पीछे वता आए है कि यदि हिन्दी के आचार्य सस्कृत आचार्यो की भाँति इस क्षेत्र मे अधिक विचार और विवेचन करते तो साहित्य का यह अग और भी अधिक प्रौढ और शास्त्र-सम्मत होता। फिर भी जो कुछ हुआ वह न होने से तो अच्छा है। इस युग के कवियो ने शव्द-शक्ति तथा रस की सूक्ष्मता पर ध्यान दिया होता तो हिन्दी-साहित्य और भी अधिक पुष्ट होता।

इस युग मे कवित्त और सवैया-शैली का विशेष प्रचलन हुआ। साथ ही दोहे का भी विकास हुआ। दोहे की उपयोगिता इसी काल मे सिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त दोहा, चौपाई, सोरठा आदि की एक प्रवन्धात्मक शैली भी इसी युग मे देखने को मिलती है। इस युग के काव्य मे प्रादेशिक सौन्दर्य का भी अभाव नही है। ऋतु-वर्णन मे प्रकृति की विविधता का सुन्दर चित्रण देखने को मिलता है। चाहे इस प्रकृति-वर्णन में उद्दीपन की सामग्री अधिक थी, फिर भी उसमे जीवन की नवीनता और सजगता थी।

४

नव चेतना युग

(सं० १६०० से आज तक)

गद्य का विकास

नव चेतना युग को गद्य-काल के नाम से भी पुकारा जाता है। गद्य-साहित्य का आधिक्य ही इस नामकरण का कारण है। किन्तु यथार्थ मे नव चेतना युग के प्रारम्भ मे कविता या पद्य की अपेक्षा गद्य का ही प्राधान्य रहा और हिन्दी-भाषा को राजकीय कार्य तथा साधारण जनता की बोल-चाल की भाषा बनाने के लिए गद्य को विशेष रूप से स्वीकार करना पड़ा। वर्तमान युग से पहले हिन्दी मे थोडा-बहुत व्रजभाषा का गद्य मिलता है उसे हम 'प्राचीन गद्य के नाम से पुकारते है।

प्राचीन गद्य—प्राचीन काल मे हिन्दा-गद्य की रचना नही के बराबर ही है, किन्तु फिर भी जो थोडा-बहुत गद्य लिखा गया वह तत्कालीन व्रजभाषा मे ही लिखा गया। व्रजभाषा के प्राचीन गद्य के उदाहरण कुछ गोरखपथी ग्रन्थो मे देखने को मिलते है, जिनका निर्माण-काल सं० १४०७ के आस-पास है। गोरखपथियो ने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए ही इन ग्रन्थो का निर्माण किया था। इसके पश्चात् कृष्ण-भक्ति-शाखा के अन्तर्गत लिखे गए ग्रन्थों मे गद्य का नमूना मिलता है। गोसाई विट्ठलदासजी के ग्रन्थ 'शृङ्गार रस मण्डन' मे गद्य का एक अप्रौढ और अव्यवस्थित रूप मिलता है, जिसमे रचना के

नियमो का निर्वाह नही है। इसके पश्चात् वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियो ने अपने धार्मिक प्रचार के लिए दो वृहत् ग्रन्थ 'चौरासी वैष्णवो की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता' लिखे। इन दोनो ग्रन्थो के गद्य मे अपेक्षाकृत कुछ प्रवाह और प्रौढता पाई जाती है। 'चौरासी वैष्णवो की वार्ता' के लेखक स्वामी विट्ठलनाथ जी बताए जाते है, 'दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता' की रचना औरगजेब के शासन-काल में हुई है। इसका गद्य पहले के ग्रन्थो से अधिक प्रौढ और व्यवस्थित है। इसकी रचना बोल-चाल की भाषा मे हुई है। इसमें फारसी शब्दो का भी प्रयोग किया गया है, फिर भी इस ग्रन्थ द्वारा वर्तमान गद्य की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी।

स० १६६० में भक्त नाभादास ने 'अष्टयाम' नामक पुस्तक ब्रज-भाषा-गद्य में लिखी, जिसमे श्रीरामचन्द्र जी की दिनचर्या का वर्णन है। स० १७६७ में सुरति मिश्र ने सस्कृत कथा से सहारा लेकर 'बैताल पच्चीसी' लिखी। आगे चलकर लल्लूलाल जी ने इसका खडी बोली में परिवर्तन किया। स०१८५२ मे जयपुर-नरेश सवाई प्रतापसिंह की आज्ञा से लाला हीरालाल ने 'आईने अकबरी की भाषा बचनिका' नाम की बडी पुस्तक लिखी। ब्रजभाषा-गद्य का प्रयोग प्राचीन काल मे कुछ टीकाओ मे भी हुआ था। जो अव्यवस्थित और त्रुटिपूर्ण था।

खड़ी बोली का गद्य—सयुक्त प्रान्त के पश्चिमी नगरो और दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली भाषा को खडी बोली कहा जाता है। मुसलमानो के सम्पर्क से इस खडी बोली मे उर्दू-फारसी शब्द भी मिल गए थे। जब मुसलमान देश के विभिन्न भागो मे फैल गए तो उनकी भाषा और रहन-सहन का प्रभाव हमारी भाषा पर भी पडना अनिवार्य था। अत दिल्ली में बोली जाने वाली खडी बोली अब लोगो के व्यवहार मे आने लगी थी। अमीर खुसरो ने खडी बोली मे अपनी पहेलियाँ और मुकरनियाँ लिखी थी। कुछ लोगो की यह धारणा है कि खड़ी बोली उर्दू का एक रूप है अथवा इसकी उत्पत्ति मुसलमानो

के आगमन से हुई, किन्तु यह केवल भ्रम और अज्ञान-मात्र है। उर्दू के जन्म से पूर्व भी खड़ी बोली अपने व्यावहारिक रूप में प्रचलित थी। सबसे पहले तो कबीर ने खडी बोली का प्रयोग अपनी सधुक्कड़ी भाषा के रूप मे किया। अकबर के समय गग कवि ने 'चन्द-छन्द बरनन की महिमा' खड़ी बोली मे लिखी थी। स० १७८८ में रामप्रसाद निरजनी ने खडी बोली मे 'योग वाशिष्ठ' का अनुवाद किया था। स० १८१८ मे मध्य प्रदेश-निवासी प० दौलतराम ने 'पद्म पुराण' का रूपान्तर खडी बोली मे किया। इस प्रकार खडी बोली पहले भी अपने स्वतन्त्र रूप मे विद्यमान थी और अब भी है। किन्तु खडी बोली की निष्पत्ति या व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है। कुछ लोग खडी शब्द से उस भाषा का ग्रहण करते है जिसमे टवर्ग तथा मूर्धन्य अक्षरो का बाहुल्य होता है। और जो सीधी खडी हुई प्रतीत होती है। कुछ लोग 'खडी' शब्द को 'खटी' का रूपान्तर मानते है। कुछ भी हो खड़ी बोली का प्रचार जिस रूप मे आज हुआ है वह खडी इस्ट्रैट-या खरी से कोई सम्बन्ध नही रखती।

परिवर्तित परिस्थितियाँ

जब अग्रेजी शासन देश मे पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका तो उनके लिए यहाँ की भाषा सीखना आवश्यक था। उस समय यहाँ के शिष्ट समाज मे दो ही भाषाएँ प्रचलित थी। एक तो खडी-बोली का सामान्य देशी रूप, जो यहाँ के मूल निवासियो की भाषा का रूप था, दूसरा खडी बोली का दरबारी रूप, जो तब फारसी के मिश्रण से उर्दू कहलाने लगा था। अग्रेजों ने यहाँ की सामान्य भाषा अर्थात् खडी बोली को ही सीखना आवश्यक समझा और इसके लिए खडी बोली मे पुस्तकें निकलवाने की व्यवस्था होने लगी। १८६० में अग्रेजो ने कलकत्ता मे फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की। कालेज के हिन्दी-उर्दू अध्यापक लल्लूलालजो से 'प्रेम सागर' और सदल मिश्र से 'नासिकेतोपाख्यान'

लिखाया। अंग्रेजी शासन-काल के प्रारम्भ मे ईसाई धर्म-प्रचारकों ने भी हिन्दी-गद्य को अच्छा प्रोत्साहन दिया। उनकी धर्म-पुस्तको का हिन्दी-रूपान्तर प्राय खडी बोली-गद्य मे ही हुआ। यो इसके पूर्व भी खडी बोली का प्रयोग 'सैयद इशाअल्लाखाँ' द्वारा 'रानी-केतकी की कहानी' और 'ज्ञानोपदेश' मे हो चुका था। इस समय खडी-बोली गद्य को प्रगति देने वाले चार लेखक हुए है—मु० सदासुखलाल, सैयद इशाअल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र। ये चारो ही स० १८६० के आस-पास वर्तमान थे।

प्रथम उत्थान : प्राचीन काल

मुन्शी सदासुखलाल—मुन्शी जी का जन्म स० १८०२ मे दिल्ली में हुआ और मृत्यु स० १८८१ मे हुई। ये जाति के कायस्थ थे और जीविकोपार्जन के लिए अधिकतर मिर्जापुर और प्रयाग मे ही रहा करते थे। इन्होने फारसी और उर्दू में भी पुस्तके लिखी है। उर्दू मे ये 'नियाज' नाम से लिखते थे। खडी-बोली गद्य के प्रथम लेखक होने के कारण हिन्दी-साहित्य में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके सामने भाषा का कोई आदर्श नमूना नही था, इसलिए इनके ग्रन्थो मे तत्सम शब्दो की भरमार है। भाषा को फारसी शब्दो से बचाने का ये बराबर प्रयत्न करते थे। इन्होने 'सुख सागर' और 'सुरासुर निर्णय' नामक दो ग्रन्थ लिखे है।

सैयद इन्शाअल्ला खाँ—इनका जन्म मुर्शिदाबाद मे हुआ। इनके पिता का नाम मीर माशाअल्लाखाँ था। सैयद इशाअल्लाखाँ उर्दू के अच्छे शायर थे। बङ्गाल के नवाब सिराजुद्दौला की मृत्यु हो जाने पर ये दिल्ली चले आए और शाह आलम के आश्रम मे रहने लगे। इन्होने खडी बोली मे 'रानी केतकी की कहानी' लिखी। 'रानी केतकी की कहानी' इस उद्देश्य से लिखी गई थी कि उसमे **हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न हो।···बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसमें न हो··**

हिन्दवी भी न निकले और भाखापन भी न हो। भाखापनसे उनका तात्पर्य सस्कृत-मिश्रित हिन्दी से था। यद्यपि सैयद इशाअल्लाखा ने अपनी भाषा को उर्दू-फारसी तथा ब्रज और अवधी आदि गँवारू शब्दो से बचाने का प्रयत्न किया, तथापि उनकी रचना-शैली मे उर्दू का अधिक प्रभाव पड़े बिना नही रहा।

लल्लूलाल—इनका जन्म सवत् १८२० मे और मृत्यु १८८२ मे हुई। ये आगरा के रहने वाले गुजराती ब्राह्मण थे। इन्हे हिन्दी और उर्दू दोनो ही भाषाओ का ज्ञान था, साथ ही ये सस्कृत के भी ज्ञाता थे। इन्होने सं० १८६० मे फोर्ट विलियम कालेज के अध्यापक जान गिल क्राइस्ट के आदेश से 'प्रेम सागर' लिखा। इसमे श्रीमद्भागवत के दसवे स्कन्ध की कथा का वर्णन है। 'लल्लूलाल' जी की भाषा को हम ठेठ हिन्दी नही कह सकते। अकबर के समय मे गग कवि ने जिस भाषा का प्रयोग किया था, लगभग उसी प्रकार की भाषा इनकी है। कही-कही ब्रजभाषा का भी पुट आ गया है। शैली उनकी कथावाचको-जैसी है। इनकी रचना मे कविता का-सा आनन्द आता है।

सदल मिश्र—ये बिहार के रहने वाले थे, और लल्लूलालजी के साथ ही फोर्ट विलियम कालेज मे काम करते थे। इन्होने खड़ी बोली मे 'नासिकेतोपाख्यान' नामक पुस्तक लिखी है। इनकी भाषा व्यावहारिक है। लल्लूलालजी की भाँति ब्रज-मिश्रित तो नही है फिर भी ब्रज और पूर्वी शब्द यत्र-तत्र आ गए है

ईसाई-प्रचारकों और समाचार-पत्रों द्वारा गद्य का प्रचार

गद्य के निर्माण-कर्त्ताओ ने यद्यपि गद्य का मार्ग प्रशस्त कर दिया था, तथापि गद्य-साहित्य के विकास की गति स० १९१५ तक रुकी रही। इसका कारण यह है कि साहित्यिको और विद्वानो ने इस ओर तनिक भी ध्यान नही दिया। हाँ, खडी बोली के गद्य के निर्माण से ईसाई धर्म के प्रचारको ने अवश्य लाभ उठाया। साधारण जनता मे अपने धर्म का

प्रचार करने के लिए उन्होंने जन-सुलभ भाषा खड़ी बोली का ही सहारा लिया। उन्होने ईसाई-धर्म-सम्बन्धी बाईबिल आदि पुस्तको का हिन्दी मे अनुवाद किया। कहते है कि केरे नामक अग्रेज-पादरी ने बाईबिल का हिन्दी-अनुवाद किया था। साथ ही उत्तर भारत की अन्य भाषाओ भी बाईबिल का अनुवाद कराया गया। ईसाई-अनुवादको ने लल्लूलाल और सदासुखलाल की भाषा को ही अपनाया—उन्होने उर्दू-फारसी के शब्दो से भाषा को पूर्णतया समृद्ध बनाया।

हिन्दू जनता को अपने धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए ईसाई-धर्म-प्रचारको तथा उनकी सस्थाओ ने पाठशालाएँ भी खोली। सरकार की ओर से भी इन पाठशालाओ को सहायता दी गई। साथ ही सरकारी स्कूल भी खोले गए, जिनमें अग्रेजी के साथ उर्दू-हिन्दी की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया। इसके लिए हिन्दी की पुस्तको की आवश्यकता हुई। ईसाइयो ने छापेखाने भी खोले और अनेक विषयो पर गद्य मे पुस्तके लिखी गई। इस प्रकार ईसाइयो ने जहाँ हमारी सस्कृति को ठेस पहुँचाई, वहाँ हिन्दी-गद्य के प्रचार मे भी सहयोग दिया।

इसी बीच हिन्दी को विरोधियो का सामना भी करना पडा। सवत् १८६० में एक आज्ञा द्वारा सरकार ने अदालतो में नागरी लिपि के प्रयोग की आज्ञा मिली। सवत् १८९३ में प्रान्तीय सदर बोर्ड की ओर से यह आज्ञा की गई कि जिसे जिस भाषा में सुविधा हो, उसी में आवेदन-पत्र दे। सर सैयद अहमद खाँ ने मुसलमानो के सहयोग से सरकार की इस नीति का तीव्र विरोध किया। जिसके परिणामस्वरूप अदालतो में उर्दू स्वीकृत हो गई। इससे हिन्दी-भाषा के विकास मे कुछ धक्का अवश्य लगा, क्योकि सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए उर्दू पढना आवश्यक हो गया। स्वभावत हिन्दी की ओर से लोगो का ध्यान हट गया। इन अवरोधो के कारण कुछ समय के लिए हिन्दी की प्रगति मन्द पड गई।

इस सकट-काल मे हमारे पत्रो ने हिन्दी की सहायता की। ईसाई

धर्म के बढते हुए प्रचार को देखकर हिन्दू जनता के कान खड़े होने लगे। बंगाल मे राजा राममोहनराय ने हिन्दू धर्म का प्रचार करने के लिए 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। धार्मिक ग्रथो का हिन्दी मे भाष्य किया गया। उन्होने 'बगदूत' नामक एक हिन्दी-पत्र भी निकाला। उसका प्रकाशन संवत् १८६६ मे आरम्भ हुआ था। इस पत्र की हिन्दी साधारण कोटि की थी, जिस पर बगला का प्रभाव स्पष्ट झलकता था। इसी समय पं० जुगलकिशोरजी ने कानपुर से 'उदन्त मार्तण्ड' नामक हिन्दी का प्रथम समाचार-पत्र निकाला। इन पत्रो से खडी बोली-गद्य को बडी सहायता मिली। सवत् १९०२ मे राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने बनारस से 'बनारस अखबार' नामक पत्र निकाला। किन्तु उसकी भाषा उर्दू-मिश्रित थी, वह चल नै सका। संवत् १९०७ मे बाबू तारामोहन मित्र ने 'सुधाकर' नामक पत्र निकाला। सवत् १९०९ मे आगरा से 'बुद्धि-प्रकाश' नामक पत्र का प्रकाशन हुआ। इन दोनो पत्रो की भाषा साधारण और अच्छी हिन्दी थी। हिन्दी-गद्य के विकास मे और भी जिन लोगो ने सहायता पहुँचाई उनका उल्लेख आगे किया जाता है।

राजाशिवप्रसाद सितारे हिन्द—इनका जन्म सवत् १८८० मे काशी मे हुआ। सवत् १९१३ मे ये स्कूलो के इन्स्पैक्टर नियुक्त हुए। इनके प्रयत्न से ही स्कूलो मे हिन्दी का प्रवेश हुआ था। इन्होने स्कूलो के लिए हिन्दी की पाठ्य-पुस्तके भी लिखी, किन्तु इनकी भाषा मे उर्दू-फारसी के शब्दो की भरमार रहती थी। राजा शिव-प्रसाद पहले बडी शुद्ध हिन्दी लिखते थे। किन्तु बाद मे सरकारी कर्मचारी होने के कारण सरकार को खुश करने के लिए उन्होने 'आम फहम' भाषा का प्रचार किया। इनकी 'आम फहम' भाषा मे आधी से अधिक उर्दू-फारसी होती थी। इसलिए जनता मे इनकी भाषा का प्रचार नही हो सका। राजा साहब की मृत्यु सवत् १९२० मे हुई।

राजा लक्ष्मणसिंह—इनका जन्म १८८३ मे हुआ था। ये सरकारी शासन-विभाग मे कलक्टर के पद पर काम करते थे। इन्होने हिन्दी और

हिन्दू-संस्कृति की उन्नति के लिए बड़ा प्रयत्न किया। १९१८ में इन्होंने 'प्रजा-हितैषी' नामक पत्र भी निकाला था। इस पत्र की भाषा शुद्ध खड़ी बोली थी। राजा लक्ष्मणसिंह ने 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' का हिन्दी में अनुवाद किया। इस अनुवाद की भाषा संस्कृत-गर्भित और मधुर है। इन्होंने 'रघुवंश' का भी गद्य में अनुवाद किया। इनका गद्य बड़ा प्रांजल और प्रवाहपूर्ण है। सं० १९५३ में इनकी मृत्यु हुई।

महर्षि दयानन्द सरस्वती—स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म सं० १८८१ मे गुजरात मे हुआ था। ये जाति के ब्राह्मण थे। इन्होने हिन्दू-धर्म की रक्षा और भारतीय संस्कृति के प्रचार के लिए बड़ा प्रयत्न किया। इसी उद्देश्य से इन्होने सं० १९३५ मे आर्यसमाज की स्थापना की। स्वामी जी हिन्दी को आर्यभाषा कहते थे। इन्होने अपने 'सत्यार्थ-प्रकाश' नामक ग्रंथ की रचना हिन्दी में ही की। उस समय किसी ने स्वामी जी से पूछा था कि आपने इस ग्रंथ की रचना संस्कृत अथवा अन्य किसी भाषा में क्यों न की। इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया—मेरे सन्देश को राजमहलों से लेकर गरीब की झोंपड़ी तक पहुँचा देने वाली भाषा एक-मात्र हिन्दी ही है। इन्होने वेदो का भाष्य भी हिन्दी मे किया। स्वामी जी ने प्रत्येक आर्यसमाजी के लिए हिन्दी पढ़ना अनिवार्य घोषित कर दिया था। स्वामी जी की हिन्दी संस्कृत-मिश्रित है। उसमे तत्सम शब्दो का प्रयोग अधिक है। उनकी भाषा में व्यंग का पुट भी है।

इसी काल में पंजाब में श्री श्रद्धाराम फिल्लौरी के व्याख्यानो और कथाओं की धूम मच गई थी। इन्होने व्याख्यानो द्वारा हिन्दी का खूब प्रचार किया। इन्होने हिन्दी में कई पुस्तकें भी लिखी। इनका 'सत्यामृत प्रवाह' नामक सिद्धान्त-ग्रंथ बड़ी प्रौढ भाषा में लिखा हुआ है। सं० १९३४ में इन्होने 'भाग्यवती' नामक एक सामाजिक उपन्यास भी लिखा, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई। इसी समय पंजाब में श्री नवीनचन्द्र राय ने हिंदी-प्रचार के लिए प्रशंसनीय कार्य किया। ये सरकारी शिक्षा-विभाग मे काम

करते थे । ये विशुद्ध हिन्दी के पक्षपाती थे । इन्होंने भी हिन्दी मे कई पुस्तके लिखी ।

इस प्रकार हिन्दी-साहित्य के नव चेतना युग के प्रथम उत्थान मे खड़ी बोली-गद्य की नीव पर्याप्त सुदृढ हो चुकी थी । इनके पश्चात् हिन्दी-साहित्य में गद्य की दृष्टि से एक नये स्वर्णिम युग का आरम्भ हुआ, जिसके प्रवर्तक है भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ।

द्वितीय उत्थान : भारतेन्दु-काल

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय से हिन्दी-गद्य मे एक नये जीवन का संचार हुआ है । इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी । साहित्य के सभी अंगो पर इनका गहरा प्रभाव पड़ा । अभी तक साहित्य एक वर्ग विशेष के बौद्धिक विलास की वस्तु समझा जाता था, साधारण जनता को उससे कोई दिलचस्पी न थी । एक विशेष वर्ग ही साहित्यिक चर्चा में योग देता था । परन्तु भारतेन्दु बाबू ने साहित्य को जनता तक पहुँचाया और साहित्य को जनता का पूरा सहयोग प्राप्त हुआ । उन्होंने साहित्य की प्राचीन परम्परा के प्रति विद्रोह करके उसे नवीन गति और चेतना प्रदान की । उनके समय में भाषा का स्वरूप भी निर्धारित हुआ । हिन्दी को न तो वे उर्दू बनाना चाहते थे और न सस्कृत ही, वे तो हिन्दी का स्वतन्त्र स्वरूप स्थिर करना चाहते थे। इसके लिए इन्होंने बीच का मार्ग ग्रहण किया । इन्होंने अपनी भाषा मे संस्कृत के उन्ही शब्दो को स्थान दिया जो बोल-चाल की भाषा में आते थे और उर्दू के भी उन्ही शब्दो का व्यवहार किया, जिनको जनता ने अपना लिया था । इस प्रकार वर्तमान खड़ी बोली के स्वरूप को स्थिर करने का श्रेय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को ही है ।

भारतेन्दु बाबू स्वय एक विशिष्ट शैली के लेखक थे । उन्होंने अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से अनेक उत्साही युवकों का ध्यान हिन्दी की ओर आकृष्ट किया । उनके जीवन-काल मे ही लेखकों का एक मण्डल बन

चुका था। इन उत्साही लेखको ने गद्य और पद्य की नवीन दृष्टि से रचना की। अभी तक हिन्दी में नाटको का अभाव था। भारतेन्दु के समय में हिन्दी-नाटको का जन्म हुआ। भारतेन्दु ने स्वय कई नाटक लिखे और उनके अभिनय के लिए रगमचो का प्रबन्ध कराया। नाटको के अतिरिक्त उपन्यास और छोटी-छोटी कहानियाँ लिखने की प्रथा भी इसी युग में चली। इतिहास तथा जीवन-सम्बन्धी साहित्य का निर्माण भी इनके समय से ही होने लगा। इसके अतिरिक्त अन्य उपयोगी साहित्य का निर्माण करके भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त किया गया।

भारतेन्दु बाबू ने अपने प्रत्येक साधन द्वारा जनता के मानसिक क्षितिज को विस्तृत करने का पूरा उद्योग किया था। उन्होने कई पत्र और पत्रिकाएँ भी निकाली। यो उनसे पहले हिन्दी-समाचार-पत्रो का जन्म हो चुका था, किन्तु उनका जीवन अल्पकालिक ही रहा। वे कुछ दिन निकलकर बन्द हो चुके थे। उनकी भाषा और विचार-शैली भी प्रौढ न थी। किन्तु इस युग के पत्र एक नवीन भाषा, शैली, नवीन विचार और जीवनोपयोगी सामग्री लेकर जनता के सामने आए। भारतेन्दु जी की 'कवि-वचन-सुधा' नामक पत्रिका मे पुराने कवियो की कविताओ का संग्रह रहता था। 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' नाम की एक मासिक पत्रिका भी उन्होने निकाली, जो बाद में 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' के नाम से प्रख्यात हुई। शिक्षा के लिए उन्होने 'बाला-बोधिनी' नाम की एक मासिक पत्रिका निकाली। इस युग में बालोपयोगी साहित्य का भी निर्माण हुआ।

हम पहले लिख चुके है कि भारतेन्दु बाबू ने अपने व्यक्तित्व और प्रभाव से बहुत से नए लेखको को जन्म दिया। उन लेखको में एक विशेष उत्साह और जिन्दादिली थी। उस समय के लेखको ने समाज-सुधार और राजनैतिक चेतना जागृत करने के लिए व्यग-हास्यपूर्ण शैली का सफलता के साथ प्रयोग किया। भारतेन्दु युग के लेखको में पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प० बालकृष्ण भट्ट, पं० अम्बिकादत्त व्यास और ठाकुर जगमोहनसिंह का नाम विशेष

रूप से उल्लेखनीय है। नीचे हम इस काल के प्रमुख लेखकों का संक्षिप्त परिचय देते हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—आपका जन्म १६०७ में काशी के सम्पन्न और प्रतिष्ठित अग्रवाल वैश्य-कुल में हुआ था। आपके पिता बा०गोपालचन्द्र (गिरिधरदास) अच्छे कवि और लेखक थे। भारतेन्दु जी बाल्यावस्था से ही बड़े प्रतिभाशाली थे। स्थानीय क्वीन्स कालेज में अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने संस्कृत, फारसी और बंगला का भी यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया था। सं० १६२५ में आपने 'विद्यासुन्दर' नाटक का बंगला से अनुवाद करके प्रकाशित किया। इसी समय 'कवि-वचन-सुधा' का प्रकाशन हुआ। १६३० में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' निकाला। १६३१ में स्त्रियों के लिए 'बाला बोधिनी' का प्रकाशन हुआ। इन्हीं दिनों आपका ध्यान नाटकों की ओर गया, तो आपने नाटकों का भी ढेर लगा दिया। आपने मौलिक नाटकों—'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'चन्द्रावली' 'विषस्य विषमौषधम्', 'भारत-दुर्दशा', 'नील देवी,' 'अंधेर नगरी' और 'प्रेम योगिनी'-की रचना की। इनके अतिरिक्त कुछ उनके अनूदित नाटक भी है। जिनके नाम ये है—'सत्य हरिश्चन्द्र', 'मुद्रा राक्षस', 'भारत जननी', 'कर्पूर मंजरी', 'धनंजय-विजय', 'पाखण्ड विडम्बन' और 'विद्यासुन्दर'। इसके अतिरिक्त आपने नाट्यशास्त्र-सम्बन्धी एक पुस्तक 'नाटक' नाम से लिखी है। नाटकों के साथ ही आपका ध्यान साहित्य के विविध अंगो की ओर गया और आपने 'बादशाह दर्पण' और 'काश्मीर कुसुम' आदि ऐतिहासिक पुस्तकें भी लिखी।

काव्य-रचना आप ब्रजभाषा में करते थे। काव्य में आपने सर्वप्रथम राष्ट्रीय प्रेम की धारा बहाकर जनता में एक नवीन जागरण उत्पन्न कर दिया। आप उच्चकोटि के लेखक, कवि, समाज-सुधारक एवं देश-भक्त थे। सं० १६४१ में केवल ३५ वर्ष की आयु में ही आपकी मृत्यु हो गई।

पं० प्रतापनारायण मिश्र—इनका जन्म सं० १६१३ में हुआ। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता उन्नाव से आकर कानपुर में रहने

लगे थे। मिश्र जी स्वभाव से बड़े मौजी और हँसोड थे। इसीलिए इनकी रचनाओ मे हास्य और व्यग के दर्शन होते है। इनकी भाषा मे विशेष सजीवता और बोल-चाल का चलतापन है। अपनी विनोद-प्रियता के कारण वे पूर्वीपन का खयाल न करके बैसवाडे के ग्रामीण शब्दो और कहावतो तक का प्रयोग कर डालते थे। साधारण विषय को भी वे मनोरंजक बना देते थे। 'ब्राह्मण' नामक पत्र में समाज-सुधार, नागरी-हिन्दी-प्रचार, देश-दशा आदि विषयो पर इनके बड़े चटपटे लेख निकलते थे। ये स्वतन्त्र विचार के लेखक थे।

मिश्र जी ने 'कलि कौतुक', 'भारत-दुर्दशा', 'हठी-हमीर', 'जुआरी-खुआरी' आदि रूपक और नाटक भी लिखे है। स० १९५१ में इनकी मृत्यु हुई।

पं० बालकृष्ण भट्ट—ये प्रयाग के रहने वाले थे। इनका जन्म स० १९०१ मे हुआ। हिन्दी में सबसे प्रथम आपने ही छोटे-छोटे निबन्ध लिखना आरम्भ किया। आपके निबन्धो की भाषा सरल, मुहावरेदार और चलती हुई होती थी। इन्होने स० १९३१ मे 'हिन्दी-प्रदीप' नामक पत्र निकाला, जिसका सम्पादन वे तीस वर्षों तक करते रहे। इस पत्र में सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक आदि विविध विषयो के निबन्ध निकलते रहे। भट्ट जी के निबन्धो मे भी मिश्र जी की भाँति मनोरजन का पुट रहता था। इनकी रचना में खडी बोली के साथ पूर्वी का भी प्रयोग मिलता है।

स० १९४३ मे भट्टजी ने श्रीनिवासदास के 'सयोगिता-स्वयवर' नाटक की समालोचना करके समालोचना के मार्ग का सूत्रपात किया। इनकी लिखी हुई पुस्तकें 'रेल का विकट खेल', 'बाल विवाह नाटक', 'सौ अजान एक सुजान', 'नूतन ब्रह्मचारी', 'कलिराज की सभा' और 'चन्द्रसेन नाटक' आदि है। इनके निबन्धो का सग्रह 'साहित्य सुमन' नाम से प्रकाशित हुआ है। इनकी मृत्यु स० १९७१ में हुई।

पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' - इनका जन्म स० १९१२ मे

मिर्जापुर में हुआ। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। आप भारतेन्दुजी के घनिष्ठ मित्रो मे से थे। आपका स्वभाव और व्यवहार रईसाना था। अधिकतर आप साहित्यिक गद्य ही लिखते थे। आपके गद्य मे बडी सजीवता और लालित्य होता था। आपने 'आनन्द-कादम्बिनी' नामक पत्रिका भी निकाली, जिसमें आपने नाटक, प्रहसन और निबन्ध प्रकाशित होते रहते थे। 'आनन्द-कादम्बिनी' के समाचार तक आलंकारिक भाषा मे सजे हुए होते थे। 'नागरी-नारद' नामक पत्र भी आपने निकाला था। आपने 'भारतीय सौभाग्य', 'प्रयाग रामागमन' और 'वीरागना रहस्य' नामक नाटक भी लिखे। भट्टजी की भाँति आपने कुछ समालोचनाएँ भी लिखी। स० १९७९ मे आपकी मृत्यु हुई।

पं० अम्बिकादत्त व्यास—आपका जन्म स० १९१५ में हुआ। व्यासजी सस्कृत के श्रेष्ठ विद्वान् थे, साथ ही कई प्रान्तीय भाषाओ के ज्ञाता भी। आप सनातन-धर्म के उपदेशक थे। आपने हिन्दी मे अच्छी रचनाएँ की हैं। 'बिहारी-बिहार', 'अवतार-मीमासा', 'गद्यकाव्य-मीमांसा', 'आश्चर्य वृत्तान्त', 'ललिता नाटक' और 'गो-संकट नाटक' आपकी अच्छी रचनाएँ है। 'बिहारी-बिहार' में बिहारी के दोहो पर कुडलियाँ बनाई गई है। आपकी भाषा मे प्रौढता तथा गम्भीरता थी। आपकी मृत्यु स० १९५७ मे हुई।

ठाकुर जगमोहनसिह—आपका जन्म स० १९१४ मे हुआ। आप मध्य प्रदेश के विजय राघवगढ के राजकुमार थे। आप हिन्दी के सुविज्ञ लेखक थे। ठाकुर साहब ने अपनी रचनाओ मे प्रकृति का बडा मन-मोहक वर्णन किया है। 'श्यामा-स्वप्न' नामक आपकी पुस्तक बड़ी सुरुचि-पूर्ण और सुन्दर रचना है। ठाकुर साहब की रचनाओ मे भावों की प्रबलता और भाषा का सौष्ठव दोनो ही देखने को मिलते है। आपकी भाषा सस्कृत-मिश्रित हिन्दी है, परन्तु उसमे नीरसता एव कृत्रिमता नही आने पाई है। आपकी मृत्यु स० १९५६ मे हुई।

इनके अतिरिक्त बा० तोताराम, प० राधाचरण गोस्वामी, ला०

श्रीनिवासदास, बा० राधाकृष्णदास आदि इसी युग के लेखको मे है। बाबू तोताराम ने अलीगढ से 'भारत-बंधु' नामक पत्र निकाला था। इन्होने हिंदी-हित-साधन के लिए 'भाषा-सर्वद्धिनी' नाम की एक सस्था भी स्थापित की थी।

पं राधाचरण गोस्वामी ने 'भारतेन्दु' नाम का एक पत्र वृन्दावन से निकाला था, जो कुछ दिन चलकर बन्द हो गया। इन्होने कुछ नाटक लिखने के अतिरिक्त 'विरजा', 'जावित्री' और 'मृण्मयी' उपन्यासो का बङ्गला से अनुवाद किया।

ला० श्रीनिवासदास जी का 'रणधीर-प्रेम-मोहिनी' नामक नाटक प्रसिद्ध है। इन्होने 'परीक्षा-गुरु' नाम का एक मौलिक उपन्यास भी लिखा है। इनकी भाषा अपनें समकालीन लेखको से अधिक परिष्कृत, सयत और उद्देश्यानुकूल होती थी। आप मुहाविरो का प्रयोग भी अपनी भाषा में करते थे।

बा० राधाकृष्णदास भारतेन्दु के फुफेरे भाई थे। इन्होने भारतेन्दु जी के अधूरे नाटक 'सती प्रताप' को पूरा किया। इनका 'महाराणा प्रताप' नामक प्रसिद्ध नाटक है। इन्होने कई बङ्गला-उपन्यासो का अनुवाद किया।

व्रजभाषा-पद्य-धारा : प्राचीन परिपाटी

यद्यपि भारतेन्दु जी के समय मे गद्य-साहित्य मे काफी परिवर्तन हो चुका था, तथापि पद्य-धारा अभी प्राचीन परम्परा मे ही बह रही थी। इसका एक प्रमुख कारण तो यह है कि यह गद्य के विकास का युग था, पद्य की ओर किसी ने अधिक ध्यान नही दिया था। गद्य के लिए ही खड़ी बोली का उपयोग किया गया और पद्य की भाषा व्रजभाषा ही रही। व्रजभाषा अपनी सरलता और मधुरिमा के कारण साहित्य मे अपना स्थायी स्थान बना चुकी थी, अत इतने अल्प काल मे उसका सर्वथा निर्मूल होना असम्भव ही था। दूसरा कारण यह है कि यह सामाजिक

और राजनैतिक परिवर्तन का युग था। सामाजिक एवं धार्मिक सुधार के लिए प्रचार-कार्य की अधिकता रही और प्रचार-कार्य गद्य मे ही सुगमता से हो सकता था, इसलिए पद्य की ओर ध्यान नही दिया गया। गद्य की इस समय अत्यन्त आवश्यकता थी, इसलिए पद्य पर ध्यान देने का प्रश्न ही नही उठता। इन्ही कारणों से पद्य की पुरानी परिपाटी प्रचलित रही। हाँ भारतेन्दु के साहित्यिक क्षेत्र में आने से कविता के विषय और भावों मे अवश्य परिवर्तन हुआ, शृङ्गार का स्थान राष्ट्र-प्रेम ने ले लिया, किन्तु भाषा और शैली पुरानी ही चलती रही। इस राष्ट्रीय उद्‌बोधन की चर्चा हम बाद में करेंगे, पहले इस काल के प्राचीन कवियो का सक्षिप्त परिचय दे दें।

सेवक—इनका जन्म स० १७८२ में और मृत्यु १८३८ मे हुई। ये ठाकुर कवि के प्रपौत्र और ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे। इन्होने 'वाग्विलास' नाम का एक बड़ा ग्रन्थ नायिका-भेद पर बनाया। इसके अतिरिक्त बरवै छन्द में एक छोटा सा 'नख-शिख' भी इन्होंने लिखा था। ये बड़े ही रसिक जीव थे। अब कुछ बूढ़े रसिक इनके इस सवैये को गुनगुनाते है:

कवि सेवक बूढ़े भए तो कहा—
पै हनोज है मौज-मनोज ही की।

महाराज रघुराजसिंह—रीवाँ-नरेश महाराज रघुराजसिह का जन्म सं० १८८० में और मृत्यु सं० १९३६ मे हुई। इन्होने 'राम-स्वयवर' नामक वर्णनात्मक प्रबन्ध काव्य की रचना की। यह इनका बडा प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इनके 'रुक्मिणी-परिणय', 'रामाष्ट याम' आदि भी अच्छे ग्रन्थ है।

सरदार—इनका कविता-काल सं० १९०२ से १९४० तक कहा जाता है। ये काशी-नरेश महाराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिह के आश्रित थे। ये बड़े सिद्धहस्त और साहित्य-मर्मज्ञ थे। इनके रचे 'साहित्य-सरसी', 'वाग्विलास', 'षट्‌ऋतु', 'हनुमन्तभूषण', 'राम-रत्नाकर' तथा

'साहित्य सुधाकर' इत्यादि काव्य-ग्रन्थ बडे मनोहर है। इन्होने हिन्दी के प्राचीन काव्यो पर टीकाएँ भी की है।

राजा लक्ष्मणसिंह—ये हिन्दी गद्य के प्रवर्त्तक होने के साथ-साथ व्रजभाषा के अच्छे कवि भी थे। इनका उल्लेख पीछे आ चुका है। इन्होंने दोहो और चौपाइयो मे 'मेघदूत' का बडा सुन्दर अनुवाद किया। इनकी कविता मे अत्यन्त मधुरता और सरसता होती है।

लछ्राम ब्रह्मभट्ट—इनका जन्म स० १८९८ में बस्ती जिले के अमोढा नामक स्थान मे हुआ था। भारतेन्दु-काल में पुरानी परिपाटी पर व्रजभाषा की कविता करने वालो में ये बहुत प्रसिद्ध कवि है। ये समस्या-पूर्तियाँ बहुत जल्दी करते थे। इन्होंने सभी रसो पर कविता की है। कई राज-दरबारो में इनका सम्मान हुआ था।

गोविन्द गिल्ला भाई—इनका जन्म स० १९०५ मे भावनगर रियासत के अन्तर्गत सिहोर नामक स्थान पर हुआ था। इनके पास व्रज-भाषा के काव्यो का बडा अच्छा सग्रह था। व्रजभाषा की कविता इनकी बड़ी सुन्दर और प्राचीन कवियो की टक्कर की होती थी, इनके 'नीति विनोद', 'शृङ्गार-सरोजिनी', षट्-ऋतु', 'पावस-पयोनिधि', 'वक्रोक्ति-विनोद', 'प्रारब्ध पचासा' तथा 'प्रवीन सागर' इत्यादि बडे अच्छे ग्रन्थ है।

नवनीत चतुर्वेदी—ये मथुरावासी थे। इनका जन्म स० १९१५ मे और मृत्यु १९९९ मे हुई। प्राचीन परिपाटी के आधुनिक कवियो में इन्होने बहुत ख्याति प्राप्त की है।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—इनका जन्म स० १९२३ मे और मृत्यु १९८९ में हुई। ये व्रजभाषा के अनन्य भक्त थे। जब खडी बोली पद्य में भी अपनी चरम विकास को पहुँच चुकी थी, तब भी आप व्रजभाषा में कविता करते थे। आपने 'हरिश्चन्द्र', 'गंगा लहरी' आदि कई ग्रन्थ लिखे, किन्तु 'उद्धव शतक' और 'गगावतरण' ने बहुत ख्याति प्राप्त की। 'उद्धव शतक' भाव-प्रधान ग्रन्थ है और 'गगावतरण' कथात्मक काव्य है।

'उद्धव शतक' आपने भक्ति युग की भावनाओ पर लिखा है, फिर भी आपने शृङ्गारयुगीन आलंकारिकता के सामंजस्य ने उसे अत्यन्त रमणीय बना दिया है। कृष्ण और गोपियो की विरह-वेदना का बडा सुन्दर चित्रण किया गया है। 'गगावतरण' मे शृङ्गार, वीर, हास्य आदि सभी रसो की सामग्री सपुटित है। आधुनिक ब्रजभाषा के कवियो मे आपका स्थान सर्वोपरि है। 'गगावतरण' के एक छन्द का नमूना देखिए :

छहरावति छबि कबहूँ कोउ सित सघन घटा पर।
फबति फैलि जिमि जोन्ह छटा हिम प्रचुर पटा पर ॥
तिहिं घन पर लहराति लुरति चपला जब चमकै।
जग प्रतिबिम्बित दीप-दाम-दीपित-सी दमकै ॥

राय देवीप्रसाद पूर्ण—आप कानपुर के निवासी थे। आपका जन्म सं० १९२५ मे और मृत्यु १९७० में हुई। आपकी रचनाओ मे प्राचीन परिपाटी की शृङ्गारिकता के साथ-साथ देश-भक्ति की भावनाओ की अभिव्यजना भी रहती है। आपकी ब्रजभाषा विशुद्ध और सयत है। आपका ऋतु-वर्णन बडा सुन्दर है। आपने 'मेघदूत' का हिन्दी मे बड़ा सुन्दर अनुवाद किया है। इनकी कविता का उदाहरण देखिए :

परसि सलिल तेरो सीतल है पौन जौन,
ताके मन्द झूकन जगैयो प्रान प्यारी को।
मुकलित मालती समूहन के साथ-साथ,
प्रफुलित कीजियो पयोद ! सुकुमारी को ॥
होकर चकित जबै ताके सो झरोखे ओर,
दामिनी बलित वेस बानक तिहारी को।
लागियो सुनावन सरस सोरपारे बैन,
नीरद सुहावन ! वा मान जागे नारी को ॥

पं० सत्यनारायण कविरत्न—आपका जन्म सं० १९४१ में आगरा जिले के अन्तर्गत धाँधूपुरा नामक ग्राम में हुआ था। आप श्रीकृष्ण और उनकी ब्रजभूमि के अनन्य भक्त थे। आपके काव्य मे ब्रजभाषा

के सहज माधुर्य के दर्शन होते हैं। आपने प्रेम और शृङ्गार रस की भी कविता की है। आपका प्रेम वहुत उच्चकोटि का है। आपने प्रकृति का भी वडा सुन्दर और सजीव चित्रण किया है। आपने 'उत्तर राम-चरित' और 'मालती माधव' का हिन्दी में वडा सुन्दर अनुवाद किया है। आपकी कविताओ का सग्रह 'हृदय तरग' नाम से प्रकाशित हुआ है। इनकी कविता का उदाहरण निम्न है

सब ओर जितै तितै देखत हौं, दृग मोहिनी मूरत भाइ रही।
चहुँ बाहिर औ' उर-अन्तर में, बहु रूप अनूप दिखाइ रही॥
खिले स्वर्न सरोज मनोहर को जिहि आनन ओप लजाइ रही।
अति नेह सों मो-दिस लाज-पगी निज पीठि कछू तिरछाइ रही॥

वियोगी हरि—प० हरिप्रसाद जी द्विवेदी 'वियोगी हरि' का जन्म स० १९५३ मे कान्यकुब्ज ब्राह्मण-वश में हुआ था। आधुनिक युग मे ब्रजभाषा-काव्य-प्रणेताओ के अन्तर्गत उनका स्थान प्रमुख है। बाबू जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर' के अनन्तर ब्रजभाषा के कवियो मे हम उन्हे ही सर्वोत्कृष्ट पाते है। उन्होने अपनी रचनाओ में वीर-प्रशस्ति युग के वीर-भाव और भक्ति युग के उपासना-भाव को ही प्रमुख रूप से प्रश्रय प्रदान किया है।

हिन्दी की आधुनिक काव्य-रचनाओ में वीर रस का अभाव देख-कर वियोगी हरि जी ने अपनी 'वीर-सतसई' की रचना की। ब्रजभाषा की सतसई-परम्परा में उनके उपर्युक्त ग्रन्थ का अपना पृथक् महत्त्व है। इसमें उन्होने शृङ्गार युग की विलासोन्मुख भाव-धारा को प्रतिगामी रूप मे स्वीकार करके समाज के सम्यक् विकास के हेतु, वीर-भावनाओ की स्वस्थ अभिव्यजना को ही सर्वप्रमुख माना है। राष्ट्रीय कवि होने के कारण स्वतन्त्रता के पुण्य वातावरण को ही सर्वाधिक अपेक्षित मानते हुए वे कहते है :

पराधीनता-दुख भरी, कटति न काटे रात।
हा! स्वतन्त्रता को कबै, ह्वैहै पुण्य प्रभात॥

'वीर-सतसई' मे वीर रस के अङ्गोपाङ्गों की पूर्ण अन्विति उपस्थित करने की अपेक्षा वियोगी हरि जी ने अध्येता को मानसिक प्रवृत्तियों को उद्‌बुद्ध करने का ही प्रयत्न किया है। वस्तुतः उनका अन्तिम लक्ष्य उसके अन्तराल मे शौर्य भावना का स्फुरण करना ही है और इस उद्देश्य की सम्पूर्ति मे वे पूर्णतः सफल हुए हैं।

अपने भक्ति-परक काव्य मे वियोगी हरि जी ने साधना को आत्मा के विषय के रूप मे अङ्गीकृत करते हुए अपनी विचार-धारा को अत्यन्त भावुक रूप मे सम्पादित किया है। उपासना के उचित स्वरूप का निर्धारण करने से पूर्व उन्होने ईश्वर के सम्बन्ध मे गहन चिन्तना की है। हिन्दू-धर्म की प्राचीन रूढिवादिता का परित्याग करके उन्होने अपने मौलिक अध्ययन के आधार पर उपासना के सत्य-परक आदर्श मे विश्वास व्यक्त किया है। इसी मान्यता से परिचालित होकर उन्होने अपने समत्व-भावना के सिद्धान्त की प्रस्थापना की है। उन्होने ईश्वर को सृष्टि के प्रत्येक तत्त्व मे व्याप्त माना है और इसी धारणा के आधार पर हरिजनो के अन्तर मे हरि के विशेष रूप से दर्शन किये है। राजनीति के प्राङ्गण मे गाधी जी के निकट अनुयायी रहकर उन्होने हरिजन-समस्या का निराकरण करने के हेतु प्रचुर रचनात्मक कार्य किया है। साहित्य के क्षेत्र मे भी इसी भावना का प्रतिपादन करने के हेतु उन्होने हरिजनो के मुख से गहन आत्म-विश्वास के साथ कहलाया है:

माधव आज कहौ किन साँची।
क्यों हम नीचन तें हरि रूठे, ऊँचन में मति राँची॥
यंत्रित बज्र कपाटनि गढ़ए, दृढ़ मन्दिर तुम पाए।
बलिहारी रणछोड़नाथ जू, भले भाज इत आए॥
हम सबके अघ देखि दुरे हौ, किधौं मन्दिरन माँहीं।
कै कहु डरत उच्च बंसिन सों, छुअत न हमरी छाँहीं॥

पै इतहूँ नहिं कुसल तुम्हारी, फल न लेन हम दैहैं।
जो पै लिये प्रेम कछु ह्वैहै, तुम्हें खैचि प्रभु लैहैं॥

वियोगी हरि जी ने ब्रजभाषा में 'प्रेम-शतक', 'प्रेमाञ्जलि', 'प्रेम-पथिक' एव 'वीर सतसई'-जैसे मौलिक ग्रन्थो के प्रणयन के साथ-साथ उक्त भाषा के साहित्य की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्तियो का 'साहित्य-विहार' एव 'ब्रज-माधुरी-सार'-जैसी कृतियो में अपूर्व सग्रह भी उपस्थित किया है। वास्तव में उन्होने ब्रजभाषा की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियो का अध्ययन किया है और अपनी रचनाओ द्वारा उन्हे पर्याप्त समृद्धि प्रदान की है। उनका यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है :

पावस ही में धनुष अब नदी तीर ही तीर।
रोदन ही में लाल दृग नव रस ही में वीर॥

ब्रजभाषा-पद्य-धारा : नवीन परिपाटी

भारतेन्दु बाबु हरिश्चन्द्र के साथ-साथ काव्य में भी नवीन युग की भावनाएँ मुखरित हुईं। हरिश्चन्द्र की वीणा से देश-भक्ति का जो मधुर स्वर निकला, उसने काव्य-धारा को—एक सकुचित मार्ग से निकालकर विकासोन्मुख किया। उन्होंने कविता तो ब्रजभाषा में ही की, परन्तु काव्य के विषयों को अनेकरूपता देकर उसे वास्तविक जीवन के अधिक निकट ले आए। उन्होंने कविता का समाज के साथ सम्बन्ध स्थापित किया। वह कविता-कामिनी, जो प्राचीन काल से अलकारो या नायिका-भेदो की जजीरो में जकडी हुई थी, अब देश-भक्ति और समाज-सुधार के वातायनों मे आकर स्वतन्त्रता की साँस लेने लगी। हरिश्चन्द्र बाबू स्वभावतः देश-प्रेमी थे। देश और मानव की दुर्दशा देखकर उनकी आत्मा पुकार उठी .

रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥

भारत के अविद्या और कलह को देखकर उनकी आत्मा द्रवित होकर पुकार उठी •

जहँ भये शाक्य, हरिश्चन्द अरु नहुष, ययाती।
जहँ राम, युधिष्ठिर, वासुदेव सर्याती॥
जहँ भीम, करण, अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती॥

उन्होने सोते हुए समाज को ललकारा और जागृति तथा चेतना का दिव्य सन्देश सुनाया

सोअत निसि बैस गँवाई, जागो जागो रे भाई।
निसि की कौन कहे दिन बीत्यौ काल रीति चलि आई॥
देख परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस जाई।
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछताई॥

ये थी वे देश-भक्ति की भावनाएँ, जिन्होने हरिश्चन्द्र की वाणी के साथ काव्य में व्याप्त होकर उसकी गति को बदल दिया। इनके सहयोगी अथवा प्रभावित कवियो ने भी इनका अनुकरण करके इस नवीन धारा को योग दिया। इस प्रकार काव्य की प्राचीन परिपाटी के साथ-साथ देश-भक्ति की एक नवीन प्रणाली प्रकट हुई। नीचे हम नवीन परिपाटी के प्रमुख कवियो का सक्षिप्त परिचय देने के पश्चात् साहित्य के तृतीय उत्थान का प्रारम्भ करेंगे।

पं० प्रतापनारायण मिश्र—इन्होने भारतेन्दुकालीन काव्य-साहित्य को जीवन के सत्य से ओत-प्रोत किया था और वह सत्य व्यग तथा विनोद से जितना मार्मिक बना है उतना ही मनोरजक भी। मिश्र जी को साहित्य-दर्शन का इतना ज्ञान नही था, जितना जीवन-दर्शन का। विपरीत परिस्थितियो मे संघर्ष करते हुए मनुष्य ससार मे सबसे अधिक सीखता है और मिश्र जी को भी इसी प्रकार जीवन को पहचानने का अवसर मिला था। उनकी 'बुढापा' शीर्षक कविता पढकर आँखा के सामने बुढ़ापे का करुणाजनक चित्र उपस्थित हो जाता है। 'तृप्यन्ताम्' शीर्षक कविता में इन्होने बड़े कठोर व्यंग के साथ आज की दीनता और भारत के गत गौरव को याद किया है :

तर्वाह् लख्यौ जहँ रह्यौ एक दिन कंचन बरसत ।
तहँ चौथाई जन रूखी रोटी को तरसत ॥
जहाँ कृषी-वाणिज्य शिल्प-सेवा सब माहीं ।
देसिन के हित कछू तत्त्व कहुँ कैसहु नाहीं ॥
कहिय कहाँ लगि नृपति दवे हैं जहँ ऋण-भारन ।
तहँ तिनकी धन कथा कौन जे गृही सधारन ॥

पं० अम्बिकादत्त व्यास—भारतेन्दु द्वारा स्थापित 'कविता वर्द्धिनी सभा' ने इनकी सवसे पहली रचना पर ही इन्हे 'सुकवि' की उपाधि प्रदान करने के साथ-साथ पारितोषिक भी दे डाला था । अग्रेजी सभ्यता और वेश-भूषा के मतवालो पर इन्होने वडे तीखे व्यग कसे है .

पहिरि कोट पतलून बूट अरु हैट धारि सिर ।
भालू चरवी चरचि लवेंडर को लगाइ फिर ॥
नई विदेसी विद्या को ही मानत सर्बस ।
संस्कृत के मृदु बचन लगत इनको अति कर्कस ॥

इसके साथ ही ये भारतीयता की भावना को जगाने के लिए भी प्रयत्नशील थे :

अंग्रेजी हम पढ़ी तऊ अंगरेज न बनिहैं ।
पहिरि कोट पतलून चुरुट के गर्व न तनिहैं ॥
भारत ही में लियो जन्म भारत ही रहिहैं ।
भारत के ही धर्म, कर्म अरु विद्या गहिहैं ॥

पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'—इन्होने भी अपनी कविताओ में नवीन विषयो का प्रयोग करके कविता के मार्ग को विकासोन्मुख किया था । 'कलि काल-दर्पण' और 'पितर-प्रलाप' शीर्षक कविताओ में भारत के प्राचीन गौरव के स्मरण के साथ-साथ इन्होने जनता की वर्तमान दुरवस्था पर आँसू वहाए हैं । भारतेन्दु बाबू की मृत्यु पर इन्होने 'शोकास्रु-विन्दु' शीर्षक कविता द्वारा हिन्दी में सर्वप्रथम 'एलेजा' अर्थात् 'शोक-काव्य' का सूत्रपात किया। दादा भाई नौरोजी के पार्लियामेंट में

सदस्य होने पर इन्होंने 'मंगलाष्टक' नामक कविता लिखी। ऐसे भिन्न-भिन्न अवसरों पर कविता लिखने को परिपाटी हिन्दी में बिलकुल नवीन थी। इनकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रचना 'जीर्ण जन पद' है। जिसमें इन्होंने अपने जन्म-स्थान 'दत्तापुर' की दुर्दशा का वर्णन किया है। कुछ अंश देखिए :

पहुँचे तहँ जहँ प्रतिवत्सर बहु बार जात हैं।
रहन-सहन छूटे हूँ जेहि लखि नहिं अघात हैं॥
काम-काज गृह अवलोकन के, स्वजन मिलन हित।
ब्याह बरातन हूँ मै जाये रहे बहु दिन जित॥
यद्यपि गये बहु बार हीन छवि होत अधिकतर।
लखि ता कहँ अति सोच होत आवत हियरो भर॥

पं० बालमुकुन्द गुप्त—गुप्त जी का कविता-काल भारतेन्दु युग के अन्तिम वर्षों मे आता है। इसलिए उसकी रचनाओं में उन सभी नवीनताओ का प्रवेश है, जिनका प्रारम्भ भारतेन्दु तथा उनके बाद के कवियो ने किया था। प्रारम्भ मे इन्होंने कुछ पुरानी धारा की रचनाएँ की, किन्तु थोड़े ही समय में इन्होने नवीन धारा को सभी विशेषताओ के साथ अपना लिया और इसमें कुछ अपना मौलिक योग भी दिया। इनके समय तक अंग्रेजी साम्राज्य अपनी आर्थिक शोषण की नीति से अपने प्रति समाज मे विरोध की भावनाएँ उत्पन्न कर चुका था। इन्होंने साम्राज्यवाद के दमन-चक्र के नीचे पिसती हुई आर्थिक अवस्था को देखा, तो अपनी रचनाओ मे उसका बड़ा मार्मिक वर्णन किया। जनता मे आर्थिक विषमता देखकर उन्हे पूँजीवाद पर क्रोध भी आया। इनकी उस समय की रचनाओ मे कितने प्रगतिशील विचार मिलते है। उदाहरण के लिए देखिए :

हे धनियो ! क्या दीन जनों की नहिं सुनते हो हाहाकार।
जिसका मरे पड़ौसी भूखा, उसके जीवन को धिक्कार॥

है बाबा ! जो बेचारे ये भूखे प्राण गँवाएँगे।
तब कहिये क्या धनी घोलकर अशर्फियाँ पी जाएँगे॥
हे धनवानो ! हा धिक् !! किसने हर ली बुद्धि तुम्हारी है।
निर्धन उजड़ जायँगे तब फिर, कहिए किसकी बारी है॥

तृतीय उत्थान : द्विवेदी-काल

भारतेन्दु जी के पश्चात् हिन्दी-गद्य-साहित्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। नाटको, उपन्यासो तथा पत्र-पत्रिकाओं के विविध विषयपूर्ण लेखो ने जनता का ध्यान हिन्दी की ओर आकर्षित किया। अंग्रेजी पढे-लिखे युवक भी हिन्दी की ओर ध्यान देने लगे। फलत. हिन्दी-प्रचार के लिए छोटी-छोटी सभाओं और परिषदों की स्थापना होने लगी, जिनके द्वारा हिन्दी-भाषा और नागरी-प्रचार की योजनाएँ तैयार होती थी। नये-नये पुस्तकालय तथा वाचनालय खुलने लगे। स्थान-स्थान पर हिन्दी के सम्बन्ध में व्याख्यान होते थे। नाटको का अभिनय किया जाता और प्रचार तथा प्रसार के निमित्त सामूहिक प्रयत्न प्रारम्भ हुए।

संवत् १९५० मे काशी के कई उत्साही युवको के प्रयत्न से, जिनमें बाबू श्यामसुन्दरदास, प० रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवप्रसादसिंह के नाम मुख्य है, काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा की स्थापना हुई। बाबू श्यामसुन्दरदास के उद्योग से इस सभा ने हिन्दी की उन्नति के लिए बडा प्रशसनीय कार्य किया। प्राचीन ग्रंथो की खोज की गई और कई पुस्तकालयो की योजना बनी, जिनमे विभिन्न विषयो पर ग्रंथ प्रकाशित किये गए। कवियो की जीवनियाँ भी लिखी गईं। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने अपने 'शिवसिंह सरोज' में हिन्दी-कवियों और लेखको का इतिवृत्तात्मक इतिहास लिखा। 'शिवसिंह सरोज' की रचना संवत् १९४० में हुई। इसके पश्चात् डॉ० ग्रियर्सन ने 'मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ नार्दर्न इण्डिया' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया।

इस प्रकार हिन्दी का प्रचार-कार्य जोरो के साथ हुआ, किन्तु राज-दरबार में अभी उसका कोई आदर न था। इसके लिए भी जोरदा आन्दोलन हुआ। देश के प्रमुख विद्वानो और प० मदनमोहन मालवीय-जैसे देश के नेताओ ने इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिए अथक परिश्रम किया। इसके परिणामस्वरूप सवत् १९५७ में सरकारी कचहरी मे नागरी लिपि में प्रार्थना-पत्र देने की अनुमति प्राप्त हुई। यद्यपि इससे हिन्दी को अदालतो में कोई विशेष स्थान नही मिला, तथापि हिन्दी का प्रचार अवश्य हुआ। हिन्दी के स्कूलो की सख्या भी वढी और लोग अपने घरेलू काम-काज तथा पत्र-व्यवहार के लिए हिन्दी पढने लगे।

भाषा का संस्कार—ऊपर हमने हिन्दी के प्रचार-कार्य का उल्लेख किया है। इस प्रचार-कार्य से गद्य का विकास तो अवश्य हुआ किन्तु भाषा और व्याकरण की शुद्धता की ओर अधिक ध्यान नही दिया गया। हिन्दी के नये-नये लेखको ने अपने मनमाने प्रयोग तथा प्रान्तीय शब्दो का प्रयोग स्वच्छन्दतापूर्वक किया। इस वीच मे वगला-उपन्यासो का अनुवाद भी काफी हुआ था, इसके कारण यह उछृङ्खलता और भी वढी। वगला से वहुत से तत्सम शव्द हिन्दी में आ गए और साथ ही वंगला-शब्दो के प्रयोग से भाषा में एक प्रकार की अव्यवस्था सी आ गई।

भाषा की शुद्धता का एक और भी कारण था। वह यह कि जो अग्रेजी पढे-लिखे नये उत्साही लेखक हिन्दी मे आये, उन्हे हिन्दी-व्याकरण का वोध न था। ये लोग हिन्दी की प्रकृति को न पहचानकर अंग्रेजी शव्दो और मुहाविरो का अक्षरश. अनुवाद करने लगे। लिंग-भेद की कठिनाई भी इन लोगों के सामने आई और इन्होने उसमें अनेक भूलें की। हिन्दी को अभिव्यक्ति का साधन वनाने पर भी उसकी शुद्धता की ओर किसी का ध्यान नही गया।

इस काम को सर्वप्रथम प० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने हाथ में लिया। उस समय वे इण्डियन प्रेस प्रयाग द्वारा प्रकाशित 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन करते थे। उन्होने भाषा को व्याकरण-सम्मत

बनाया, लिंग-भेद की भूलो को दूर करने की चेष्टा की। लेखको का ध्यान व्याकरण की ओर आकृष्ट किया। सुधार किये बिना वे 'सरस्वती' में कोई भी लेख नही छापते थे। 'सरस्वती' उस समय एक-मात्र प्रसिद्ध हिन्दी-पत्रिका थी। उसमे नयें-पुराने अनेक लेखको के लेख प्रकाशित होते थे। द्विवेदी जी उन्हे स्वय परिश्रम करके, उनका सशोधन करके प्रकाशित करते थे। इस प्रकार खड़ी बोली को परिमार्जित और सुसंस्कृत करने का श्रेय पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी को ही है। उनके प्रयत्नो से भाषा में सफाई और सुन्दरता आ गई, उसकी अभिव्यजना-शक्ति बढी, एक स्वरूप निश्चित हुआ और हिन्दी-भाषा गम्भीर और सूक्ष्म भावो को प्रकट करने के योग्य बन गई।

भाषा की सफाई और शुद्धता के साथ ही द्विवेदी जी ने साहित्य को विभिन्न-विपयक भी बनाया। उन्होने स्वय ऐसे विषयों पर लेखनी चलाई, जिस पर अभी तक किसी ने नही लिखा था। इसी प्रकार अन्य लेखक भी विभिन्न विषयो को अपनाने लगे। विषय की विभिन्नता के साथ-साथ शैली में भी विभिन्नता आ गई। परन्तु इस विभिन्नता की रूप-रेखा अधिक स्पष्ट न हुई। इसका एक कारण तो यह था कि लेखको में अभी वैयक्तिकता का अभाव था। दूसरे ज्ञान-विज्ञान की ओर ही लेखको की दृष्टि अधिक थी। रचनात्मक साहित्य तथा ललित-कलाओ की ओर कम ध्यान था।

युगीन परिस्थितियाँ किसी भी देश के साहित्य के विकास के लिए पर्याप्त रूप से उत्तरदायी होती है। ज्यो-ज्यो हिन्दी परिमार्जित और अभिव्यजनापूर्ण होती गई, त्यों-त्यो वह जन-साधारण की अभिव्यक्ति का माध्यम बनने लगी। साहित्यकारो के अतिरिक्त राजनैतिक लोग भी उसके विकास में योग देनें लगे। हिन्दी-भाषा-भाषी-प्रान्तो से बाहर अन्यान्य प्रान्तो में हिन्दी की व्यापकता बढने लगी। हिन्दी की इस व्यापकता का सबसे बड़ा श्रेय संस्थाओ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग और व्यक्तियो में महात्मा-गांधी

की है। गांधी जी ने बोल-चाल की भाषा पर अधिक जोर दिया। मुसलमानों को सम्पर्क में लाने के लिए हिन्दी का सुसस्कृतपन भी कम किया जाने लगा। इसी समय उत्तर-प्रदेश-सरकार की ओर से एक मिली जुली भाषा के निर्माण का उद्योग किया गया। इसके लिए इलाहाबाद मे 'हिन्दुस्तानी-एकेडेमी' की स्थापना हुई और उसके द्वारा 'हिन्दुस्तानी' का प्रचार किया गया, जिसमें हिन्दी-उर्दू दोनो मिली-जुली थी। यद्यपि 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' ने 'हिन्दुस्तानी' का प्रसार किया, तथापि उसने हिंदी और उर्दू दोनो ही भाषाओ के साहित्य की वृद्धि मे सहयोग दिया है।

काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा के सद्प्रयत्न और प्रेरणा से स० १९३७ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की स्थापना हुई, जिसके सस्थापक श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन हैं। सम्मेलन ने हिन्दी-प्रचार के लिए अत्यधिक कार्य किया। सम्मेलन ने अनेक विषयों की सुन्दर पुस्तकें तैयार की। साथ ही अन्य प्रान्तो में भी प्रातीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना की गई। इसी के द्वारा दक्षिण भारत में हिन्दी का खूब प्रचार हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी-काल में हिन्दी-भाषा के स्वरूप और प्रसार दोनों का ही विकास हुआ। एक सुन्दर और सुव्यवस्थित भाषा का कलेवर पाकर साहित्य का रूप भी उत्कृष्ट हुआ। साथ ही द्विवेदी जी ने अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से अन्य नये लेखको को भी जन्म दिया। इन लेखकों द्वारा साहित्य के विभिन्न अगो—नाटक, उपन्यास, निबन्ध, समालोचना और कहानी—सभी का विकास हुआ। अनुवाद-कार्य भी धड़ल्ले के साथ किया गया। संस्कृत और बंगला-नाटकों के अनुवाद भी पर्याप्त हुए। मौलिक उपन्यासों के साथ-साथ बंगला के उपन्यासों का भी अनुवाद हुआ। इस काल में अनुवाद की ओर ही अधिक प्रवृत्ति रही। निबन्धों की ओर लोगों की रुचि कम रही, फिर भी पत्र-पत्रिकाओं में कभी-कभी अच्छे निबन्धो के दर्शन हो जाते थे। समालोचना का अंग भी

प्रौढ होने लगा। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा तथा मिश्र-बन्धुओ ने प्राचीन कवियो की कृतियो की आलोचना की। इनकी आलोचना में केवल भाषा के गुण, दोष, रस, तथा अलकारो का ही विवेचन होता था।

नाटक

नाटक-रचना की जो तीव्र प्रगति भारतेन्दु में हुई थी, वह इस काल में कुछ शिथिल पड गई। हाँ, बगला, अग्रेजी तथा सस्कृत-नाटको के अनुवाद अवश्य हुए। प० अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरि औध' ने 'प्रद्युम्न-विजय' और 'रुक्मिणी-परिणय' नाम के दो नाटक लिखे। प० बल्देवप्रसाद मिश्र ने 'प्रभास-मिलन', 'लल्ला बाबू', और 'मीराबाई' नामक नाटको की रचना की है। इनके अतिरिक्त राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने 'चन्द्रकला-भानु कुमार' और बाबू शिवनन्दन सहाय ने 'सुदामा नाटक' लिखा।

बाबू रामकृष्ण वर्मा ने 'वीर नारी', 'कृष्ण कुमारी' और 'पद्मावती' नाम के बगला-नाटको का अनुवाद किया। बाबू गोपालराम गहमरी ने 'बनवीर', 'देश-दशा', 'विद्या-विनोद' और 'चित्रागदा', का बंगला से अनुवाद किया। प० रूपनारायण पाण्डेय द्वारा 'पतिव्रता', 'खान जहाँ', 'अचलायतन', 'उस पार', 'शाहजहाँ', 'दुर्गादास' तथा 'ताराबाई' आदि बगला के अनुवाद प्रसिद्ध नाटककार श्री द्विजेन्द्रलाल राय, रवीद्रनाथ ठाकुर, गिरीश बाबू, क्षीरेन्द्राटकद 'विद्या विनोद' आदि के नाटको से हुए।

पुरोहित गोपीनाथ ने अंग्रेजी-नाटक 'रोमियो जूलियट' का अनुवाद 'प्रेम लीला' नाम से और 'एज यू लाइक इट' का अनुवाद 'वेनिस का व्यापारी' नाम से किया। प० मथुराप्रसाद चौधरी ने 'साहसेन्द्र' नाम से 'मैकवेथ' तथा 'जयन्त' नाम से 'हैमलेट' नामक अंग्रेजी-नाटको का अनुवाद किया।

सस्कृत के अनुवादो मे प० सत्यनारायण कविरत्न के 'उत्तर राम-

चरित' और 'मालती माधव' बहुत सुन्दर रहे। प० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने 'वेणी संहार', 'अभिज्ञान शाकुन्तल' तथा 'रत्नावली' नाटिका के अनुवाद किये। लाला सीताराम बी० ए० ने भी अनेक संस्कृत-नाटको और काव्यो के अनुवाद किये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस उत्थान में मौलिक नाटक बहुत कम लिखे जाकर अनुवाद ही अधिक हुए।

उपन्यास

उपन्यासो का उदय भारतेन्दु-काल मे ही हो चुका था। किंतु इस काल में भी मौलिक उपन्यास दो चार ही लिखे गए। हाँ, अनुवाद अवश्य हुए। अनुवादो की यह प्रवृत्ति इस काल मे भी बढ़ती गई। बाबू रामकृष्ण वर्मा ने 'ठग वृत्तान्त माला', 'पुलिस वृत्तान्त माला', 'चित्तौर-चातकी' और 'अकबर' नामक उपन्यासो का अग्रेजी तथा उदू से अनुवाद किया। बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री द्वारा अनूदित उपन्यासो मे 'इला', 'प्रमिला', 'जया', और 'मधु मालती' उल्लेखनीय है, जिनका अनुवाद बंगला से किया गया।

बाबू गोपालराम गहमरी ने 'चतुर चंचला', 'नये बाबू' 'बड़ा भाई', 'देवरानी जेठानी', 'दो बहनें' और 'तीन पतोहू' नामक उपन्यासो का अनुवाद बंगला से किया। काशी के बाबू गगाप्रसाद गुप्त ने उर्दू से 'पूना मे हलचल' नामक उपन्यास का अनुवाद किया। बा० रामचन्द्र वर्मा का मराठी से अनूदित 'छत्रसाल' भी उच्च श्रेणी का उपन्यास है।

मौलिक उपन्यास-लेखको मे प० किशोरीलाल गोस्वामी का नाम भारतेदु-काल के लेखको मे हुआ है। हिंदी के साथ-साथ ये सस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। इन्होनें नाटक, उपन्यास, पद्य, कहानी, नीति, धर्म, पुराणादि सभी विषयों पर पुस्तकें लिखी। इनकी भाषा भी बडी सरस और आकर्षक होती थी। आपने लगभग ६५ उपन्यास लिखे, जिनमें 'तारा', 'चपला', 'अँगूठी का नगीना', 'लखनऊ की कब्र', 'मल्लिका देवी'

'राजकुमारी', 'प्रणयी-परिणय' और 'माधवी माधव' आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

प० लज्जाराम मेहता ने 'हिंदू गृहस्थ', 'धूर्त रसिकलाल', 'आदर्श दम्पति' तथा 'आदर्श हिंदू' नामक उपन्यास लिखे। इनके उपन्यास साधारण कोटि के हैं। प० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी 'वेनिस का बाँका', 'ठेठ हिंदी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' नामक तीन उपन्यास लिखे। आप वास्तव में उपन्यासकार न होकर कवि थे।

इनके अतिरिक्त मौलिक उपन्यासों में बाबू देवकीनदन खत्री के जासूसी उपन्यासों की बडी चर्चा रही। इन्होंने 'चद्रकाता' के चार भाग और 'चद्रकाता सतति' के बीस भाग लिखे। इनके उपन्यास घटना-प्रधान है, जिनमें कौतूहल की मात्रा अधिक रहती है। यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से इनके उपन्यास अच्छे नही हैं तथापि इन्होंने हिंदी का प्रचार अवश्य किया है। बहुत से लोगो ने 'चद्रकाता' पढने के लिए ही हिंदी सीखी। उस समय कोई भी हिंदी पढा-लिखा ऐसा न होगा जिसके हाथ मे 'चद्रकाता' का कोई भाग न हो। इनके उपन्यासो ने लोगों का खाना, पीना तथा सोना तक हराम कर दिया था। साथ ही 'चद्रकाता' को पढते-पढते कितने ही लोगो की रुचि उपन्यास और साहित्य की ओर झुकी तथा वे अभ्यास करते-करते अच्छे लेखक बन गए।

उपर्युक्त दो उपन्यासो के अतिरिक्त बा० देवकीनदन खत्री ने 'कुसुम कुमारी', 'काजल की कोठरी', 'नरेंद्र मोहिनी' तथा 'वीरेंद्र वीर' आदि अन्य उपन्यास भी लिखे। 'भूतनाथ' उपन्यास अपूर्ण रहा, जिसे इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके पुत्र बा० दुर्गाप्रसाद खत्री ने पूरा किया।

इनके अतिरिक्त सवत् १९५६ में बा० व्रजनदन सहाय बी० ए० ने 'सौंदर्योपासक' और 'राधाकात' नामक दो उपन्यास लिखे। ये उपन्यास भाव-प्रधान तथा विश्लेषणात्मक थे, ऐसे उपन्यास अभी तक हिंदी में बहुत कम लिखे गए थे।

कहानी

उपन्यासो के साथ-साथ कहानियो की ओर लेखको का झुकाव हुआ। अब तक 'सिंहासन बत्तीसी' और 'बैताल पच्चीसी'-जैसी घटना-प्रधान कहानियो की पद्धति ही चली आ रही थी। किंतु शिक्षा और साहित्य के विकास के साथ-साथ लोगो की रुचि भी बदली। इसके साथ ही कहानियो के रग मे भी परिवर्तन हुआ। कहानियो मे अब घटना की प्रधानता के स्थान पर विविध प्रकार की भाव-व्यंजना के दर्शन भी होने लगे। कहानियो के विकास में एक और बात भी सहायक हुई। वह यह कि बगला-साहित्य मे अंग्रेजी के अनुकरण पर छोटी-छोटी आख्या-यिकाएँ 'गल्प' नाम से पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होने लगीं। इससे प्रभावित होकर हिन्दी के लेखको ने भी 'गल्प'-रचना की ओर रुचि प्रदर्शित की। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओ मे भी बंगला से अनूदित तथा मौलिक 'गल्प' प्रकाशित होने लगी।

कहानियो के विकास में हमारी पत्र-पत्रिकाओ का विशेष हाथ रहा है। सबसे पहले स० १९५७ मे 'सरस्वती' मे प० किशोरीलाल गोस्वामी जी की 'इन्दुमती' नामक मौलिक कहानी प्रकाशित हुई। कुछ लोगो ने इसे बंगला की छाया बतलाया, किन्तु इसका प्रभाव गल्प-रचना की दृष्टि से बहुत अच्छा पड़ा। इसके बाद 'सरस्वती' में अनेक कहानियों के दर्शन होने लगे। मा० भगवानदास की 'प्लेग की चुड़ैल' और पडित रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', प० गिरजादत्त वाजपेयी की 'पडित और पडितानी' तथा बंग-महिला की 'दुलाई वाली' कहानियाँ प्रसिद्ध हैं।

कहानी का वास्तविक विकास स० १९६८ में बाबू जयशकर प्रसाद की 'ग्राम' नामक कहानी से प्रारम्भ हुआ। यह उनके प्रसिद्ध पत्र 'इदु' मे निकली थी। इसके उपरान्त उन्होंने 'आकाश दीप', 'बिसाती', 'प्रति-ध्वनि', 'स्वर्ग के खंडहर', 'चित्र-मदिर' आदि अनेक कहानियाँ लिखीं। इसी समय मुन्शी प्रेमचन्द ने हिंदी मे कहानी लिखना प्रारम्भ किया।

मुन्शी प्रेमचद धनपतराय नाम से पहले उर्दू में कहानियाँ लिखते थे। उनके हिंदी में आने से कहानी-कला में मौलिकता का सुन्दरतम रूप हिंदी को मिला। जी० पी० श्रीवास्तव की हास्य-रस की कहानियाँ भी इस समय ही निकली थी। विश्वम्भरनाथ कौशिक ने भी इसी समय के आस-पास कहानी लिखना आरम्भ किया था।

स० १९२३ मे उनकी पहली कहानी 'रक्षा-बधन' नाम से 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुई। इसी समय प० ज्वालाप्रसाद मिश्र की कहानियाँ भी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। श्री चतुरसेन शास्त्री भी इसी काल मे कहानी-लेखक बनने प्रारम्भ हुए थे।

स० १९२७ में चद्रधर शर्मा गुलेरी की सर्वश्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था' सरस्वती में प्रकाशित हुई। यह पहली कहानी थी, जिसमे यथार्थ-वाद के बीच, सुरुचि की पावन मर्यादा के भीतर भावुकता के चरम उत्कर्ष का दर्शन हुआ।

निबन्ध

निबन्ध-साहित्य का एक महत्वपूर्ण अग है। कारण, प्रत्येक भाषा का विकास उसके निबधो मे ही देखा जाता है। हिन्दी मे निबधो का सूत्रपात भारतेन्दु-काल मे ही हो चुका था। भारतेन्द बाबू तथा उनके समाकलीन लेखको ने पर्व-त्योहार आदि सामाजिक विषयो पर निबन्ध-रचना की। परन्तु उस समय पद्य का प्रचार अधिक था, इसलिए निबन्ध रचना उच्चकोटि की न हो सकी। उस समय के निबन्धकार किसी एक विषय पर भी अपनी निर्णयात्मक शैली निश्चित न कर सके। फिर भी पत्र-पत्रिकाओ मे यत्र-तत्र निबन्ध प्रकाशित होते रहे। इनसे निबन्धो की परम्परा बराबर प्रचलित रही। निबन्ध-रचना को एक व्यवस्थित रूप तो द्विवेदी जी ने ही दिया। उन्होने निबन्ध-रचना को विविध-विषयो के साथ-साथ विभिन्न शैलियाँ भी दीं, इस काल में वर्णनात्मक निबन्धो के अतिरिक्त विचारात्मक तथा भावात्मक निबन्ध भी लिखे जाने लगे।

द्विवेदी जी की सदैव यह विशेषता रही कि उन्होने स्वयं साहित्य-रचना के साथ साथ दूसरो को भी उसकी प्रेरणा दी। प्रेरणा ही नही वरन् अपने अथक परिश्रम द्वारा उन्हे एक अच्छा लेखक बनाने का प्रयत्न भी किया। निबन्ध-रचना के लिए प्रोत्साहित करने के लिए उन्होने लार्ड बेकन के कुछ निबन्धों का अनुवाद करके 'बेकन-विचार-रत्नावली' के नाम से प्रकाशित कराया। इसी समय पं० गगाप्रसाद अग्निहोत्री ने चिपलूणाकर के मराठी निबन्धो का अनुवाद 'निबन्धमालादर्श' के नाम से प्रकाशित किया। इसके परिणाम स्वरूप पत्र-पत्रिकाओ में अनेक निबन्ध प्रकाशित हुए। किन्तु उन निबन्धो में विषयो और विचारो का सकलन ही होता था, लेखक की अन्त प्रेरणा से निकलने वाली विचार-धारा उनमे नही मिलती थी। द्विवेदी-काल मे सात प्रमुख निबन्ध-सग्रह प्रकाशित हुए — १.साहित्य-सीकर २. साहित्य-सदर्भ ३ समालोचना-समुच्चय, ४. विचार-विमर्श, ५. रसज्ञ-रजन, ६. लेखाजलि और ७. आलोचनांजलि। द्विवेदी-काल के निबन्धकारो में प० महावीरप्रसाद द्विवेदी, प० माधवप्रसाद मिश्र, प० गोविन्दनारायण मिश्र, पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बाबू गोपालराम गहमरी, बा० श्यामसुन्दरदास, बाबू गुलाबराय एम० ए० और प० रामचन्द्र शुक्ल आदि के नाम उल्लेख-नीय है। इन निबन्धकारो का सक्षेप में परिचय दिया जाता है।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी—आपका जन्म स० १९१७ में जिला रायबरेली के दौलतपुर नामक ग्राम में हुआ था। द्विवेदीजी ने सन् १९०५ मे 'सरस्वती' का सम्पादन-भार सँभाला और तब से अपना सारा समय हिन्दी की सेवा मे ही लगाया। आपकी लेखन-कला की विशेषता यह थी कि आप कठिन-से-कठिन विषय को सर्व साधारण को समझाने के लिए सरल-से-सरल भाषा मे लिखते थे। द्विवेदीजी ने अनेक लेख लिखे, किन्तु उनमे नई उद्भावनाएँ कम मिलती है। आपके लेख विचारात्मक और पाडित्यपूर्ण है। द्विवेदी जी के लेखो मे गम्भीर विषयो की विवेचना नही की गई वरन् प्राथमिक बातो की ओर ध्यान आकर्षित किया

गया है। हिन्दी-ससार मे आपका महत्त्व एक निवन्धकार के रूप मे ही नहीं वरन् इसलिए भी है कि आपने हिन्दी को अनेक लेखक प्रदान किये। इसीलिएआपको वर्तमान हिन्दी का जनक और एक युग विशेष का निर्माता कहा जाता है। आपने हिन्दी को शुद्ध रूप प्रदान करके उसे व्याकरण-सम्मत बनाया। आपकी ही प्रेरणा और प्रयत्न से हिन्दी-भाषा पर नियत्रण हुआ। स० १९९५ मे आपकी मृत्यु हुई।

श्री माधवप्रसाद मिश्र—आपका जन्म जिला हिसार के अन्तर्गत कूंगड नामक गाँव में हुआ था। आप कट्टर सनातनधर्मी और भारतीय सस्कृति के रक्षक थे। आपके लेख बडे ओजस्वी और भाषा प्रौढ होती थी। आपके निवन्धो का सग्रह 'माधव मिश्र निबन्ध-माला' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस सग्रह ही के विभिन्न विषयो के निबन्धो को देखकर मिश्रजी की बहुमुखी प्रतिभा मे कोई सदेह नही रह जाता। रामलीला, व्यास-पूर्णिमा, हिन्दी भाषा, काव्यालोचना, स्वदेशी-आन्दोलन, परीक्षा, क्षमा आदि आपके अच्छे निबन्ध है। मिश्रजी की मृत्यु स० १९६८ में प्लेग के कारण हुई।

वा० गोपालराम गहमरी—आप गहमर जिला गाजीपुर के निवासी थे इसीलिए गहमरी कहलाए। आपकी प्रसिद्धि जासूसी उपन्यास लिखने के कारण अधिक हुई। पत्र-पत्रिकाओ में बहुधा आपके लेखादि भी प्रकाशित हुआ करते थे। आपकी भाषा चटपटी और चलती हुई होती है। विषय के अनुरूप आपकी भाषा बदलती रहती है। आपकी मृत्यु १९४६ मे हुई।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त—आपका जन्म पजाब के रोहतक जिले के गुरयानी नामक गाँव में स० १९२२ मे हुआ। कलकत्ता से निकलने वाले 'बगवासी' और 'भारत मित्र' नामक पत्र के सम्पादन-काल में आपने अनेक विषयो पर सुन्दर निबन्ध लिखे थे जो 'गुप्त निबधावली' नाम से सगृहीत होकर प्रकाश में आ चुके हैं। गुप्तजी बडे छेड-छाड-प्रिय और विनोदी स्वभाव के थे। आपकी भाषा चलती हुई किन्तु विचारो

की गम्भीरता लिये होती थी। गुप्तजी की मृत्यु स० १९६४ में हुई।

पं० गोविन्दनारायण मिश्र—ये हिन्दी के प्राचीन लेखक और संस्कृत के उत्कृष्ट विद्वान् थे। इनके लेखो मे गम्भीरता और ओज है। आपका गद्य साधारण गद्य के धरातल से कही ऊँचा होता है। आपकी भाषा समास, अनुप्रास और अलकारो से अलकृत होकर एक सज-धज के साथ चलती थी। शब्दाडम्बर के इस घटाटोप मे उसके स्वाभाविक रूप का कही पता नही चलता। आपकी लेखन-शैली सस्कृत कवि बाणभट्ट के आदर्श की थी। आप अपने विचारो को बड़े लम्बे-लम्बे वाक्यो मे व्यक्त करते थे। आपके लेखो मे काव्य का-सा आनन्द तो अवश्य आता है, किन्तु उनमे चिन्तन और मनन की सामग्री का अभाव रहता है। आपके निबन्धो का सग्रह 'गोविन्दावली' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

बा० श्यामसुन्दरदास—आपका जन्म स० १९३० मे हुआ। आप काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के जन्मदाता थे। आप अपने जीवन-पर्यन्त हिंदी के एक सिद्धहस्त लेखक नही, प्रत्युत प्रभावशाली वक्ता भी रहे। आपने स्वय अनेक सुन्दर निवध लिखे और अन्य लेखको से लिखवाये। आपकी भाषा शुद्ध हिंदी है। हिंदी-भाषा और उसके कवियो के सम्बन्ध मे आपने बहुत ही खोजपूर्ण कार्य किया है। आपकी लिखी हुई बहुत सी पुस्तके आज विद्यालयो मे पढाई जाती है। आपके 'भाषा-विज्ञान,' 'साहित्यालोचन' और 'हिंदी-भाषा तथा साहित्य' तीन ग्रथ बड़े प्रसिद्ध है। आपकी मृत्यु स० २००२ मे हुई।

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—गुलेरी जी का जन्म सं० १९४० में जयपुर के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण-परिवार मे हुआ। आपका नाम हिंदी-निबध के क्रमिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। आपने 'समालोचक' नामक एक पत्र भी निकाला था। आपने अधिक निबध नही लिखे, किंतु जो कुछ लिखे, वे प्रौढ़, परिमार्जित और साहित्यिक कोटि के है। आपकी विचार-धारा पाडित्यपूर्ण और शैली मीठी चुटकियो से युक्त होती थी। भाषा-शैली सरल और व्यावहारिक होती है। भाषा,

भाषा विज्ञान, पुरातत्त्व आदि गूढ विषयो पर आपने बहुत लिखा है। 'ठलुआ-धर्म' और 'मारेसि मोहि कुठाऊँ' आपके बहुत लोक-प्रिय और प्रसिद्ध निबध है ।

बाबू गुलाबराय—इन्होने भावात्मक और विचारात्मक दोनो ही प्रकार के निबध लिखे है । आपके छोटे-छोटे विविध विषयक निबधो का सग्रह 'फिर निराश क्यो' नामक पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हुआ है। निबधकार के साथ-साथ आप एक समालोचक भी है। आपकी भाषा चुटीली होती है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल—शुक्ल जी निर्विवाद रूप में इस युग के सर्व-श्रेष्ठ निबधकार माने जाते है। आप प्रारम्भ से ही 'आनद कादम्बिनी' नामक पत्रिका में लेख लिखते चले आ रहे थे। क्रमश आपकी शैली में इतनी गम्भीरता और प्रौढता आ गई कि आपने समस्त निबध-साहित्य के लिए एक आदर्श उपस्थित कर दिया। सस्कृत, अग्रेजी आदि साहित्य से पूर्ण परिचित होते हुए भी आपकी अभिव्यजना-शैली का अपना स्वतत्र व्यक्तित्व है। आपने पाडित्य-प्रदर्शन अथवा कोरी धाक जमाने के लिए कभी नही लिखा, आपकी रचनाओ में एक-एक शब्द नपा-तुला होता है। भाव-क्षेत्र की असम्बद्ध बातो को एक सूत्र में गुम्फित करके लडी के रूप मे रखने की विशेषता वास्तव में शुक्ल जी को ही प्राप्त है। आपकी लेखनी के सहयोग से ही निबन्ध-कला अपनी चरम विकामावस्था को प्राप्त हुई। आपने करुणा, क्रोध और प्रीति आदि पर जो सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विवेचना की है वह हिन्दी-साहित्य के लिए एक नई देन है। अग्रेजी-साहित्य में जो स्थान आज रस्किन और बेकन को प्राप्त ह वही स्थान हिन्दी-साहित्य में शुक्ल जी को प्राप्त है। 'विचार-वीथी', 'चिन्तामणि' और 'त्रिवेणी' नाम से आपके निबध-सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'चिन्तामणि' पर आपको मगलाप्रसाद पारितोषिक भी मिला है। वास्तव में आपके हाथो में आकर हिन्दी भाषा गौरवान्वित ही हुई है।

इन लेखको के अतिरिक्त पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का नाम भी निबधकारो मे आ सकता है। इन्होने अधिकाश लेख निबधो के उदाहरण स्वरूप मे लिखे है,इसलिए वे साहित्यिक निबधो की कोटि मे नही आ सकते हाँ, पढने वाले विद्यार्थियो को उनसे विशेष लाभ हुआ। आपने स्कूलो की भिन्न-भिन्न कक्षाओ के लिए पाठ्य पुस्तके अधिक लिखी है। 'हिन्दी-निबध शिक्षा' और 'प्रबंध रचना-शैली' इसी कोटि की पुस्तके है। आपके निबधो के सग्रह 'गद्यमाला' और 'निबध-निचय' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं।

समालोचना

यद्यपि भारतेन्दु-काल मे समालोचना का सूत्रपात हो चुका था तथापि आधुनिक समालोचना का मार्ग द्विवेदी-काल में ही प्रशस्त हुआ। इससे पहले जो थोडी-बहुत समालोचना हुई,वह पत्र-पत्रिकाओ मे ही हुई, पुस्तकाकार कोई आलोचना सामने नही आई। शायद इसी कारण विशेष से अध्ययनपूर्ण आलोचनाओ की परम्परा न चली। आलोचना के दो प्रमुख रूप होते है—निर्णयात्मक और व्याख्यात्मक। निर्णयात्मक आलोचना मे केवल गुण-दोषो का विवेचन करके कृति का मूल्य निश्चित किया जाता है। व्याख्यात्मक आलोचना मे किसी ग्रथ मे कही हुई बातो पर व्यवस्थित रूप से विचार होता है। विवेचन द्वारा उन बातो का अनेक ढग से स्पष्टीकरण किया जाता है। व्याख्यात्मक आलोचना में मूल्यांकन का महत्त्व नही होता। ऐसी आलोचना कथावस्तु और विषयो तक ही सीमित रहती है। इसमे समय विशेष की परिस्थितियो के प्रभाव को ध्यान मे रखकर काव्य की व्याख्या की जाती है।

भारतेन्दु-काल मे निर्णयात्मक समालोचना का ही सूत्रपात हुआ। उस समय के आलोचक किसी कवि की कृति मे केवल दोष निकालकर ही अपने पक्ष की स्थापना करने मे लीन रहते थे। उसके गुणो को प्रकाश मे नही लाया जाता था। केवल छिद्रान्वेषण ही समालोचना का

मुख्य उद्देश्य वन गया था। भारतेन्दु काल में बद्रीनारायण चौधरी, प० वालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी मे समालोचना का सूत्रपात किया। भट्ट जी ने ला० श्रीनिवासदास के 'सयोगिता-स्वयवर' नाटक की खरी समालोचना की थी। चौधरी जी ने उक्त नाटक के केवल दोषो पर ही प्रकाश डाला था।

द्विवेदी-काल में हम सर्वप्रथम पं० महावीप्रसाद द्विवेदी को इस ओर वढता पाते है। उन्होने स० १८९९ मे 'हिन्दी कालिदास की आलोचना', सं० १९०० में 'विक्रमांक देव चरित-चर्चा' और 'नैषध चरित-चर्चा' द्वारा आलोचना के मार्ग को प्रथम प्रकाश दिखाया। यह ध्यान रहे कि इनमें से अधिकाश रचनाएँ खडनात्मक है, विधेयात्मक नही।

इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी ने 'पुस्नक-परिचय' की एक नई शैली चलाई। स्तम्भ मे पुस्तक तथा लेखक का परिचय देकर उसकी सुन्दरता-असुन्दरता दिखाई जाती थी। इससे प्रभावित होकर कई पत्र-पत्रिकाओ में पुस्तक-समीक्षा निकलने लगी। इस प्रकार परिचयात्मक समालोचना का एक विशाल साहित्य प्रस्तुत हो गया, किन्तु उनमे लेखकों की त्रुटियाँ ही अधिक दिखाई जाती थी। द्विवेदी जी की आलोचना भी यथार्थ आलोचना नही थी, किन्तु उनकी आलोचना ने लेखको को भाषा-सुधार के लिए विवश कर दिया।

द्विवेदीजी के वाद मिश्रवन्धुओ ने इस क्षेत्र में कदम वढाया। उन्होने 'हिन्दी नवरत्न' लिखा, जिसमें देव और विहारी की तुलना करके उन्होने देव को ऊँचा उठाया और विहारी को नीचे गिराया। फिर तो इस विषय को लेकर साहित्य में अच्छी-खासी दलवन्दी खडी हो गई। लाला भगवानदीन ने 'विहारी और देव' लिखा, जिसमें अनेक तर्कों के साथ विहारी को ऊँचा दिखाया गया और देव को नीचा। इसके उत्तर में मिश्रवन्धुओ ने 'देव और विहारी' लिखा, किन्तु उसमे आलो-चना की कोई कसौटी सामने नही रखी गई। विहारी-सम्वन्धी इन आलोचनाओं ने देव और विहारी को लेकर एक साहित्यिक वितडावाद

प्रारम्भ कर दिया, जिसके फलस्वरूप पत्र-पत्रिकाओ में पक्ष और विपक्ष मे बहुत से लेख निकले, जिनका आज समालोचना-साहित्य में केवल ऐतिहासिक महत्त्व है। इन लेखो से तुलनात्मक समीक्षा की एक बाढ-सी आ गई, जिसमे अध्ययन और रुचि-संस्कार का प्रभाव था। इस वितडा-वाद से हिन्दी-प्रेमियों का ध्यान समालोचना की ओर आकर्षित तो अवश्य हुआ, किन्तु वह रूढ़िगत था, नूतन उद्भावना और मौलिक प्रतिभा का उसमें अभाव ही था।

इसी समय एक प्रसिद्ध आलोचक प्रकट हुए – पं० पद्मसिंह शर्मा। इन्होने 'विहारी' पर आलोचनात्मक पुस्तक लिखी, जिसमें 'आर्या सप्तशती', और 'गाथा-सप्तशती' के पद्यो के साथ बिहारी की तुलना करके युक्ति तथा प्रमाणो के आधार पर बिहारी की श्रेष्ठता प्रमाणित की गई है।

द्विवेदी युग की सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'मिश्र-बन्धु-विनोद' है, जिसमें नागरी-प्रचारणी-सभा की खोज-रिपोर्टों की सामग्री को ऐतिहासिक रूप के साथ रखने के अतिरिक्त कवियों के विषय में छोटी सी परिचयात्मक समालोचनाएँ लिखने का प्रयत्न भी किया गया है। मिश्र-बधुओं के 'हिंदी-नवरत्न' ने भी इस दिशा मे उच्च श्रेणी की पाठ्य-सामग्री उपस्थित की। समालोचना के क्षेत्र मे इस पुस्तक के स्वागत और विरोध का एक अपना इतिहास है और हिंदी-समालोचना का कोई भी प्रेमी उससे अपरिचित नही रह सकता।

इस प्रकार हम देखते है कि द्विवेदी-काल में आधुनिक समालोचना के लिए एक नवीन मार्ग प्रशस्त हो गया था। आगे चलकर प० रामचंद्र शुक्ल तथा बा० श्यामसुन्दरदास ने आलोचना-साहित्य में महत्त्वपूर्ण अन्वेषण किये। इनका उल्लेख अगले उत्थान में किया जायगा।

खड़ी बोली-पद्य धारा

गद्य-साहित्य में खडी बोली का पर्याप्त विकास हो चुका था, किंतु

पद्य के लिए अभी व्रजभाषा का ही प्रयोग होता था भारतेन्दु-काल में यद्यपि खडी वोली में भी व्रजभाषा का पुट रहता था। इतना अवश्य कह सकते हैं कि भारतेन्दु-काल में ही पद्य के लिए खडी बोली की आवश्यकता का अनुभव लोग करने लगे थे। क्योकि गद्य खडी वोली मे और पद्य व्रज-भापा में लिखा जाना एक अखरने वाली वात थी। इसके लिए भारतेन्दु-काल के अन्त मे प्रयास भी आरम्भ हो चुका था। क्रमश. पद्य मे खडी वोली को स्थान दिया जाने लगा। इस प्रयास में लावनी और खयाल-वाजो ने वडी सहायता पहुँचाई। इनके खयाल-लावनी उर्दू-मिश्रित खडी बोली मे होते थे। इसी समय स० १९१३ के आस-पास लखनऊ के 'ललित किशोरी' ने खडी वोली मे झूलना आदि छद लिखे। जैसे

जगल में अव रमते हैं, दिल वस्ती से घबराता है।
मानुष गध न भाती है, सँग मरकट मोर सुहाता है॥
चाक गरेवाँ करके दम दम, आहें भरना आता है।
'ललित किशोरी' इश्क रात-दिन, ये सब खेल खिलाता है॥

इन खयालवाज तथा लावनी झूलना वालों ने जहाँ खडी वोली को प्रोत्साहन दिया वहाँ उर्दू के नये-नये छदो का भी प्रयोग किया।

इस प्रकार हम देखते है कि भारतेन्दु-काल के अतिम दिनो मे पद्य मे खडी वोली के दर्शन यदा-कदा होने लगे थे, किन्तु अभी उनमें सुन्दरता और सफाई न आई थी और न ही अधिक कवियो ने उसे अपनाया था। खडी वोली को पद्य में सर्वप्रथम स्थान देने का श्रेय भी प० महावीर-प्रसाद द्विवेदी को ही है। इन्होंने खड़ी वोली में पद्य-रचना की प्रणाली चलाई। साथ ही संस्कृत के वृत्तो के अनुरूप नये छंदो का प्रयोग किया। इस प्रकार पद्य में भी खडी वोली के जन्मदाता महावीरप्रसाद द्विवेदी माने जाते है। उन्हीं के साथ पं० श्रीधर पाठक ने भी खड़ी बोली में काव्य-रचना की। इसके पश्चात् गद्य की भाँति पद्य में भी उत्तरोत्तर खड़ी वोली का विकास होता गया। नीचे खड़ी वोली के प्रमुख कवियो का सक्षेप में उल्लेख करते है।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी—द्विवेदी जी ने खडी बोली के अनिश्चित रूप को निश्चित और परिमार्जित करके उसे कार्योपयुक्त बनाया और कविता में उसका प्रयोग किया। साथ ही नवीन शैली और वृत्तो का प्रयोग करके प्राचीन परिपाटी के मोह को दूर किया। द्विवेदी जी ने पद्य मे सदैव बोल-चाल की भाषा पर जोर दिया। इन्होने 'कुमार सभव' आदि ग्रंथो के अनुवाद भी किये, जो अपने ढग के अनुपम है। इनकी कविता का उदाहरण देखिए :

मूल्यवान मंजुल शैया पर पहले निशा बिताता था।
सुयश और मंगल-गीतों से प्रात जगाया जाता था॥
वही आज कुश, काशों से संयुक्त भूमि पर सोता है।
श्रुति-कर्कश शृगाल-शब्दों से हा-हा निद्रा खोता है॥

श्रीधर पाठक—पाठक जी भी द्विवेदी जी के साथ ही खडी बोली के प्रथम कवि माने जाते है। द्विवेदी जी की अपेक्षा इनकी कविताओ की भाषा अधिक परिमार्जित, सरल और प्रभावशाली है। इनकी रचनाओं मे कवित्व के दर्शन भी होते हैं। पाठक जी ने गोल्डस्मिथ की पुस्तकों का 'ऊजड ग्राम', 'एकातवासी योगी', और 'श्रात पथिक' नाम से अनुवाद किया और कतिपय मौलिक कविताएँ भी लिखी। मराठी साहित्य की प्रगति से प्रभावित होकर आपने 'सरस्वती' मे छोटी-छोटी खडी बोली की कविताएँ लिखी।

पाठक जी की रचनाओ पर राष्ट्रीयता की छाप रहती है। आप प्रकृति के भी परमोपासक थे। 'काश्मीर-सुषमा' में आपने काश्मीर के प्रकृति-सौन्दर्य का अनूठा वर्णन किया है। आपके राष्ट्रीय गीत 'भारत-गीत' मे सग्रहीत है। इनकी कविता का उदाहरण देखिए :

इस पर्वत की रम्य तटी में, मैं स्वच्छन्द विचरता हूँ।
परमेश्वर की दया देखकर, पशु-हिंसा से डरता हूँ॥
गिरिवर ऊपर की हरियाली झरना जल निर्दोष,
कन्द-मूल, फल-फूल, इन्हीं से करूँ क्षुधा-सन्तोष।

पं० नाथूराम शंकर—आप व्रजभाषा में बड़ी सुन्दर कविता करते थे। खड़ी बोली को अपनाने पर आपने उसमें भी अपना परम कौशल दिखाया। आप आर्यसमाजी थे, इस कारण आपके काव्य में उपदेशात्मकता की छाप अधिक आ गई। किन्तु अपनी भाषा की सरसता और काव्य के आधिपत्य से आपने उपदेशात्मकता को भी सरस बना दिया है। आपकी अतिशयोक्तियाँ और उपमाएँ भी अपने ढंग की निराली ही होती थीं। कविता का उदाहरण नीचे दिया जाता है :

आँख से न आँख लड़ जाय इसी कारण से,
भिन्नता की भीत करतार ने लगाई है।
नाक में निवास करने को कुठी शंकर की,
छवि ने छपाकर की छाती पै छवाई है॥
कौन मान लेगा कीर तुंड की कठोरता में,
कोमलता तिल के प्रसून की समाई है।
सैकड़ों नुकीले कवि खोज-खोज हारे पर,
ऐसी नासिका-सी और उपमा न पाई है॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—आप भी व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में ही कविता करते थे। आपकी व्रजभाषा की कविता अत्यन्त सुन्दर होती थी। आपका 'रस-कलस' रीति-ग्रन्थों के अनुरूप ही लिखा गया है। 'रस-कलस' में आपने प्राचीन नायिकाओं के साथ 'देश-प्रेमिका' 'धर्म-सेविका' आदि नायिकाओं का भी वर्णन किया है। खड़ी बोली में आपका प्रमुख ग्रंथ 'प्रिय प्रवास' है, जो संस्कृत छन्दों में लिखा गया है। 'प्रिय प्रवास' में श्रीकृष्ण की लीलाओं का अप्रत्यक्ष रूप से वर्णन किया गया है। इसकी घटनाओं का चित्रण विप्रलंभ शृङ्गार अथवा वात्सल्य का अंगभूत होकर हुआ है। 'प्रिय प्रवास' पर आपको मंगलाप्रसाद-पारितोषिक भी मिल चुका है। खड़ी बोली में आपने उर्दू-शैली के छन्दों की रचना भी की है। यथा

बात कैसे बता सकें तेरी,
हैं मुँह में लगे हुए ताले।
बावले बन गए न बोल सके,
बाल की खाल काढ़ने वाले॥

'प्रिय प्रवास' के छन्द का उदाहरण देखिए :

पाई जातीं विविध जितनी वस्तु हैं जो सबों में।
मैं प्यारे को अमित रंग औ' रूप में देखती हूँ॥
तो मैं कैसे न उन सबको प्यार जी से करूँगी।
यों है मेरे हृदय-तल में विश्व का प्रेम जागा॥

मैथिलीशरण गुप्त—गुप्तजी का जन्म सं० १९४३ में झाँसी जिले के अन्तर्गत चिरगाँव में हुआ था। गुप्तजी वर्तमान युग के प्रतिनिधि कवि हैं। प्रारम्भ में आपकी भक्ति-भाव से भरी हुई, ब्रजभाषा की कुछ कविताएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुईं। बाद मे खडी बोली में आपकी प्रतिभा उत्तरोत्तर विकसित होती गई। आप भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के अनन्य उपासक तथा धार्मिक प्रवृत्ति के वैष्णव कवि हैं। भारत की वर्तमान अवस्था को देखकर आपके कवि-हृदय को भारी ठेस लगी और आपके मानसिक हृदयोद्गार 'भारत भारती' के रूप में बह निकले। आपकी कीर्ति का स्तम्भ 'भारत भारती' ही है, जिसके कारण आपको 'राष्ट्र कवि' की उपाधि मिली। 'भारत भारती' में भारत के अतीत गौरव के साथ-साथ वर्तमानकालीन विपन्नावस्था का चित्रण भी किया गया है। इसमें काव्य की विशिष्ट पदावली, रसात्मक चित्रण, वाग्वैचित्र्य आदि का अधिक ध्यान नही रखा गया है, फिर भी बीच-बीच मे मार्मिक तथ्यों का समावेश होने से यह काव्य अति सुन्दर बन गया है और स्वदेश-प्रेमी युवको में बहुत लोकप्रिय हुआ है। वर्तमान वर्णों की दुरवस्था देखकर आप उन्हे ललकारते है

क्षत्रिय सुनो, अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो ।
निज देश को जीवन सहित, तन, मन तथा धन भेंट दो ।।
वैश्यो ! सुनो व्यापार सारा मिट चुका है देश का ।
सब धन विदेशी हर रहे हैं, पार क्या है क्लेश का ।।

इसके अतिरिक्त गुप्त जी कई प्रबन्ध काव्य तथा खण्ड काव्य लिख चुके है । जिनके नाम ये हैं—'रग में भग', 'जयद्रथ वध' 'विकट भट', "पलासी का युद्ध', 'गुरुकुल', 'किसान', 'सिद्धराज', 'पचवटी', 'यशोधरा', 'साकेत', 'दिवोदास' और 'जय भारत' ।

'साकेत' और 'यशोधरा' इनके दो बडे प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ हैं । इन दोनो ग्रन्थो में गुप्त जी के कवित्व का पूर्ण विकास हुआ है । 'यशोधरा' की रचना नाटकीय ढग पर हुई है, जिसमें भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले पात्रो के जीवन पर, और विशेषतः यशोधरा के जीवन पर, प्रकाश डाला गया है ।

'साकेत' के नायक और नायिका लक्ष्मण और उर्मिला है । इसमें उर्मिला के अपूर्व त्याग, तथा वियोग-वर्णन का प्रभावशाली चित्रण किया गया है । इसमे गुप्तजी ने उर्मिला की वियोगावस्था की नाना अन्तर्वृत्तियों का सजीव चित्रण करते हुए बीच-बीच में बड़े उच्च भावों की व्यजना की है :

प्रभु नहि फिरे, क्या तुम्हीं फिरे ?
हम गिरे, अहो ! तो गिरे-गिरे ।।

गुप्तजी ने छायावाद और रहस्यवाद की बहती हुई धारा में भी हाथ पसारने का प्रयास किया है, किन्तु इसमे उन्हें सफलता नही मिली । इनके ऐसे गीत 'झकार' में सगृहीत हैं ।

निकल रही है उर से आह ।
ताक रहे सब तेरी राह ।।
चातक खड़ा चोंच खोले है, सम्पुट खोले सीप खड़ी ।
मै अपना घट लिये खड़ी हूँ, अपनी-अपनी हमें पड़ी ।।

पं० रामचरित उपाध्याय—इनका जन्म सं० १९२९ मे गाजीपुर मे हुआ। ये संस्कृत के अच्छे पंडित थे। पहले 'सरस्वती' मे पुराने ढंग की कविता लिखा करते थे। फिर द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से खडी बोली मे लिखने लगे। 'राष्ट्र भारती', 'देवदूत', 'देव सभा', 'देवी द्रौपदी', 'भारत-भक्ति', 'विचित्र विवाह' आदि अनेक कविताएँ इन्होंने लिखी। 'रामचरित चिन्तामणि' इनका एक महाकाव्य भी है। 'रामचरित-चिन्तामणि' में कई स्थल बहुत सुन्दर बन पड़े है। इनकी कविता का उदाहरण नीचे दिया जाता है -

कुशल से रहना है यदि तुम्हें
दनुज तो फिर गर्व न कीजिए।
शरण मे गिरिए रघुनाथ की,
निर्बल के बल केवल राम है॥

पं० रूपनारायण पांडेय—यो तो पहले आपने ब्रजभाषा की कविता की, किन्तु खड़ी बोली के लिए अधिक प्रसिद्ध है। आप कविता के लिए बड़ा उपयुक्त विषय चुनकर उसमे पूरी रसात्मकता ला देते है। आपकी कविताओं का संग्रह 'पराग' नाम से प्रकाश मे आ चुका है। कविता का उदाहरण नीचे देखिए :-

अहह अधम आँधी आ गई तू कहाँ से ?
प्रलय घन-घटा-सी छा गई तू कहाँ से ?
पर दुःख-सुख तूने हाय देखा न भाला।
कुसुम अधखिला ही हाय क्यों तोड़ डाला॥

पं० लोचनप्रसाद पांडेय—ये बचपन मे ही कविता करने लगे थे। सं० १९३२ मे इनकी कविता 'सरस्वती' मे निकलने लगी। इनकी रचनाएँ कई प्रकार की हैं। इन्होंने कथा-प्रबन्ध के रूप मे भी लिखा है और फुटकर रचनाएँ भी की है। 'मृगी दुःख मोचन' मे इन्होंने खडी बोली के सवैयो में एक मृगी की करुणाजनक परिस्थिति का सुन्दर चित्रण किया है। इससे पशुओ के हृदय तक पहुँचने वाली इनकी

तीव्र अनुभूति तथा व्यापक काव्य दृष्टि का पता लगता है। इनकी रचनाएँ सरस और सुन्दर होती है। उदाहरण नीचे देखिए :

सुमन विटप कलियाँ काल की क्रूरता से।
झुलस जब रही थीं ग्रीष्म की उग्रता से॥
इस कुसमय में हा! भाग्य-आकाश तेरा।
अभिनव लतिके! या घोर आपत्ति घेरा॥

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'—आप हिन्दी के बड़े ही भावुक और सरस हृदय कवि है। पहले आप उर्दू मे 'त्रिशूल' के नाम से लिखते थे। आपकी सुन्दर और सरस कविताओ के तीन सग्रह 'प्रेम पच्चीसी', 'कुसुमाजलि' और 'कृषक-क्रदन' के नाम से प्रकाशित हो चुके है। कविता का उदाहरण देखिये :

तू है गगन विस्तीर्ण तो मै एक तारा क्षुद्र हूँ।
तू है महासागर महा, मै एक धारा क्षुद्र हूँ॥
तू है महानद तुल्य तो म एक बूँद समान हूँ।
तू है मनोहर गीत तो मै एक उसकी तान हूँ॥

लाला भगवानदीन—'लक्ष्मी' नामक पत्रिका के सम्पादक होने पर आपने खडी बोली की कविता करना प्रारम्भ किया। आपकी कविताएँ अधिकतर वीर-रस-पूर्ण होती हैं। इनकी भाषा मे उर्दू-फारसी के चलते-फिरते शब्द भी आ जाते थे। आपने तीन काव्य लिखे—'वीर पचरत्न' 'वीर बालक' और 'वीर क्षत्राणी'। आप पुराने हिंदी-साहित्य और काव्य के अच्छे मर्मज्ञ थे। आपने प्राचीन काव्यो की नवीन ढङ्ग से टीकाएँ भी की है। कविता का नमूना नीचे दिया है :

वीरों की सुमाताओं का यश जो नहीं गाता।
वह व्यर्थ सुकवि होने का अभिमान जनाता॥
जो वीर सुयश गाने में है ढील दिखाता।
वह देश के वीरत्व का है मान घटाता॥

लब वीर किया करते हैं सम्मान कलम का।
वीरों का सुयश-गान है अभिमान कलम का ।।

रामनरेश त्रिपाठी—आप मूलतः जिला जौनपुर के रहने वाले हैं। किन्तु बाद मे प्रयाग में जाकर पुस्तक-प्रकाशन करने लगे थे। वहाँ से आपने 'बानर' नामक एक 'बालोपयोगी' पत्र भी निकाला था। त्रिपाठी जी हिन्दी के अच्छे कवियो मे हैं। आपकी रचनाओ पर राष्ट्रीयता की छाप रहती है और वे देश-प्रेम मे डूबी हुई होती हैं। आपकी कविता प्रसाद-गुण लिये होती हैं, जिसकी सस्कृत पदावली का सौन्दर्य देखते ही बनता है। आपने 'पथिक', 'मिलन' और 'स्वप्न' तीन खण्ड-काव्य लिखे है। ये तीनो काव्य बड़े मर्म-भेदी और हृदय को स्पर्श करने वाले है। 'स्वप्न' मे देश-प्रेम और त्याग के उच्च आदर्श और आशावाद का एक अपूर्व सदेश है। देखिये :

विघ्न समस्त करें पद-पद पर
मेरे आत्म तेज को जागृत।
निष्फलता मुझको अधिकाधिक,
करे सचेष्ट सतर्क दृढ़व्रत ।।
पश्चात्ताप मार्ग दिख पावे,
भय लावे चौकसी निरन्तर।
करे निराशा इस जीवन को
शांत, स्वतंत्र, सरल, शुचि, सुन्दर ।।

अनूप शर्मा—आप खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि है। आपने खड़ी बोली की कविता मे कवित्त और सवैयों का प्रयोग किया है। आपका 'सिद्धार्थ' नाम का एक प्रबन्ध-काव्य भी निकला है। आपकी कविताओ का संग्रह 'शर्वाणी' नाम से प्रकाश में आया है। उदाहरण देखिए :

नील मणि-नूपुर-विमंडित विराजमान
हरते कलिन्द-कन्यका का अभिमान है।

अति अवदात नख-छवि प्रकटी हैं जहाँ
सुरसरि-सदृश धवल परिधान है ॥
ललित ललाम लसते है रंग यावक के
रचते सरस्वती-विलास का विधान है ।
तेरे युग चरण त्रिवेणी की तरंग सम,
साधु-सज्जनो के सिद्ध साधन समान हैं ॥

ठाकुर गोपालशरणसिंह—आपने खडी बोली की कविता को प्राचीन छदो में ढाला है । आपके कवित्त व सवैये बडे सुन्दर होते हैं । भाषा सरल और सरस है । सरस भाषा में आपने गम्भीर और ऊँचे भावो की बडी सुन्दर व्यजना की है, यही आपकी विशेषता है । आपकी कविताओ से प्रेम की साधना का प्रभाव झलकता है । 'माधवी' नाम से आपका कविता-सग्रह प्रकाश मे आ चुका है । 'कादम्बिनी' मे आपकी प्रतिभा और भी अधिक विकास को पहुँची है । आपकी 'कादम्बिनी' में प्रकृति के हँसते-बोलते सौंदर्य के दर्शन होते है । आपकी कविता का नमूना नीचे दिया जाता है .

शरद जुन्हाई-सी है गात की गोराई चारु,
आनन अनूप भासे स्वच्छ जल जात हैं ।
किस भाँति कोई कभी यह बतलावे भला,
कब दिन होता और होती कब रात है ॥
उसमें मिली है प्रभा शशि और सूर्य की भी
क्या नहीं स्वयं ही सिद्ध होती यह बात है ।
किसने न देखी वह रूप-राशि बार-बार,
तो भी अनदेखी वह होती सदा ज्ञात है ॥

ठाकुर साहब का 'सुमना' नामक काव्य-सग्रह भी सुन्दर है । उसमें आपने कष्ट-सहिष्णुता की महत्ता दिखाई है, जिसका रूप गाधीवाद के सदृश है । इसमें आपने फूलो और कलियो का आश्रय लेकर सुन्दर अन्योक्तियाँ दी है ।

सियारामशरण गुप्त - आप श्री मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई है। आपका रचना-काल १९७० से प्रारम्भ होता है। आपकी कविताओ मे एक जिज्ञासा की भावना मिलती है। आपकी रचनाएँ अंतर की सात्विक भावनाओ को ही लेकर चलती होती है। गुप्तजी की भाँति आप पर भी गाधीवाद का पूरा प्रभाव हैं। या यो कह सकते है कि आप एक सरल और सुन्दर भाषा मे गाधीवाद के गायक है। आपकी कविताओ के सग्रह 'आर्द्रा', 'विषाद', 'पाथेय', 'उन्मुक्त' तथा 'बापू' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। 'उन्मुक्त' और 'बापू' मे आपने गाधीवाद का बडा सुन्दर चित्रण किया है। देखिए :

> **इंधन रहित शुद्ध अग्नि ज्वाल,**
> **नित्य युवा तुमसे यशस्वि सुदीप्त भाल।**
> **एक मात्र आत्म वश,**
> **उज्वलिते सर्वथैव एक रस ॥**
> **श्रांति नहीं तुमको।**
> **काल की अशांति नहीं तुमको ॥**

पिछले दिनो आपकी 'नोआखाली' नामक छोटी सी पुस्तक निकली थी। जिसमे गाधीजी की नोआखाली-यात्रा का वर्णन करते हुए यह दिखाया गया है कि हम सभी मुसलमानो को बुरा समझकर उनसे घृणा न करे। नोआखाली के हत्याकाड से ध्वस्त ग्रामो का आपने बड़ा करुणाजनक चित्र उपस्थित किया है :

> **गाँव नहीं मरघट यह है**
> **जीवित दीख रहे जो उनको,**
> **मरण वेदना दुस्सह है।**

विविध साहित्य

जीवन-चरित्र—इस युग मे साहित्यिक कोटि के केवल चार जीवन-चरित्र लिखे गए। प० माधवप्रसाद मिश्र ने स्वामी विशुद्धानन्द

का जीवन चरित्र 'विशुद्ध चरितावली' नाम से लिखा। 'बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र' बाबू शिवनन्दन सहाय ने लिखा। इनके अतिरिक्त बाबू शिवनन्दन सहाय ने 'गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित्र' और 'चैतन्य महाप्रभु का जीवन-चरित्र' की रचना भी की।

अर्थशास्त्र—द्विवेदी-काल में अर्थशास्त्र पर भी कुछ पुस्तकें लिखी गई। जिनमें मिश्रबंधु का 'व्यय' और बृजनदनसहाय का 'अर्थशास्त्र' उल्लेखनीय है। भारतीय अर्थशास्त्र पर राधामोहन गोकुलजी की 'देश-धन' और देवनारायण द्विवेदी की 'देश-कला' अच्छी पुस्तकें हैं।

समाज-शास्त्र और दर्शन-शास्त्र—राजनैतिक विषय पर अम्बिका-प्रसाद वाजपेयी ने 'हिन्दुओं की राज्य-कल्पना' लिखी। दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक विषयो पर शिवचन्द्र 'भारतीय' का 'विचार-दर्शन', स्वामी सत्यदेव का 'मनुष्य के अधिकार' और महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'शिक्षा' उल्लेखनीय है।

व्याकरण—कामताप्रसाद गुरु, चन्द्रमौलि सुकुल तथा जगमोहन ने कुछ व्याकरण-सम्बन्धी पुस्तको की रचना भी की। कुछ कोष-ग्रथ भी लिखे गए।

विज्ञान—प्रो० महेशचन्द्र सिनहा ने 'रसायन-शास्त्र', 'वनस्पति-शास्त्र' और 'विद्युत्-शास्त्र' लिखे। प्रेमवल्लभ जोशी ने भौतिक-विज्ञान पर 'ताप' नामक पुस्तक लिखी।

पत्र-पत्रिकाएँ

सरस्वती—हिन्दी के विकास मे सर्वाधिक योग देने वाली पत्रिका 'सरस्वती' है। 'सरस्वती' का सम्पादन-भार महावीरप्रसाद द्विवेदी के हाथ मे आते ही उसने लेखक-निर्माण का कार्य किया। जो हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे सदैव स्वर्णाक्षरो में अंकित रहेगा।

कर्मयोगी साप्ताहिक—सन् १९०८ मे प० सुन्दरलाल ने प्रयाग से 'कर्मयोगी' नामक पत्र निकाला। यह एक उत्तम राजनैतिक पत्र था

और इसे लाला लाजपतराय, लोकमान्य तिलक और अरविन्द बाबू-जैसे राजनैतिक नेताओ का सहयोग प्राप्त था। पहले यह पत्र मासिक निकला, बाद मे साप्ताहिक हो गया। यह पत्र बहुत लोकप्रिय हो गया। किन्तु १९१० में इस पर सरकार की कोप-दृष्टि हो गई और जमानत देने से इन्कार करने के कारण बन्द हो गया।

अभ्युदय—सन् १९०७ में प० मदनमोहन मालवीय के सरक्षण मे काशी से 'अभ्युदय' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके सम्पादक प्रारम्भ मे श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन थे। बाद में श्री कृष्णकान्त मालवीय ने इसका सम्पादन किया।

हिन्द केसरी—सन् १९०८ में नागपुर से प० माधवराव सप्रे ने 'हिन्द केसरी' नामक पत्र निकाला। इसमे लोकमान्य तिलक के मराठी 'केसरी' के लेखो का अनुवाद छपता था। इस पत्र का भी बडा प्रचार हुआ। किन्तु कुछ दिन निकलकर ही यह बन्द हो गया।

प्रताप—सन् १९१२ मे श्री गणेशशकर विद्यार्थी ने कानपुर से साप्ताहिक 'प्रताप' निकाला, यह एक सच्चा राष्ट्रीय पत्र था। कुछ ही दिनो मे यह बहुत लोकप्रिय हो गया।

भारत मित्र दैनिक—सन् १९११ मे कलकत्ता से दैनिक 'भारत मित्र' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

कलकत्ता-समाचार—सन् १९१४ मे कुछ मारवाड़ी सज्जनो के उद्योग से कलकत्ता से 'कलकत्ता-समाचार' नामक दैनिक पत्र निकाला, किन्तु यह कुछ ही वर्ष चलकर बन्द हो गया।

'इन्दु' मासिक—'सरस्वती' के प्रकाशन के पश्चात् काशी से श्री अम्बिकाप्रसाद गुप्त के सम्पादकत्व में मासिक 'इन्दु' का प्रकाशन हुआ। इसी पत्रिका मे प्रसाद जी की प्रारम्भिक रचनाएँ प्रकाशित हुई थी। इसीलिए साहित्यिक दृष्टि से इसका महत्त्व बढ गया। १२-१४ वर्ष चलकर यह भी बन्द हो गया।

मर्यादा—श्री कृष्णकान्त मालवीय के सम्पादकत्व मे प्रयाग से

'मर्यादा' का प्रकाशन हुआ। बाद मे यह सम्पूर्णानन्द के सम्पादन में काशी से निकलने लगी।

इनके अतिरिक्त दक्षिणी अफ्रीका, फिजी तथा बरमा आदि से भी प्रवासी भारतीयो के उद्योग से कुछ हिन्दी के पत्र प्रकाशित हुए थें। इन पत्रो के प्रकाशन मे महात्मा गाधी तथा स्वामी भवानीदयाल सन्यासी का बड़ा हाथ था।

चतुर्थ उत्थान : प्रसाद-काल

वर्तमान गद्य का विकास—द्विवेदी-काल तक के गद्य-विकास का उल्लेख हमने पिछले पृष्ठो में किया है। द्विवेदी-काल में हिन्दी-गद्य का परिमार्जन करके उसे व्याकरण-सम्मत बनाया गया। उसका एक स्वरूप निश्चित हुआ। भाषा की शुद्धता के साथ-साथ नवीन विषय तथा नवीन शैलियो का प्रयोग हुआ। इस सब कार्य का श्रेय प० महावीर-प्रसाद द्विवेदी को ही हैं। उन्होने अपने प्रभाव और प्रोत्साहन से अनेक लेखक उत्पन्न किये। अग्रेजी पढे-लिखे युवको को हिंदी की ओर आकृष्ट किया। इन लेखको द्वारा साहित्य के गद्य और पद्य दोनो अगो का भण्डार भरा जाने लगा। गद्य के नाटक, उपन्यास, कहानी, निबध आदि सभी अगो का विकास हुआ। इनमें चाहे मौलिक कृतियाँ कम थी और अनु-वाद अधिक हुए, किन्तु फिर भी आधुनिक गद्य के लिए एक विस्तृत क्षेत्र प्रस्तुत हो गया। द्विवेदीकालीन लेखको पर द्विवेदीजी की छाप अधिक थी। उनमें वैयक्तिकता का अभाव था। अपने मस्तिष्क से मौलिक उद्भावना और नवीन प्रयोग करने की प्रवृत्ति उन लेखको में नही थी। इसलिए उस धूम-धाम में साहित्य का वास्तविक विकास नही हो पाया था, द्विवेदीजी के पश्चात् कुछ ऐसे लेखक साहित्य-क्षेत्र मे आये जिन्होने अपनी प्रतिभा द्वारा हिंदी-साहित्य में एक नवीनता लाकर खडी कर दी। वे थे बाबू जयशंकरप्रसाद और मुन्शी प्रेमचद। दोनो ने ही दो भिन्न-भिन्न चीजें साहित्य को दी। साहित्य को प्राचीनता के सकीर्ण

मार्ग से निकालकर विकास के राज-मार्ग पर अग्रसर किया। जयशंकर-प्रसाद के नाटको ने गद्य-क्षेत्र मे एक अपूर्व परिवर्तन किया। प्रसादजी ने ऐतिहासिक नाटक अधिक लिखे, किन्तु एक नवीन साहित्यिक छटा लिये हुए तथा देश-प्रेम की भावनाओ को लिये हुए प्रेमचन्दजी ने अपने उपन्यास और कहानियो द्वारा गद्य-क्षेत्र मे एक क्राति उत्पन्न कर दी। उनसे पहले साहित्य केवल एक बौद्धिक विलास की वस्तु ही समझा जाता था, किंतु वे साहित्य को मानव-जीवन और समाज के अधिक निकट ले आए। उन्होने किसान, मजदूरो और मध्य-वर्ग को अपने साहित्य मे स्थान देकर साहित्य को प्रगतिशील बनाया। द्विवेदीजी के बाद इस काल पर प्रसाद का ही अधिक प्रभाव पडा है। नीचे इस काल के विभिन्न गद्य-अगो के विकास का उल्लेख किया जाता है।

नाटक

हम ऊपर लिख चुके है कि द्विवेदी-काल मे मौलिक नाटक बहुत कम लिखे गए, अधिकांश तो अनुवाद ही हुए। नाटकीय कला की दृष्टि से १९०० से १९१९ तक का नाटक-साहित्य एक ही श्रेणी के अन्तर्गत आ जाता है। इस काल मे हिन्दी मे दो प्रकार के नाटक चलते रहे है। एक तो वे नाटक, जो पारसी-रंगमंच के लिए लिखे जाते थे। दूसरे प्रकार के नाटक भारतेन्दु-स्कूल के नाटककारों द्वारा प्रस्तुत किये जाते थे। इनका कोई रगमंच नही था। रगमच के आदर्शों के सम्बन्ध मे ये पारसी-रगमच को ही सामने रखकर चलते थे। पारसी-रंगमच के लिए लिखे जाने वाले नाटको मे कथा-विस्तार और चमत्कार की ओर अधिक ध्यान दिया जाता। साहित्यिक नाटकों में प्राचीन सस्कृत नाटको के प्रभाव से रस की ओर अधिक दृष्टि रहती थी, यद्यपि कथा-तत्त्व की एकदम उपेक्षा यहाँ भी नही होती थी। इन पिछले नाटको पर रीतिकालीन वातावरण का प्रभाव था।

पारसी-रगमंच के लिए लिखे जाने वाले नाटक साहित्यिक नाटक

तो नही थे, किन्तु उनसे हिन्दी-नाटको को रगमच पर स्थान अवश्य मिला। प० नारायणप्रसाद 'बेताब' ने पारसी-नाटको मे हिन्दी भजनो और गीतो को स्थान दिया। और पौराणिक विषयो को एक नये ढग से प्रस्तुत किया शीघ्र ही आगा हश्र, हरिकृष्ण जौहर, तुलसीदत्त शैदा तथा प० राधेश्याम कथावाचक आदि अनेको नाटककारो ने इन तत्त्वो को आगे बढाया। ये पौराणिक नाटक मध्यवर्ग की जनता मे इतने लोकप्रिय हुए कि इस प्रकार के नाटको की बाढ सी आ गई।

साहित्यिक नाटककार भारतेन्दु की शैली पर ही चल रहे थे। द्विवेदी-काल मे भी यही परम्परा प्रचलित रही। जैसा कि हम कह आए है द्विवेदी-काल मे मौलिक नाटको की रचना कम हुई। सारा हिन्दी-संसार द्विजेन्द्रलाल राय के ऐतिहासिक और गिरीशचन्द्र घोष के सामाजिक नाटको के अनुवादो से भरा था। उसके पश्चात् श्री जयशकरप्रसाद के साथ हिन्दी नाटको में नवीनता का सचार हुआ। प्रसाद की अपनी निजी शैली थी, जिसका अनुसरण करके नाटक-साहित्य मे कई नई ज्वलत शक्तियाँ हमारे सामने आईं, जिन्होने अपनी प्रतिभा और मौलिकता द्वारा प्रसाद की शैली मे भी परिवर्तन करके नाटक-साहित्य को अपने चरम विकास पर पहुँचाया। इनमें सर्वश्री चतुरसेन शास्त्री, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, बद्रीनाथ भट्ट, गोविन्दवल्लभ पन्त, जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, हरिकृष्ण 'प्रेमी' तथा उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के नाम उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त सर्वश्री सुदर्शन, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, रामकुमार वर्मा, तथा जी० पी० श्री वास्तव ने भी नाटक लिखे है।

श्री जयशकरप्रसाद के अधिकतर नाटक ऐतिहासिक है। उनकी ऐतिहासिक दृष्टि बौद्ध-काल की ओर रही है। उन्होने अपने नाटको मे पश्चिमी कला को भी स्थान दिया है, किन्तु भारतीयता की मर्यादा को ध्यान मे रखते हुए। अग्रेजी नाटककारो मे शेक्सपीयर का जो स्थान है,

हिन्दी-नाटककारो मे वही स्थान प्रसाद का है। उनके नाटको पर राष्ट्रीयता की छाप अंकित है। चरित्र-चित्रण, कथानक, कथोपकथन आदि की दृष्टि से उनके नाटक अद्वितीय स्थान रखते है।

प्रसाद जी के नाटको में – 'राज्यश्री', 'अजात शत्रु', 'कामना', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'एक घूंट', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' और 'ध्रुव-स्वामिनी' अधिक प्रसिद्ध है। इन नाटको मे उनकी गवेषणा-शक्ति और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय मिलता है। प्रसाद जी ने अपने ऐतिहासिक नाटको में बौद्धकालीन भारत का चित्र खीचा है, इस कारण वे भारतीय गौरव-गाथा के गान में विशेष सफल हुए हैं। प्रसाद जी के नाटको में मनोवैज्ञानिकता भी पर्याप्त मात्रा में है और कही-कही बडे सुन्दर अन्तर्द्वन्द्व दिखलाए गए है। साथ ही देश-प्रेम की कूंची से हल्का रग देकर उन्हे बडा सुन्दर बनो दिया है। उनके नाटको मे प्रसगवश आए हुए गीत भी साहित्य की निधि है। 'चन्द्रगुप्त' मे उनका यह राष्ट्रीय गीत कितना सुन्दर है :

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा॥

दूसरी क्रान्तिकारी वस्तु उनके नाटको में यह है कि उन्होने प्राचीन नाटकीय नियमो के बन्धनो को तोड डाला है। वे एक स्वतन्त्र शैली और नियमो को लेकर चले है। मगलाचरण, नान्दी, सूत्रधार आदि का बखेडा उनके नाटको मे नही है।

तीसरी विशेषता प्रसाद के नाटको की यह है कि उन्होने नाटक को दृश्य-काव्य की अपेक्षा श्रव्य अधिक कर डाला है। परन्तु वस्तु, पात्र और रस ये तीन चीज, जो नाटक की जान है, उनके नाटको मे पूर्ण रूप से विद्यमान है। कवि, गम्भीर, मननशील एव अन्वेषक होने के कारण इनके नाटको मे विचारो का गाम्भीर्य और दार्शनिकता भी रहती है। नारी को श्रद्धामयी और सहिष्णुता-सम्पन्न बनाना तो उन्ही का कार्य है। इनके नाटको के पात्र एक आदर्श पात्र होते है और सस्कृत-गर्भित

प्रौढ तथा मधुर भाषा बोलते है। इस प्रकार प्रसाद ने हिन्दी-नाटको में नवीन प्राण डाल दिए है।

चतुरसेन शास्त्री ने ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक लिखने में नवीन शैली और स्वतन्त्र विचारो को अपनाया है। ये नाटको मे गीत और कविता नही देते। आपने भास और भवभूति के नाटको के आधार पर 'श्रीराम' तथा 'सीताराम' आदि नाटक लिखे है। उनमें सस्कृत-नाटको के अनुवाद का एक नवीन मार्ग दिखाया है। बद्रीनाथ भट्ट के नाटको मे हास्य का पुट अधिक रहता है। माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध', जगन्नाथ-प्रसाद 'मिलिन्द' के 'प्रताप-प्रतिज्ञा' तथा 'समर्पण', गोविन्दवल्लभ पन्त के 'वरमाला' और 'अंगूर की बेटी', हरिकृष्ण 'प्रेमी' के 'रक्षा बन्धन' और 'स्वप्न भंग' नाटक साहित्यिक दृष्टि से अत्युत्तम होते हुए भी रगमच की पूर्ति करते है। हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अपने नाटको में राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर हिंदू-मुसलमानो मे पारस्परिक सहानुभूति उत्पन्न करने की चेष्टा की है। जी० पी० श्रीवास्तव के नाटको में हास्य की मात्रा अधिक रहती है।

सुमित्रानन्दन पन्त की 'ज्योत्स्ना' और रामनरेश त्रिपाठी का 'जयन्त' साहित्यिक दृष्टि से अच्छे नाटक है। पतजी की 'ज्योत्स्ना' में कल्पना का प्राधान्य है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'राजयोग', 'राक्षस का मंदिर', 'सन्यासी', 'सिन्दूर की होली' आदि समस्यामूलक नाटक है। 'वत्सराज' आदि सास्कृतिक नाटक भी आपने लिखे है। सेठ गोविंददास ने 'कर्तव्य', 'हर्ष', 'उषा', 'प्रकाश', 'कुलीनता', 'राम से गाधी', 'नवरस' आदि अच्छे नाटक लिखे है। हाल ही में सेठ जी का 'चतुष्पथ' नामक सवादात्मक नाटको का सग्रह निकला है। ऐसे नाटको में केवल एक ही पात्र रहता है। इन्हे 'मोनो ड्रामा' कहते है।

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क का 'जय-पराजय' नाटक राजपूत-काल के इतिहास की याद दिलाता है। इनका 'स्वर्ग की झलक' एक आधुनिक नाटक है। जिसमें स्त्री-शिक्षा और पारिवारिक जीवन की समस्या है। ध्यान

रहे कि समस्यामूलक नाटको पर विदेशी नाटककारो, विशेषत इब्सन और बर्नार्ड शा, का प्रभाव अधिक पडा है।

श्री उदयशकर भट्ट ने पौराणिक तथा ऐतिहासिक कई नाटक लिखे है। यह भी आधुनिक नाटककारो मे एक प्रमुख स्थान रखते है। इनके 'सगर-विजय', 'दाहर', 'अम्बा' और 'चन्द्रगुप्त' आदि ऐतिहासिक नाटक है। 'कमला' इनका आधुनिक काल से सम्बन्धित सामाजिक नाटक है। जिसमे राजनीति के साथ रोमास भी है। 'मत्स्यगधा' और 'विश्वमित्र' दोनो भाव-प्रधान गीति-नाट्य है। 'राधा' नाम का इन्होने एक भाव-नाट्य भी लिखा है। 'कुमार सम्भव' मे आचार और कला की समस्या है।

श्री सुदर्शन ने भी कई नाटक लिखे है, जिनमे 'अजना' अधिक ख्याति-प्राप्त है। 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' नामक एक प्रहसन भी इन्होने लिखा है। हाल ही मे आपका 'भाग्य-चक्र' नाटक निकला है, जिसमे प्रेम और वैराग्य का सघर्ष दिखाया गया है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी का 'छलना' एक मनोवैज्ञानिक नाटक है। इसमे थोड़ा रूपक का तत्त्व भी निहित है। प्रसादजी का 'कामना' भी बिलकुल इसी ढग का है। श्री सद्गुरुशरण अवस्थी का 'मुद्रिका' और पृथ्वीनाथ शर्मा के 'अपराधी' 'दुविधा' और 'उर्मिला' भी आधुनिक युग के नवीन नाटक है।

रामकुमार वर्मा के 'पृथ्वीराज की आँखे', 'रेशमी टाई', 'चारु मित्रा' एकाकी-नाटको के सग्रह है। इस समय एकाकी नाटको की ओर लेखको की रुचि अधिक हो रही है और पत्र-पत्रिकाओ मे प्राय. एकाकी निकलते रहते है। एकाकी नाटक लिखने वालो मे सर्वश्री उदयशकर भट्ट, सेठ गोविंददास, रामकुमार वर्मा, गणेशप्रसाद द्विवेदी, जगदीशचन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर तथा भुवनेश्वरप्रसाद आदि का नाम प्रमुख है।

आधुनिक नाटको के बारे मे हम कह सकते है—(१) उन पर पश्चिमी प्रभाव—विशेषकर इब्सन और बर्नाड शा का प्रभाव अधिक पडा है। (२) वे वर्तमान युग की जीवन्त समस्याओ को लेकर चलते

है। विशेषत उनमे वस्तुवाद का प्राधान्य रहता है। (३) वर्तमान नाटक अधिकतर मनोविज्ञान की ओर झुकता रहा है। (४) उनकी प्रवृत्ति सकलनत्रय के सिद्धात को निभाने की होती जा रही है। (५) वे आकार मे वहुत छोटे हो गए है। प्राय नाटको मे दो या तीन अङ्क से ज्यादा नही होते (६) उनमें रगमच के सकेतो का वाहुल्य रहता है। (९) भारतीय नाटच-परम्परा के सिद्धातो को प्राय इनमे छोड दिया गया है।

उपन्यास

द्विवेदी-काल में रचनात्मक साहित्य के क्षेत्र मे उपन्यास का काफी विकास हुआ, किन्तु मौलिक उपन्यास वहुत कम लिखे गए। अनुवादो का ही वोल-वाला रहा। उस युग मे कोई नवीन उपन्यासकार नही हुआ। वा० गोपालराम गहमरी, प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, और प० रूपनारायण पाण्डेय ने वगला-उपन्यासो का अनुवाद किया। रूपनारायण पाण्डेय और रामचन्द्र वर्मा ने मराठी और उर्दू-उपन्यासो के अनुवाद भी प्रस्तुत किये। इसके अतिरिक्त वावू देवकीनन्दन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासो की चर्चा अवश्य रही। गोस्वामी जी नेछोटे-वडे अनेक उपन्यासो की रचना की।

हिन्दी-साहित्य के उपन्यास-क्षेत्र में श्री प्रेमचन्द एक क्रातिकारी दृष्टिकोण लेकर आए। आरम्भ में इन्होने छोटी-छोटी कहानियाँ लिखी, और फिर उपन्यासो का भण्डार भरा। प्रेमचन्द जी के उपन्यासो पर तत्कालीन परिस्थितियो का पूरा प्रभाव पडा। प्रथम तो उस समय गाधी जी का असहयोग-आन्दोलन प्रारम्भ हो रहा था। उससे प्रभावित होकर ही वे नौकरी छोडकर पूर्णतया साहित्य-निर्माण में तल्लीन हुए। दूसरे सरकार की आर्थिक शोषण की नीति ने मजदूरो और किसानो का गला घोट रखा था। जमीदारो और भूमिपतियो के अत्याचारो से वेचारे किसान दुखी हो उठे थे। प्रेमचन्द जी का हृदय इस शोषित और दलित वर्ग की ओर सहज ही आकर्षित हो गया। उन्होने अपनी रचनाओ मे इन्ही

लोगों को मुख्य स्थान दिया। उन्होने अपने उपन्यासों मे गाँवों की दुरवस्था और किसानो की दुर्दशा तथा बेबसी का जो वास्तविक चित्र खीचा है वह मर्मभेदी और हृदयग्राही है। प्रेमचन्द का साहित्य जनता का साहित्य था, वह मन-बहलाव या बौद्धिक विलास की काल्पनिक सामग्री न थी। उन्होने 'कर्मभूमि', 'गबन', 'सेवा सदन', 'प्रेमाश्रम', 'कायाकल्प', 'प्रतिज्ञा', 'निर्मला', 'गोदान' और 'मगल सूत्र' आदि उपन्यास लिखे। प्रेमचन्द के साहित्य में आशा और उत्साह दोनो का सुन्दर सम्मिश्रण है और इसी सम्मिश्रण मे चेतना प्रदीप्त हुई। उनके उपन्यास हमे प्रगति के मार्ग की ओर ले जाते है। इसी कारण उनका साहित्य बहुत जल्दी ही लोकप्रिय बन गया। उन्होने भावी कलाकारो के लिए राष्ट्र-वाद का अनुपम मार्ग प्रशस्त किया।

प्रेमचन्द की उपन्यास परम्परा को प्रचलित रखने में श्री विश्वम्भर-नाथ शर्मा कौशिक ने योग-दान दिया। उनकी 'माँ,' 'भिखारिणी' और 'संघर्ष' तीनों उपन्यास इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है।

श्री जयशकर 'प्रसाद' ने भी 'ककाल', 'तितली' और 'इरावती' नामक उपन्यासो की रचना करके सामाजिक विश्रृखलता को तोडने का साहस किया। आपने अपने तीनो उपन्यासो मे नारी और पुरुष को समता और सहकारिता के सूत्र मे बाँधकर रूढिगत जीवन की विषमता को चुनौती दी है।

श्री चतुरसेन शास्त्री के 'अमर अभिलाषा', 'हृदय की प्यास' और 'वैशाली की नगर वधू' आदि प्रसिद्ध उपन्यास है। आपके उपन्यासों मे जहाँ ऐतिहासिक जागरण की प्रेरणा होती है, वहाँ कही-कही भयकर काम-वासना की वृत्ति भी मिलती है। फिर भी वस्तु-वर्णन की दृष्टि से आपके उपन्यास अच्छे है।

श्री बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'चन्द हसीनो के खतूत,' 'बधुआ की बेटी', 'घंटा', 'दिल्ली का दलाल' आदि उपन्यास लिखकर समाज मे फैली हुई कुरीतियो और कुवासनाओ का नग्न चित्र खीचा है। आपकी भाषा में

ओज, भावना में तरल प्रभाव और विचारो मे अद्भुत उग्रता है। वर्णन में प्राकृतिवादी दृष्टिकोण होने से इन्हे उस समय घासलेटी साहित्य की सज्ञा प्राप्त हुई।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा के 'विराटा की पद्मिनी', 'गढ-कुडार', 'मृगनयनी', 'कुडली-चक्र', 'कोतवाल की करामात', 'अचल मेरा कोई', 'झाँसी की रानी', 'लगन' 'कभी-न-कभी' और 'सोना' प्रसिद्ध उपन्यास है। इनके उपन्यास ऐतिहासिक सस्कृति के सदेशवाहक हैं। 'झाँसी की रानी' में राष्ट्रीयता सजीव हो उठी है। 'मृगनयनी' मे ऐतिहासिक पुट के साथ चित्रण की यथार्थता दृष्टिगत होती है।

श्री जैनेन्द्रकुमार आज भी भारतीय नारी के नाना रूपो का चित्र खीचने मे लगे हैं। इनके उपन्यासो मे नारी के प्रति एक विचित्र कामुकता की भावना देखने को मिलती है। उनके 'कल्याणी', 'त्याग-पत्र' और 'सुनीता' नामक उपन्यास ऐसे ही हैं। हाल में ही उनका 'सुखदा' उपन्यास भी प्रकाशित हुआ है।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने कवि होते हुए भी कई श्रेष्ठ उपन्यास 'निरुपमा', 'अप्सरा', 'अलका' तथा 'प्रभावती' हिन्दी-जगत् को भेंट किये है। आपने अपने उपन्यासो मे नारी-जीवन के विज्ञान-मूलक मनोरम अशो का चित्र खीचा है।

दूसरे कवि उपन्यासकार हैं सियारासशरण गुप्त । इन्होने तीन उपन्यास 'गोद', 'नारी' और 'अन्तिम आकाक्षा' नामक लिखे हैं। इन्होंने नारी-जीवन की सूक्ष्म और तरल अनुभूतियो को अपनी शैली से चित्रित किया है। यह आश्चर्य की वात है कि जैनेन्द्र और सियारामशरण गुप्त दोनो ही गाधीवादी और गाधी जी के चरण-चिह्नो पर चलने वाले है, किन्तु इनके उपन्यासो में गाधी जी की अध्यात्मवादी भावना के दर्शन तक नही होते।

श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'विदा', 'विकास', 'बयालीस' और 'विसर्जन' चारो उपन्यास अच्छे हैं।

श्री मोहनलाल महतो ने 'एकाकी', 'विसर्जन', 'शेष दान' और 'फरार' नामक चार उपन्यासो की रचना की है। उनके उपन्यासो पर बगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार शरत् की छाप दिखाई देती है।

श्री गुरुदत्तजी एक नवीन किन्तु सबल प्रेरणा लेकर उपन्यास-क्षेत्र मे आए है। इनके 'स्वाधीनता के पथ पर', 'पथिक', उन्मुक्त प्रेम', 'विकृत छाया' 'स्वराज्य-दान', 'विश्वास-घात', 'बहती रेता', 'विडम्बना' तथा 'प्रवञ्चना' आदि उपन्यास प्रकाश मे आये है। इन्होने प्रेमचन्द के राष्ट्रवाद को अपनाया है। 'विकृत छाया' मे आधुनिक सामाजिक कुरीतियो का उद्घाटन किया गया है।

इनके अतिरिक्त तरुण पीढी के प्रगतिशील उपन्यासकार श्री भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अश्क, श्री अज्ञेय, पहाडी, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, श्रीकृष्णदास और अचल का उल्लेख प्रेमचन्द-काल मे किया जायगा। श्री भगवतीचरण वर्मा इस खेवे के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार है और उनका 'चित्रलेखा' सुन्दरतम उपन्यास है।

इधर हमारी महिला-लेखिकाओ ने भी कुछ उपन्यास लिखे है। इनमे श्रीमती उषादेवी मित्रा ने 'वचन का मोल', 'पिया', 'मुस्कान' तथा 'आवाज़' नामक उपन्यासो की रचना की है। इनके उपन्यासो मे आधुनिक नारी का पक्ष बडी सबलता के साथ समाज के सामने रखा गया है। कुमारी कचनलता सब्बरवाल के 'मूक प्रश्न', 'भोली भूल', 'सकल्प' और 'भटकती आत्मा' आदि उपन्यास अभी प्रकाश मे आये है। इन्होने अपने उपन्यासो मे भारतीय नारी के आदर्श स्वरूप का चित्रण किया है।

कहानी

द्विवेदी-काल मे कहानी-साहित्य का जो विकास हुआ उसका उल्लेख हम पीछे कर चुके है। वर्तमान काल की मौलिक कहानियों का प्रारम्भ श्री प्रेमचन्दजी से ही होता है। सन् १९१६ मे उनके पदार्पण के साथ ही हिन्दी-कहानी-साहित्य मे एक अपूर्व परिवर्तन हो गया और १९३६

के अन्त मे उनकी मृत्यु कहानी-साहित्य के इतिहास मे एक प्रमुख घटना रहेगी। प्रेमचन्दजी हिन्दी मे आने से पूर्व उर्दू मे पर्याप्त लिख चुके थे और उर्दू-साहित्य मे भी उनका प्रमुख स्थान था। अपनी प्रतिभा और मौलिकता के कारण हिंदी मे आते ही उन्होने चोटी का स्थान प्राप्त कर लिया।

प्रेमचन्द की भाषा उर्दू-मिश्रित हिंदी है। उर्दू के कारण उसमें एक चुलबुलाहट और चलतापन आ गया है। बीच मे मुहावरो और लोकोक्तियो के प्रयोग ने उसे और भी सुन्दर बना दिया है। इसी कारण आपकी कहानियाँ एकदम ही लोकप्रिय बन गईं। प्रेमचन्दजी की कहानियाँ भारतीय सामाजिक जीवन का चित्रण है। समाज के प्रत्येक अग ने उनसे आवश्यक सहानुभूति पाई है और इसी विशाल सहानुभूति के कारण वे अग्रेज, हिंदू, मुसलमान तथा अन्य जातियो के घरो में प्रवेश पाने मे सफल हुए है। गाँव के चित्र और कवित्वमयता यही दो उनकी कहानियो की अपनी विशेषता है। वे जनता के कलाकार है। उन्होने उस पीडित और शोषित वर्ग को साहित्य मे अपनी छाती से लगाया, जिसे अब तक किसी ने साहित्य मे स्थान नही दिया था। यही आपकी नवीनता, मौलिकता और राष्ट्रीयता थी। प्रेमचन्दजी की कहानियो के सग्रह 'प्रेम पच्चीसी','प्रेम द्वादशी','मानसरोवर', तथा 'नवनिधि' आदि है।

प्रेमचन्दजी के पश्चात् श्री प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, रायकृष्णदास, जैनेन्द्रकुमार, उग्र तथा सुदर्शन आदि लेखको ने अपनी सुन्दर कृतियो से कहानी-साहित्य के भण्डार को भरपूर किया। प्रसादजी की सुन्दर कहानियाँ 'इन्दु' में प्रकाशित होती थी जिनका उल्लेख पीछे कर आए है। चतुरसेन शास्त्री ने अपनी कहानियो मे वैभव-विलास और यौवन-मद के चित्र ही खीचे है। इन्होने भारत के अतीत गौरवमय इतिहास के आधार पर भी कहानियाँ लिखी है।

श्री विश्वम्भरनाथ कौशिक की कहानियो मे परिवारिक एव कौटुम्बिक चित्र मिलते है। इनकी पहली कहानी रक्षा-बधन है जो बड़ी

महत्त्वपूर्ण है। भाषा की सरलता और स्वाभाविकता ने इनकी कहानियो को और भी लोकप्रिय बना दिया है। 'मणिमाला' और 'चित्रशाला' इनकी कहानियो के सग्रह है।

रायकृष्णदास की कहानियो में काव्य-कला और चित्र-कला दोनो के ही दर्शन होते है। आपकी कहानियो की सामग्री इतिहास, समाज, शिक्षा, मनोविज्ञान आदि विविध क्षेत्रो से ली गई है। 'भय का भूत' और 'नर-राक्षस' आदि आपकी सुन्दर कहानियाँ है। ये कहानियाँ प्रसाद की भावात्मक कहानियो से प्रभावित है। 'अक्षत' और 'रजत-कण' आपकी कहानियो के संग्रह है।

सुदर्शनजी की कहानियो में भारतीय सस्कृति के गौरव की झाँकी मिलती है। उर्दू-लेखक होने के कारण आपकी भाषा मे चलतापन है। 'सुदर्शन-सुधा' और 'सुप्रभात' आदि आपके कहानी-संग्रह है।

चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' ने भी अच्छी कहानियाँ लिखी है जो 'वन-माला' और 'नन्दन-निकुज मे सगृहीत है। आपकी काहनियो मे अनुप्रास-मयी सस्कृतनिष्ठ भाषा की छटा दृष्टिगत होती है।

श्री उग्रजी की कहानियाँ एक उग्रता लिये होती है। आपकी भाषा और शैली अपनी निराली है। 'दोजख की आग' और 'इन्द्र-धनुष' आपके कहानी-सग्रह है। भाषा को अभिव्यजना की पूर्ण क्षमता प्रदान करने मे तथा शैली भी अपना निजी व्यक्तित्व सन्निविष्ट करने मे उग्रजी का नाम हिदी-कथा-साहित्य मे अमर है।

श्री जैनेन्द्रकुमार की कहानियाँ भी अनोखी है। आपकी रचनाओ में मौलिकता, प्रगल्भता और कला का उज्ज्वल रूप दीख पड़ता है। आपकी कहानियो के पात्रो में वैज्ञानिक विश्लेषण की प्रचुरता मिलती है। 'निर्मम' और 'अपना-अपना भाग्य' इनकी अत्युत्तम कहानियाँ है। 'वातायन' नाम से इनकी कहानियो का सग्रह निकल चुका है। कहानियो के अन्तराल मे दार्शनिकता का जैसा पुट जैनेन्द्रजी दे सके वैसा और कोई कहानी-लेखक नही दे पाया।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने अनेक कहानियाँ लिखी है। आपकी रचनाओ मे यथार्थवाद और आदर्शवाद का सामजस्य रहता है। भगवती-चरण वर्मा की कहानियो मे समाज के प्रति विद्रोह पाया जाता है। मोहनलाल महतो की कहानियो मे इसी विद्रोह की भावना रहती है।

इनके अतिरिक्त श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानदन पन्त विनोदशकर व्यास तथा सियारामशरण गुप्त आदि ने भी अच्छी कहानियाँ लिखी है। हास्य-रस के कहानी-लेखको में श्री अन्नपूर्णानन्द कृष्णदेवप्रसाद गौड, राधाकृष्ण, हरिशकर शर्मा के नाम उल्लेखनीय है। इनका हास्य एक शिष्टता और भद्रता लिये होता है।

इधर महिला-लेखिकाओ ने भी कहानी-साहित्य मे विशेष योगदान दिया है। इनमे सर्वश्री स्व० सुभद्राकुमारी चौहान, उषादेवी मित्रा, श्रीमती शिवरानी प्रेमचद, सत्यवती मल्लिक, तेजरानी दीक्षित, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, होमवती देवी, कमला चौधरी, सुमित्राकुमारी सिनहा तथा सुशीला आगा की सेवाएँ नही भुलाई जा सकती। सामयिक पत्र-पत्रिकाओ में आए दिन इनकी सुन्दर कहानियाँ निकलती रहती हैं। केवल कहानियो का प्रचार करने वाली जो अनेक पत्रिकाएँ सम्प्रति हिन्दी में निकलती है उनमें 'माया', मनोहर कहानियाँ, सरिता आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आज कहानी मनोरजन का ही साधन न रहकर जीवन के सघर्ष और द्वन्द्वो के उद्घाटन का भी साधन बनी हुई है, अतः उसका प्रचार भी साहित्य के अन्य अगो की अपेक्षा कही अधिक है।

निबन्ध

द्विवेदी-कालीन निबध-रचना का उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। द्विवेदी-काल के अन्त में प० रामचन्द्र शुक्ल ने निबध-रचना को जो नवीन रूप दिया उसने वर्तमान युग में आकर पूर्ण विकास प्राप्त किया हमारा आधुनिक साहित्य निबन्धो के धरातल पर ही खडा है। आज का कला-

कार अपनी अनुभूति और विचारो को निबध के ही रूप मे सुगमता से प्रकट कर सकता है। जीवन-चरित्र, इतिहास, देश-दर्शन, ललित-कला, और उपयोगी कला, समाज-शास्त्र, शरीर-रक्षा, विज्ञान, शिक्षा और साहित्य के इतिहास को लेकर भिन्न-भिन्न लेखको ने नव चेतना युग मे जितने निबध लिखे है इतने कभी नही लिखे गए। आज का हिन्दी का लेखक ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओ मे योग देना चाहता है और छोटे निबध या विवेचनात्मक लेख ही उसका माध्यम बनते है। सक्षेप मे हम प्रसाद-काल के कुछ निबधकारो का उल्लेख करेंगे।

प० रामचन्द्र शुक्ल तथा पद्मसिंह शर्मा का उल्लेख द्विवेदी-काल मे हो चुका है। उनके पश्चात् श्री जयशकरप्रसाद ने भी कुछ निबध लिखे। प्रसाद जी प्रमुख रूप से कवि तथा नाटककार ही थे, किन्तु मननशील प्रवृत्ति होने के कारण उन्होने कुछ स्फुट ग्रथ भी लिखे। उनके निबधो का सग्रह 'काव्य और कला तथा अन्य निबध' नाम से प्रकाशित हो चुका है। उनके अधिकाश लेख साहित्य-सबधी ही है।

प्रसाद जी के समकालीन श्री प्रेमचद ने प्रसाद जी की भाँति कुछ निबंध लिखे। उनके निबध बहुत कम है, फिर भी जितने है वे एक सुलझे हुए मस्तिष्क और मँजी हुई लेखनी से लिखे जाने के कारण अच्छे है। 'हस' मे बराबर उनके लेख प्रकाशित होते रहते थे। उनके निबधो का सग्रह 'कुछ विचार' नाम से प्रकाश मे आया है।

श्री रायकृष्णदास और वियोगी हरि को भी निबन्धकारो की कोटि मे ले सकते है, किन्तु इनके निबन्ध कोई अधिक महत्त्व नही रखते। वे एक भावुकतापूर्ण अभिव्यक्ति के लेख-मात्र है। रायकृष्णदास के गद्य-गीत 'साधना', 'सलाप', 'छाया पथ', और 'प्रवाल' नाम के चार सग्रहो मे प्रकाशित हो चुके है। वियोगी हरि जी के लेखो के तीन सग्रह—'पगला', 'अन्तर्नाद' और 'ठडे छीटे' नाम से प्रकाशित हो चुके है।

श्री गुलाबराय जी एक श्रेष्ठ निबन्धकार और समालोचक हैं। इनके निबन्ध साहित्यिक एव दार्शनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनके

निवन्धो पर इनके गम्भीर अध्ययन की छाप स्पष्ट झलकती है। इनके निवन्धो का सग्रह 'प्रवन्ध प्रभाकर' है।

श्री पदुमलाल पुन्नालाल वख्शी के निवन्ध भी उच्च कोटि के होते है। जहाँ ये हिन्दी-साहित्य के उत्कट विद्वान् है वहाँ पाश्चात्य भाषाओ और उसके साहित्य के भी पूरे ज्ञाता हैं। इसी कारण आपके निवन्धो में पाश्चात्य ढग की समीक्षा मिलती है। आपके गम्भीर एव विवेचनात्मक निवन्धो का सग्रह 'विश्व-साहित्य' नाम से प्रकाशित हुआ है। उसमें पाश्चात्य देशो के साहित्य के प्रमुख तत्त्वो पर भारतीय दृष्टिकोण से विवेचना की गई है। इसके अतिरिक्त आपके दो निवन्ध-सग्रह 'प्रवन्ध पारिजात' और 'कुछ' नाम से प्रकाशित हुए हैं।

श्री नन्दुलारे वाजपेयी और हजारीप्रसाद द्विवेदी की गणना वर्तमान काल के निवन्ध लेखको में की जाती है। दोनो समालोचक भी हैं। श्री नददुलारे वाजपेयी की विवेचनात्मक कृतियाँ 'जयशकर प्रसाद', 'हिंदी-साहित्य वीसवी शताब्दी, और 'आधुनिक-साहित्य' है। हजारीप्रसाद द्विवेदी की कुछ मूल्यवान कृतियाँ साहित्य मे अपना विशेष स्थान रखती है। जिनमे 'सूर-साहित्य' 'कवीर' और 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' उल्लेखनीय हैं। आपके निवन्धो के सग्रह 'अशोक के फूल', 'विचार और वितर्क' तथा 'कल्पलता' नाम से प्रकाश मे आ चुके है।

श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' तथा शान्तिप्रिय द्विवेदी ने आलोनात्मक निवन्ध लिखे है। शुक्ल जी के इस प्रकार के निवन्धो के सग्रह 'कला और सौन्दर्य' तथा 'भाषा और सस्कृति' है। साहित्यिक विषयो पर विवेचनात्मक निवन्ध लिखने वालो मे द्विवेदी जी का प्रमुख स्थान है। इनके निवन्धो के छ. सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—'हमारे साहित्य-निर्माता', 'कवि और काव्य', 'साहित्यिकी',' जीवन यात्रा', 'सचारिणी', 'सामयिकी' 'पथ चिह्न' और 'धरातल'।

आधुनिक निवन्धकारो मे डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। आप साहित्य के गम्भीर मर्मज्ञ और भाषा-शास्त्र के पण्डित

है। आपने विभिन्न विषयो पर स्फुट निबन्ध लिखे है। आपके निबन्धो का सग्रह 'विचार-धारा' नाम से अभी प्रकाश मे आया है।

मौलिक निबन्ध-लेखको मे डॉ० नगेन्द्र का अपना विशिष्ट स्थान है। स्वच्छता, भावो तथा विषय की स्पष्टता और अभिव्यक्ति की प्राजलता की दृष्टि से हम इन निबन्धो को श्रेष्ठतम कोटि मे रख सकते है। 'विचार और अनुभूति' तथा 'विचार विवेचन' नामक आपके निबन्ध-सग्रह है।

डा० रामकुमार वर्मा के साहित्यिक निबन्ध भी सुन्दर और गठे हुए होते है। आपकी 'साहित्य-समालोचना' और 'विचार दर्शन' कृतियाँ निबन्ध-साहित्य की अमूल्य निधि है।

श्री जैनेन्द्रकुमार ने भी कहानी और उपन्यास से फुरसत मिलने पर कुछ निबन्धो की रचना की है । भाषा और साहित्यिक दृष्टि से आपके निबन्ध महत्त्वपूर्ण नही है। हॉ विचारो की दृष्टि से अच्छे है। आपके लेखो के दो सग्रह 'जैनेन्द्र के विचार', 'जड़ की बात' और 'पूर्वोदय' नाम से प्रकाशित हो चुके है।

महाराजकुमार डॉ० रघुबीरसिंह भी श्रेष्ठ निबन्धकार है। आप हिन्दी-साहित्य के मर्मज्ञ और उत्कृष्ट विद्वान् है। इनके निबन्ध 'सप्त-दीप', 'शेष स्मृतियाँ' और 'जीवन-कण' नाम से संगृहीत है।

कविवर सियारामशरण गुप्त ने भी परिपाटी के अनुसार कुछ निबन्ध लिखे है। शुद्ध निबन्ध-रचना की दृष्टि से आपके निबन्ध बहुत सुन्दर है। आपके २२ सुन्दर निबंन्धो का सग्रह 'झूठ-सच' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

हमारी महिला-लेखिकाएँ भी इस क्षेत्र में किसी से पीछे नही रही है। श्रीमती महादेवी वर्मा ने कुछ संस्मरणात्मक मर्मक निबन्ध लिखे है, जो 'अतीत के चल चित्र', 'स्मृति रेखाएँ' और 'शृङ्खला की घडियाँ' नाम से प्रकाशित हुए है।

उपर्युक्त निबन्धकारो के अतिरिक्त श्री दयाशकर दुबे, भगवानदास केला, शकरसहाय सक्सेना तथा प्राणनाथ विद्यालंकार ने अर्थशास्त्र-

सम्बन्धी विषयों पर बड़े उपयोगी निबन्ध लिखे है। डॉ० गोरखप्रसाद तथा सत्यप्रकाश आदि ने वैज्ञानिक विषयो पर गम्भीर लेख लिखे है।

समालोचना

हम पीछे बता आए है कि समालोचना का सूत्रपात भारतेन्दु-काल में ही हो चुका था। किन्तु उस समय की समालोचना केवल लेखक की कृति में दोष निकालने तक ही सीमित थी। द्विवेदी-काल मे समालोचना की इस पद्धति मे कुछ सुधार हुआ, द्विवेदीजी ने हिन्दी-आलोचना को एक नवीन प्रेरणा दी। यद्यपि उनकी आलोचनाएँ मण्डनात्मक न होकर अधिकांश खण्डनात्मक ही होती थी, फिर भी उनकी आलोचना-प्रणाली ने भाषा-क्षेत्र की अरुचिता दूर करने में विशेष सहायता की। द्विवेदीजी की आलोचना का लक्ष्य साहित्य न होकर मुख्यत भाषा ही होता था। फिर भी उन्होंने समालोचना की सुन्दर रूपरेखा प्रस्तुत कर दी। द्विवेदी-काल मे बिहारी और देव को लेकर तुलनात्मक समालोचना की परिपाटी भी चली थी। इसके प्रचालन का एक-मात्र श्रेय पं० पद्मसिंह शर्मा को ही दिया जा सकता है। हिन्दी में वस्तुत यह एक नवीन चीज थी।

आधुनिक युग की समालोचना को प० रामचन्द्र शुक्ल ने एक नवीन रूप दिया। उन्होने इस क्षेत्र मे आलोचक के उत्तरदायित्व का अनुभव करते हुए गंभीरतायुक्त और गवेषणापूर्ण कार्य किया। शुक्ल जी ने अपनी आलोचना मे केवल गुण-दोष ही नही निकाले, प्रत्युत उन्होंने पूर्वीय और पश्चिमीय समालोचना-सिद्धान्तो का अच्छा समन्वय किया। उन्होने काव्य की गहराई में पैठकर कवि की अन्तर्दृष्टि की प्रवृत्ति और प्रेरणा का सहानुभूति से अनुशीलन किया। समालोचक को कार्य बडा महत्त्व और उत्तरदायित्वपूर्ण है। उसे परस्पर के राग-द्वेष को दूर करके वस्तु-स्थिति पर न्यायपूर्वक शास्त्रानुमोदित स्वतन्त्र सम्मति देनी चाहिए। आचार्य शुक्ल ने 'जायसी' और 'तुलसी' की समालोचना इसी दृष्टिकोण से की है। इस प्रकार उन्होंने आलोचको के लिए एक आदर्श मार्ग उपस्थित कर दिया।

शुक्ल जी के पश्चात् पाश्चात्य ढग की आलोचना करने वालो मे बाबू श्यामसुन्दरदास का नाम आता है। इन्होने 'साहित्यालोचन' लिखकर आलोचना-विषयक सिद्धातो का एक अच्छा समन्वय किया है। यह पुस्तक विद्यार्थियो के लिए बडी उपयोगी सिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त 'हिन्दी भाषा और साहित्य' मे बाबू जी ने हिन्दी के इतिहास की प्रामाणिक, विद्वत्तापूर्ण और निष्पक्ष समीक्षा का सिद्धात रखा है। बाबू जी की भाषा सरल और सुबोध होती है। उन्होने अपने विषय के गहन और सूक्ष्म सिद्धातो को बडे सीधे-सादे ढग से समझाया है।

बाबू श्यामसुन्दरदास के पश्चात् आधुनिक समालोचको मे श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होने 'विश्व-साहित्य' और 'हिन्दी-साहित्य-विमर्श' आदि पुस्तके लिखकर हिन्दी-साहित्यिको को विश्व के अन्य समुन्नत साहित्यो से परिचित कराया है। इनकी इन पुस्तको में साहित्य के द्वारा मानव जाति मे प्रेम और ऐक्य की भावना एव विश्व-बन्धुत्व का सदेश मिलता है।

हिन्दी-भाषा की क्रमागत शैली के विकास की ओर अभी तक किसी ने ध्यान नही दिया था। काशी-विश्वविद्यालय के हिन्दी-अध्यापक डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने 'हिन्दी-गद्य-शैली का विकास' लिखकर आलोचना-जगत् की एक कमी को पूरा किया। आपने 'प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन' लिखकर प्राचीन नाट्य-शास्त्रो के आधार पर आधुनिक नाटक-रचना का बडा सुन्दर अनुशीलन किया है। प० रमाकात त्रिपाठी ने 'हिंदी-गद्य-मीमासा' लिखकर गद्य-शैली का सुन्दर विवेचन किया है। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'वाड्मय विमर्श' लिखा है, जिसमे साहित्य का सक्षिप्त किन्तु खोजपूर्ण विवेचन किया गया है।

इसी काल मे रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' की 'प्रसाद की नाट्य-कला', 'आधुनिक हिन्दी कहानियाँ की भूमिका', डॉ० रामकुमार वर्मा का 'कबीर का रहस्यवाद' आदि समालोचना-ग्रन्थ प्रकाश में आये। गगानाथ झा का, 'कवि-रहस्य', रमाशकर शुक्ल का 'आलोचनादर्श', जना-

र्दनप्रसाद झा 'द्विज' की 'प्रेमचन्द की उपन्यास-कला' आदि पुस्तको ने समालोचना के विकास में पर्याप्त योग दिया।

समालोचना-शास्त्र के कुछ ग्रथो के लिखे जाने पर अनेक समीक्षको को आलोचना-क्षेत्र से कार्य करने के लिए एक सुव्यवस्थित मार्ग मिल गया। फलत आज आलोचना-साहित्य मे खूब वृद्धि हो रही है। श्री रामदास गौड की 'रामचरित मानस की भूमिका' मे तुलसी-साहित्य पर विशद प्रकाश डाला गया है। प० कृष्णशकर शुक्ल की 'केशव की काव्य-कला' 'कविवर रत्नाकर' तथा 'आधुनिक हिंदी-साहित्य का इतिहास' आदि उल्लेखनीय पुस्तके है। तुलसीदास पर डॉक्टर बलदेव-प्रसाद मिश्र की 'तुलसी-दर्शन' तथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त की 'तुलसीदास' अच्छी पुस्तके हैं। नलिनीमोहन सान्याल की 'भक्तवर सूरदास', नददुलारे जी वाजपेयी की 'सूर-सदर्भ', हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'कबीर' और नगेन्द्र की 'साकेत एक अध्ययन' तथा 'सुमित्रानन्दनपन्त' आदि पुस्तके समीक्षा-साहित्य के विकास की द्योतक है। नगेन्द्र जी के 'आधुनिक हिंदी नाटक' और सत्येन्द्र जी के 'हिंदी एकाकी' मे नाटको के शिल्प-विधान का भी अच्छा विवेचन किया गया है।

आधुनिक आलोचना मे हमे दो प्रकार की नई प्रणालियो के दर्शन होते है। (१) मनोवैज्ञानिक बौद्धिकता-प्रधान समालोचना, और (२) शास्त्रानुमोदित गभीर आलोचना। नददुलारे वाजपेयी और डॉ० नगेन्द्र, पहली प्रणाली के आलोचक है। इनमे व्याख्यात्मक समालोचना का भी पुट रहता है। डॉ० नगेन्द्र की 'रीति काव्य की भूमिका' तथा 'देव और उनकी कविता' आलोचना-साहित्य की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इनमे रस-वादी दृष्टिकोण से लेखक ने साहित्य की परिपाटी पर अच्छा विचार किया है।

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, कृष्णशकर शुक्ल, रामकुमार वर्मा, राम-कृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख', सत्येन्द्र तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वितीय प्रणाली के सवाहक आलोचक है। इनकी आलोचनाओ से एक नवीन

शैली का प्रचलन हुआ । वे तुलनात्मक समालोचना के स्थान पर किसी भी वस्तु की खोज करके उसके ऐतिहासिक पक्ष का समर्थन करने के पक्षपाती है । श्री गुलाबराय जी ने प० रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना-पद्धति को अपनाया है । इनकी 'सिद्धान्त और अध्ययन' तथा 'काव्य के रूप' नवीनतम कृतियाँ है, जो अपने ढग की अद्वितीय है । श्री इलाचन्द्र जोशी ने मनोवैज्ञानिक ढंग से आलोचनाएँ की है ।

इधर कुछ दिनो से प्रगतिवादी आलोचको ने मार्क्स दर्शन के आधार पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आलोचना करने का नवीन मार्ग अपनाया है । प्रगतिशील आलोचकों में श्री शिवदानसिंह चौहान, डॉ० रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश,' अज्ञेय और प्रभाकर माचवे के नाम उल्लेखनीय है । इनकी कृतियो तथा समीक्षा प्रणाली का उल्लेख हम प्रेमचन्द-काल के अन्तर्गत करेंगे ।

आधुनिक कविता : रहस्यवाद और छायावाद

रहस्यवाद हिन्दी में कोई नई वस्तु नही है । वास्तव मे रहस्यवाद की भावना तो मानव-हृदय की स्वाभाविक उपज है । जब वह अपने चारो ओर फैले हुए विशाल विश्व को देखता है, प्रकृति के नाना रूपो का अवलोकन करता है, सूर्य, चन्द्रमा और तारागण आदि का नियमित रूप निहारता है, तो उसके हृदय मे स्वत. यह जिज्ञासा उठती है कि इस समस्त प्रपंच के मूल मे कोई रहस्यमयी शक्ति कार्य कर रही है । इस रहस्यमयी अदृश्य शक्ति को जानने का वह प्रयास करता है । उसके हृदय में एक आध्यात्मिक भावना जागृत हो उठती है । इसी आध्यात्मिक भावना का एक स्वरूप रहस्यवाद है । हमारे उपनिषदो मे एक अज्ञात अचिन्त्य ब्रह्म का वर्णन है, जिसके देखने, जानने की मनुष्य सदैव चेष्टा करता है, पर यह देखा या जाना नही जा सकता । हाँ, विविध प्रकार की चित्रमयी भाषा में उसके स्वरूप की कल्पना की गई है । हिन्दी के सन्त कवियो में हमें रहस्यवाद की यही भावना मिलती है । कबीर

ने अपनी कविताओं मे इस अचिन्त्य ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार किया है :

जाकै मुह-माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप वास तै पातला, ऐसा तत्त्व अनूप ॥

रहस्यवाद की जिस अवस्था मे प्रेमी अपने प्रियतम के स्वरूप में विलीन हो जाता है, उस अवस्था का कबीर ने कितना सुन्दर और मार्मिक वर्णन किया है :

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥

प्रेममार्गी सूफी कवियो में भी रहस्यवाद की भावना पाई जाती थी। किन्तु कालान्तर मे उनके रहस्यवाद ने साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिया। सूफी कवियो की यह रहस्यवादिता ही यूरोप में जाकर प्रचलित हुई। आज कुछ लोगो की यह धारणा कि हिन्दी में रहस्यवाद या छायावाद पश्चिमी रहस्यवाद का अनुकरण है, मिथ्या और भ्रममूलक है। वास्तव मे रहस्यवाद की भावना तो हिन्दी में परम्परागत है। कुछ लोगो का मत है कि हिन्दी मे रहस्यवाद रवीन्द्र ठाकुर के प्रगतिवाद अथवा रहस्यवाद का अनुकरण है और रवीन्द्र ठाकुर का रहस्यवाद पश्चिमीय है। यह ठीक है कि हिन्दी के आधुनिक रहस्यवाद पर रवीन्द्र के रहस्यवाद का प्रभाव अवश्य पडा, किन्तु रवीन्द्र के रहस्यवाद को हम पश्चिमीय नही मान सकते। रवीन्द्र ठाकुर का रहस्यवाद वास्तव में उपनिषदो का रहस्यवाद है। बगाल में जब ब्रह्म समाज की स्थापना हुई, तब उपनिषदो में वर्णित उसी अचिन्त्य और अदृश्य ब्रह्म के संबंध में आध्यात्मिक भावनाओ की जागृति हुई। उन्ही भावनाओ से आभासित रूप को लक्ष्य करके कुछ रचनाएँ हुईं। पीछे जब रवीन्द्रनाथ ने साहित्य में प्रवेश किया, तो वही आध्यात्मिक भावनाएँ साहित्य का रूप धारण कर गईं। हिंदी-कवि उसका आध्यात्मिक रूप तो ग्रहण नही कर सके, केवल साहित्यिक रूप ही उन्होने ग्रहण किया। इसमें उन्होने अपना

थोडा-सा विकृत अध्यात्म मिला दिया, जिससे हिंदी के रहस्यवाद या छायावाद में ऐन्द्रियता का समावेश हो गया।

रहस्यवाद की प्रथम अवस्था में कवि को प्रस्तुत में अप्रस्तुत का आभास होता है। जैसे :

नभ के पर्दे के पीछे, करता है कौन इशारे।

दूसरी अवस्था में वह उससे मिलने को उत्सुक होता है

हाँ सखि आओ बाँह खोल हम, लगकर गले जुड़ा लें प्रान।
फिर तुम तम में, मै प्रियतम में, हो जावें द्रुत अन्तर्धान॥

तीसरी अवस्था रहस्यवाद की चरम साधना की स्थिति है। इस अवस्था मे आत्मा और ब्रह्म एक हो जाते है। आत्मा सहज ही में ब्रह्म के गुणो का अपने मे आरोपण कर लेता है। फिर दोनो मे कोई भेद नही रह जाता :

चित्रित तू मै हूँ रेखा-क्रम
मधुर रमा तू मै स्वर-संगम
तू असीम मै सीमा का भ्रम
काया छाया में रहस्यमय प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?

छायावाद रहस्यवाद की प्रथम सीढी है। छायावाद मे आत्मा और जगत् के तादात्म्य पर बल दिया जाता है, जब कि रहस्यवाद मे आत्मा और परमात्मा का एकीकरण लक्ष्य होता है। छायावाद मे प्रकृति का अत्यधिक समावेश होता है। आधुनिक कवि छायावादी अधिक है, रहस्यवादी कम। छायावाद मे 'व्यक्तित्व का प्रकाशन', 'अतृप्त प्रेम', 'विश्व-बन्धुत्व की भावना', 'वेदना और निराशा', 'रहस्यवादी प्रवृत्ति का प्राधान्य' आदि रहते है। ये कवि सौदर्यवादी होते है।

जयशंकर 'प्रसाद'—प्रसाद जी का जन्म स० १६४६ में काशी के प्रसिद्ध वैश्य-कुल मे हुआ था। आप बचपन से ही विद्या-व्यसनी थे। हिन्दी के अतिरिक्त अग्रेजी, सस्कृत, फारसी, बगला आदि की शिक्षा भी आपने पाई थी। बचपन से आपके अदर कवित्व की प्रतिभा दबी पडी थी।

आगे चलकर वह विकसित हो उठी और आप रहस्यवाद के सर्वश्रेष्ठ कवि कहलाए।

प्रसाद जी रहस्यवाद और छायावाद के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। इनकी कविताओं मे तीन विशेषताएँ प्रमुख रूप से पाई जाती है—(१) वैयक्तिक तथा ईश्वरोन्मुख प्रेम, (२) प्रकृति-प्रेम, तथा (३) अतीत गौरव। प्रसाद जी की कविताओं में बौद्धिक और आध्यात्मिक दोनो ही तत्त्व मिलेगे। यौवन और उन्माद, प्रेम और पीडा, आँसू और मुस्कान, सयोग और वियोग सभी कुछ आपकी कविता में उत्कृष्ट रूप मे पाया जाता है :

किरण तुम क्यो बिखरी हो आज,
रँगी हो तुम किसके अनुराग ?

प्रसाद जी का प्रेम लौकिक से अलौकिक की ओर ले जाता है। इनका वर्णन पार्थिव होते हुए भी अपार्थिवता की ओर सकेत करता है। इनके देश-प्रेम का विषय एक अव्यक्त भावना से है जो विभिन्न रूपो में ससार मे व्यक्त होती रहती है। ये प्रकृति मे भी उसी का स्वरूप निहारते है -

आँखों के अरुण मुकुर में,
सुन्दर प्रतिबिम्ब तुम्हारा।
उस अलस उषा में देखूँ,
अपनी आँखों का तारा॥

प्रसाद जी की स्फुट रचनाएँ 'आँसू', 'लहर' तथा 'झरना', आदि पुस्तको मे सगृहीत है। 'कामायनी' इनका महाकाव्य है। वही इनकी कीर्ति का अविचल स्तम्भ है।

'आँसू' उनका एक मानवीय विरह का काव्य है। 'आँसू' को उन्होने 'घनी-भूत पीडा' कहा है :

वह घनी-भूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई॥

यहाँ पीड़ा को बादल का रूप दिया गया है। वही बादल आँसू बनकर आँखो मे आता है। आँखों और प्रकृति मे भी आँसुओ को देखकर प्रसाद जी ने मनुष्य और प्रकृति का साम्य उपस्थित किया है।

'कामायनी' मे मनु और श्रद्धा की कथा है। यह एक प्रकार की समासोक्ति है। इसमे कथा के साथ-साथ रूपक भी चलता है। मनु, श्रद्धा और इड़ा—तीनो इसके मुख्य पात्र हैं। 'कामायनी' में हृदयवाद और बुद्धिवाद का समन्वय किया गया है। प्रसाद जी ने स्वय कहा है: **"मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।"** कला की दृष्टि से 'कामायनी' सर्वश्रेष्ठ काव्य है। इसमें अनेक सूक्तियाँ और शब्द-चित्र आये है। श्रद्धा के सौंदर्य का कितना सुन्दर वर्णन किया गया है:

मसृण गांधार देश के नील,
रोम वाले मेषो के चर्म।
ढक रहे थे उसका वपु कान्त,
बन गया था वह कोमल वर्म॥
नील परिधान बीच कुसुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ बन बीच गुलाबी रंग॥

कामायनी में मनुष्य को कर्मशील बनने की प्रेरणा की गई है। बुद्धि द्वारा निर्भीक होकर कर्म करने मे ही उसकी सार्थकता है। अपने पुत्र मानव को इड़ा के साथ रहने का आदेश देती हुई श्रद्धा कहती है:

हे सौम्य! इड़ा का शुचि दुलार,
हर लेगा तेरा व्यथा भार।
यह तर्कमयी तू श्रद्धामय,
तू मननशील कर कर्म अभय॥

वास्तव में 'कामायनी' इनका आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। प्रसादजी की भाषा संस्कृत-गर्भित होते हुए भी मधुर और प्रवाहमयी है। इनका शब्द-चयन भी बडा सुन्दर है। अलंकार-योजना तथा उपमाओं मे भी नवीनता रहती है। इन समस्त गुणों के कारण ही वे एक युग-प्रवर्तक कवि कहलाए। 'कामायनी' की श्रेष्ठता पर आपको १२०० रु० का मंगलाप्रसाद-पारितोषिक भी मिला था। प्रसाद जी को अपने सांसारिक जीवन मे बडे संघर्षों का सामना करना पडा। ऐसी अवस्था मे आपकी आध्यात्मिक मनोवृत्ति ने ही आपका साथ दिया। सं० १९९४ में कार्तिक शुक्ला ११ को आपका शरीरांत हुआ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—आपका जन्म सं० १९५३ में हुआ। प्रसादजी के बाद रहस्यवादी कवियों में आपका ही प्रमुख स्थान है। आप बड़े स्वतन्त्र हैं। अपनी प्रकृति के अनुसार ही आपकी कविता भी रूढिवाद के बन्धनों को तोडती हुई स्वच्छन्द गति से प्रवाहित हुई है। निरालाजी में दार्शनिकता और कवित्व दोनों ही बातें पाई जाती हैं। आप में बुद्धिवाद और हृदयवाद दोनों का ही सुखद सम्मिश्रण है। निराला जी रहस्यवाद से प्रभावित अवश्य है, किन्तु रहस्यमयता में तल्लीन होकर आप अपना व्यक्तित्व खो देने के पक्ष मे नहीं हैं। आप भक्तों की तरह ईश्वर से चाँद-चकोर का-सा ही सम्बन्ध रखना चाहते हैं

तुम गन्ध-कुसुम-कोमल पराग, मैं मृदुगति मलय समीर।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मैं प्रकृति-प्रेम जंजीर॥
तुम शिव हो मैं हूँ शक्ति।
तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र, मैं सीता अचला भक्ति।

निराला जी की इस कविता में अद्वैतवाद झलक रहा है। आत्मा और परमात्मा का कैसा सुन्दर सम्बन्ध दिखाया है। ईश्वर और आत्मा वास्तव मे भिन्न तो नहीं हैं, भिन्न तो हमें दिखाई पडते हैं। इसी प्रकार नीचे की कविता में जीव और ब्रह्म की एकता दिखाई गई है:

जीवन की सब विजय, सब पराजय
चिर अतीत आशा, सुख सब भय
सब में तुम, तुम में सब तन्मय,
कर स्पर्श रहित औं क्या है अपलक, असार !
मेरे जीवन पर यौवन-वन के बहार ।।

ऊपर हमने निरालाजी के दार्शनिकता-सम्बन्धी दो उदाहरण दिये हैं। निराला जी ने बुद्धि-तत्त्व को भी अपने काव्य में स्थान दिया है। बुद्धि तत्त्व काव्य मे हेय नहीं है, जिस किसी कृति में ओजस्विता हो, जिसका प्रभाव हम पर पडे, उस काव्य को श्रेष्ठ ही माना जायगा, चाहे उसमे बुद्धि तत्त्व की ही प्रधानता क्यो न हो। निराला जी का एक अत्यन्त बुद्धि-विशिष्ट काव्य-चित्र देखिए :

प्रथम विजय भी यह भेदकर माया चरण
दुस्तर तिमिर घोर जड़ावर्त—
अगणित तरंग भंग—
वासनाएँ समल निर्मल
कर्ममय राशि-राशि
स्पृहाहृत जंगमता—
नश्वर संसार—
सृष्टि पालन प्रथम-भूमि—
कुकर्म अज्ञान राज्य
मायावृत्त 'मैं' का परिवार
उसकी अश्रु भरी आँखों पर
मेरे करुणांचल का स्पर्श
करता मेरी प्रगति अनन्त
किन्तु तो भी है नहीं विमर्श

यह बुद्धि-तत्त्व आधुनिक भावना-विजड़ित कविता में निस्संगता लाने और कोरी कल्पनामयी कविता को संग्रथित कला-सृष्टि का स्वरूप देने

मे समर्थ है। देखिए :

उसकी अश्रु भरी आँखो पर
मेरे करुणांचल का स्पर्श
करता मेरी प्रगति अनन्त
किन्तु तो भी है नहीं विमर्श
छूटता है यद्यपि अधिवास
किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास।

निरालाजी की स्वच्छन्दता मुक्तक छन्दो मे अधिक प्रवाहित हुई है। इनकी भाषा मे पौरुष, प्रवाह, तीव्रता, क्लिष्टता और गजब की गति है। इनके स्वच्छन्द छन्द प्रवाहयुक्त और गतिशील है :

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर!
राग अमर! अम्बर में भर निज रोर!
झर झर झर झर निर्झर गिरि सर में,
घर, मरु, तरु मर्मर सागर में,
सरित तड़ित गति, चकित पवन में,
मन में, विजन गहन कानन में,
आनन-आनन में, रव-घोर-कठोर—
राग-अमर! अम्बर में भर निज रोर!

युग की विचार-धारा से प्रभावित होकर भी निराला ने बहुत-कुछ लिखा है। 'भिक्षुक', 'विधवा' और 'वह तोडती पत्थर' कविताएँ ऐसी ही है। निरालाजी की कविताएँ, 'परिमल', 'अनामिका', 'गीतिका', 'अलका', 'अप्सरा', 'अपरा', 'प्रभावती', 'निरुपमा', 'नये पत्ते' और 'वेला' आदि मे सगृहीत है।

सुमित्रानन्दन पन्त—आपका जन्म सं० १९५६ मे अलमोडा जिले में हुआ। आपने एफ० ए० तक अग्रेजी मे शिक्षा प्राप्त की और फिर कालेज छोडकर प्रकृति की अप्रतिबन्ध गोद मे ही अपने जीवन की वास्तविक शिक्षा पाने लगे। प्रकृति ने ही उन्हे गाना सिखाया और प्रेम

करना सिखाया और प्रेम के वियोग मे तडपना भी सिखाया। पतजी की वर्ण-योजना मे सूक्ष्मता रहती है, वे प्रकृति-निरीक्षण तथा भावुकता के संयोग से सुन्दर चित्र चित्रित करते है। पतजी की उपमाएँ भी बडी अनूठी और सुन्दर होती है :

बाल-रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित-सी शशि के वदन के बीच में
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में

पंतजी ने रूप और सूक्ष्म भावना दोनो के ही चित्र खीचे हैं। और अपनी कल्पनापूर्ण नई-नई उपमाओ को उपस्थित करके उन चित्रो को बड़ा आकर्षक बना दिया है :

गिरि का गौरव गाकर झर-झर।
मद से नस-नस उत्तेजित कर।
मोती की लड़ियों से सुन्दर।
झरते झाग भरे हैं निर्झर।।

× × ×

धूम धुँआरे काजर कारे,
हम ही विकरारे बादर,
मदन राज के वीर बहादुर,
पावस के उड़ते फणिधर।।

अब तनिक मानव-सौदर्य का वर्णन भी देखिए .

सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषण,
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन।।

प्रेम और सौंदर्य की सूक्ष्म मानसिक विवृत्ति तक में पंतजी की कल्पना समर्थ हुई है। और यत्र-तत्र यही कल्पना आध्यात्मिक उड़ान

भी लेती चली है। इसी को प्रचलित शब्दो मे छायावाद कहा जाता है। जब वे आत्म-दर्शन की अभिव्यक्ति की चेष्टा करते है तो उनके काव्य मे एक असीम आनन्द की अनुभूति होती है :

आज वन में पिक-पिक में गान, विश्व में कलि-कलि में सुविकास।
कुसुम में रज, रज में मधु प्राण ! सलिल में लहर, लहर में लास।
मुकुल मधुपो का मृदु मधुमास, स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ का सार,
मनोभावो का मधुर-विलास, विश्व-सुषमा ही का संसार।
दृगो में छा जाता सोल्लास, व्योम-बाला का शरदाकाश,
तुम्हारा आता जब प्रिय-ध्यान, प्रिये प्राणो की प्राण ॥

पतजी छायावाद के सर्वश्रेष्ठ कवि कहे जाते हैं, किन्तु आजकल उन्होने प्रगतिवादी पर भी लिखा है। प्रगतिवादी दृष्टिकोण के जन्म लेते ही पतजी ने उसे अपनाया और मध्य-वर्ग के सघर्ष को केन्द्र-बिन्दु बनाकर सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत की। 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' इसका प्रमाण हैं

इस क्षुद्र लेखनी से केवल,
करता मै छाया-लोक सृजन ?
पैदा हो मरते जहाँ भाव,
बुद्-बुद् विचार औ' स्वप्न सघन।
निर्माण कर रहे वे जग का,
औ' जोड़ ईंट-चूना-पत्थर।
जो चला हथौड़े घन, क्षण-क्षण,
है बना रहे जीवन का घर।
जो कठिन हलों की नोकों से,
अविराम लिख रहे धरती पर।
जो उपजाते फल, फूल, अन्न,
जिन पर मानव-जीवन निर्भर ॥

मैं जग जीवन का शिल्पी हूँ।
जीवित मेरी वाणी के स्वर।
जन-मन के मास-खण्ड पर मै,
मुद्रित करता हूँ सत्य अमर ॥

'ग्राम्या' मे आपने ग्राम-जीवन के वास्तविक चित्र उपस्थित किये है। ग्रामो मे ही आप भारतीय सस्कृति का दर्शन पाते है .

मनुष्यत्व के मूल तत्त्व ग्रामों ही में अंतर्हित,
उपादान भावी संस्कृति के भरे यहाँ है अविकृत।
शिक्षा के सत्याभासो से ग्राम नहीं है पीड़ित,
जीवन के संस्कार अविद्या-तम में जन के रक्षित।

'उच्छ्वास', 'वीणा', 'पल्लव', 'ग्रंथि', 'गुजन', 'पल्लविनी', 'युगान्त', 'ज्योत्स्ना', 'युगवाणी', 'ग्राम्या' आदि आपकी उत्तम कृतियाँ है। 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि' और 'उत्तरा' मे वे 'अरविन्द-दर्शन' को काव्य के माध्यम से व्यक्त कर रहे है।

महादेवी वर्मा—आपका जन्म स० १९६४ मे फर्रुखाबाद मे हुआ था। आपने संस्कृत और दर्शन विषयो के साथ बी० ए० पास किया और सस्कृत मे एम० ए० पास करके इस समय आप प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की प्रधानाध्यापिका है।

आपने खड़ी बोली के गीति-काव्य को एक अद्भुत जीवन-शक्ति प्रदान की है। आपकी कविता में दु.ख की तीव्र अनुभूति है। आप अपने मानस के समान ससार मे सूनापन देखती है। फिर भी आप मनुष्य की सीमाबद्धता मे सकुचित नही होती, आपके विचार मे मनुष्य की लघुता ही उसका गौरव है। यही आपके रहस्यवाद की विशेषता है :

सच है कण का पार न पाया, बन बिगड़े असंख्य संसार।
पर न समझना देव हमारी लघुता है जीवन की हार ॥

चिर अतृप्ति वासनाओं का, निष्फल जीवन कर जाती।
बूझते ही क्यों प्यास हमारी, पल में विरक्ति बन जाती॥

महादेवी जी के काव्य मे कल्पना-शक्ति का प्राधान्य है। कही-कहीं तो काव्य की स्वाभाविकता कल्पना के बोझ से दबकर क्लिष्टता का रूप धारण कर गई है :

रजनी ओढ़े जाती थी, झिलमिल तारों की जाली।
उसके बिखरे वैभव पर, जब रोती थी उजियाली॥

रजनी का झिलमिल तारो की जाली ओढकर जाना बडी सरल और मार्मिक कल्पना है। किन्तु उजियाली का रोना साधारणत कही-कही देखा जाता है। क्लिष्ट कल्पना का एक और उदाहरण देखिये :

निश्वासो का नीड निशा का बन जाता जब शयनागार।
लुट जाते अभिराम छिन्न मुक्तावलियो के बंदनवार॥
तब बुझते तारो के नीरव नयनो का ये हाहाकार।
आंसू-सा लिख-लिख जाता है, कितना अस्थिर है संसार॥

किंतु जहाँ इन्होने अलकृत, चित्राकन छोडकर स्वाभाविकता का मार्ग पकडा, वहाँ बडी सजीव कविता का स्रोत बह चला है

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास, देव वीणा का टूटा तार।
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार, रत्न वह प्राणो का शृङ्गार॥
नई आशाओ का उपवन, मधुर था वह मेरा जीवन !

महादेवी ने छायावादी काव्य में व्यक्त प्रकृति के सौंदर्य-प्रतीको को न लेकर उन प्रतीको की अव्यक्त गतियो और छाया का ही सग्रह किया है। इससे उनकी रचनाओ मे वेदना की विवृति और रहस्यात्मकता बढ गई है .

उन हीरक के तारों को कर चूर बनाया प्याला।
पीड़ा का नव सार मिलाकर, प्राणो का आसव ढाला॥
मलियानिल के झोको में अपना उपहार लपेटे।
मै सूने तट पर आई, बिखरे उद्गार समेटे॥

आपकी कविताओ के सग्रह—'नीहार', 'नीरजा', 'रश्मि', 'सान्ध्य-गीत', 'दीपशिखा' और 'यामा' नाम से प्रकाशित हुए हैं।

रामकुमार वर्मा—आपका जन्म स० १९६२ में सागर जिले मे हुआ था। आपकी स्वर्गीय माता जी कवयित्री थी, इसलिए आप पर मातृ-सस्कार का पूरा प्रभाव पडा। प्रयाग-विश्वविद्यालय मे आपने एम० ए० पास किया और 'हिंदी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन' लिखने पर नागपुर-विश्वविद्यालय ने आपको—'डॉ० आफ फिलासोफी' की उपाधि प्रदान की। सम्प्रति आप प्रयाग-विश्वविद्यालय मे हिंदी-अध्यापक का कार्य करते हैं।

इनकी कविताओ में पीड़ा, अभाव और विषाद की वेदना छिपी रहती है। आपकी कविताओ मे कल्पना और अनुभूति दोनो ही होती है। वास्तव मे आप दुःखवाद के कवि हैं। क्षणिक सुख मे आपको दुःख का आभास मिलता है :

क्यों लिखते हो खींच-खींच,
विद्युत् की उज्ज्वल रेखा।
मैंने तो नभ को केवल,
पृथ्वी पर रोते देखा॥
बादल के तिरछे तन को,
स्थिर मैंने कभी न पाया।
प्रातः मे भी दौड़ गई,
सन्ध्या की काली छाया॥

इस दुःखवाद के कारण आपकी कविताओ में निराशा अवश्य आ गई है, किन्तु निराशा में भी आप प्रियतम को नही भूले है। फटे हुए बादलो में भी वे उसका आभास पाते है :

यह तुम्हारा हास आया।
इन फटे से बादलों में
कौन सा मधुमास आया॥

आपकी कविताओ मे न तो उलझन है और न भाषा में ही क्लिष्टता और अस्पष्टता है। आपकी कविताओ के सग्रह—'निशीथ', 'चित्तौर की चिता', 'अजलि', 'अभिशाप', 'रूपराशि' और 'चित्ररेखा' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। 'चित्ररेखा' की श्रेष्ठता पर आपको २००० रुपये का देव-पुरस्कार भी मिल चुका है।

भगवतीचरण वर्मा—आपका जन्म स० १९६० में उन्नाव जिले के अन्तर्गत शफीपुर नामक ग्राम में हुआ था। वर्माजी की कविताएँ प्रेम की पीडा से भरी रहती है। किन्तु आप दु ख मे भी सुख का अनुभव करते हैं। आपकी कविता के आधार है—'घोर निराशा', 'अलमस्ती', 'प्रेम-वेदना', 'अतृप्ति' और 'जीवन के आघात'। आपकी कविताओ में कल्पना की असम्भव और अस्वाभाविक उडान नही होती, प्रत्युत बडे स्पष्ट और सरलतापूर्ण चित्र होते है

घिर रहा निराशा को लेकर पावस का यह धुँधला प्रभात !
सिहरन को लेकर पुरवाई, बह रही व्यथा से अति चंचल।
लो उस तरु पर प्यासा चातक, है बोल रहा उन्मत्त विकल ।।
काली-काली मेघावलियाँ है उमड रहीं दुख से पागल।
तड़पे हैं सारी रात यहाँ, रो-रोकर जल-जलकर बादल ।।
है मैंने भी तो रो-रो कर काटी वियोग की काल-रात !

इस दु.ख में भी उन्हें एक आशा दिखाई दे रही है

इस दुख में पाओगे सुख की धुँधली एक निशानी।
आहो के जलते शोलो में तुम्हे मिलेगा पानी ।।

जीवन की विषमता ने वर्माजी को प्रगतिवादी बना दिया है। अब कुछ दिन से वे प्रगतिशील रचनाएँ लिखते है। देखिए, 'भैसा गाडी' में आपने समाज के वैषम्य का कैसा मार्मिक चित्रण किया है '

जिसमें मानव की दानवता फैलाए है निज राज-पाट।
साहूकारों के परदे में है जहाँ चोर औ' गिरहकाट ।।

है अभिशापों से जहाँ-जहाँ, पशुता का कलुषित ठाट-बाट।
उसमें चाँदी के टुकड़ों के बदले में लुटता है अनाज।
उन चाँदी के ही टुकडो से तो चलता है सब राज-काज॥
वह राज-काज जो सधा हुआ है इन भूखे कंगालों पर।
इन सम्राज्यों की नीव खड़ी है, तिल-तिल मिटने वालों पर॥

आपके काव्य-सग्रह 'मधु-कण' और 'प्रेम-सगीत' है।

मोहनलाल महतो 'वियोगी'—आपका जन्म स० १६४६ में गया मे हुआ था। आपकी गणना भी रहस्यवादी कवियो मे की जाती है। इनकी कविता पर रवीन्द्र ठाकुर के विचारो और सिद्धातो का प्रभाव पडा है। आपके कथनानुसार **'जीवन एक जीर्ण नौका के समान है जिसे अपने प्रियतम के देश की ओर अग्रसर होना चाहिए।'** आपने कही-कही ससार की असारता की ओर भी सकेत किया है और मानव को सचेत करते हुए उसे जीवनोद्देश्य की प्राप्ति का सदेश दिया है :

रहस्य' और 'अदृश्य' के प्रति आपका रहस्यमय सकेत देखिए :

हे मेरे जीवन की पुस्तक! भूतकाल के हे इतिहास!
हे भविष्य की विशद पंजिका! हे विचित्रता के आवास!
कौन अलक्ष्य उँगलियो से नित पृष्ठ उलटता है तेरा?
है सीमित उसका दिखलाना, है सीमित पढ़ना मेरा॥

आपकी कविताओ के संग्रह 'निर्माल्य', 'कल्पना' और 'एकतारा' नाम से प्रकाशित हो चुके है।

माखनलाल चतुर्वेदी—आपका जन्म सं० १६४५ मे हुआ था। आधुनिक राष्ट्रीय कवियो मे आपका चोटी का स्थान है। आप मध्य प्रदेश के एक प्रमुख राष्ट्रीय कार्यकर्ता भी है। आजकल आप 'कर्मवीर' का सम्पादन करते है। आपकी रचनाएँ कल्पना-प्रसूत नही, प्रत्युत जीवन की कठोर अनुभूतियो के उद्गार-स्वरूप होती है। आपकी कविताओ मे वेदना की अदृश्य मूर्ति लक्षित होती है।

'बलिदान', 'उन्मूलित वृक्ष', 'सिपाही', 'मरण और त्योहार' आपकी

उत्कृष्ट राष्ट्रीय रचनाएँ है। आपकी रचनाओ मे एक प्रलयकारी ओज है। यहाँ तक कि आपकी प्रेम और वेदनाओ की कविताएँ भी उस ओज से नही वच सकी हैं। आपकी राष्ट्रीयता के कारण ही आपको 'एक भारतीय आत्मा' की उपाधि दी गई है। आपकी -कविताओ का सग्रह 'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरगिनी के नाम से प्रकाशित हो चुके है। आपकी कविता का उदाहरण देखिए

> **मत झनकार जोर से, स्वर भर ले तू तान समझ ले।**
> **नीरस हूँ तो रस वरसाकर अपना गान समझ ले॥**
> **फौलादी तारो से कस ले वन्धन मुझ पर कस ले।**
> **कभी सिसक ले, कभी मुसक ले कभी खीझकर हँस ले॥**
> **कान खींच ले, पर न फेंक गोदी से मुझे उठाकर।**
> **कर जालिम मनमानी अपनी पर 'जी' से लिपटाकर॥**

गुरु भक्तसिंह 'भक्त'—आपका जन्म स० १९५० मे गाजीपुर जिले के अन्तर्गत जमनियाँ नामक स्थान मे हुआ था। आप वडे सहृदय-कवि है। आपके रचित काव्य 'कुसुम-कुज', 'सरस-सुमन', 'वशी-ध्वनि', 'चपला' तथा 'नूरजहाँ' है। 'नूरजहाँ' से ही काव्य-क्षेत्र मे आपकी प्रसिद्धि हुई है। 'नूरजहाँ' मे आपने मानव-हृदय के अन्तर्द्वन्द्व, पिपासाकुल जीवन की कसक और प्रेम की पीडा का वडा सुन्दर चित्राकन किया है। आपकी दो विशेषताएँ है—प्रकृति-वर्णन और मुहाविरो का प्रयोग। 'नूरजहाँ' पर आपको नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा पुरस्कार भी मिल चुका है। 'विक्रमादित्य' महाकाव्य भी उनकी श्रेष्ठ कृति है। आपने इस कविता मे मुहाविरो का कैसा सुन्दर प्रयोग किया है

> **अब तक खूब उड़ाए है तूने आनन्द कबूतर।**
> **हाथो के तोते अब उड़ते, कैसा कतर दिया पर॥**
> **अब मेरी तूती बोलेगी, तथा खिलाऊँगी गुल।**
> **वह प्यारा सलीम हो जायगा मुझ पर ही वुलवुल॥**

उल्लू मुझे बनाने आई, उड़ती मैं पहचानूँ।
निकल जाय मेरे पंजे से, कोई तब मैं जानूँ

जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'—आपका जन्म स० १९६४ में मुरार (ग्वालियर) मे हुआ था। आप एक राष्ट्रीय कवि होने के साथ-साथ अनुभवी राष्ट्रकर्मी भी है। राजनैतिक आन्दोलनों मे आपने सदा सचेष्ट भाग लिया हैं और कई बार विदेशी सरकार के जेल-अतिथि भी रह चुके हैं। आपकी कविता आपके सामाजिक और राजनैतिक जीवन की सजीव झाँकी है। उसमे इनके क्रान्तिकारी हृदय की स्वाभाविक छाप है। विशुद्ध कला की दृष्टि से कविता के साथ कवि के जीवन का वास्तविक सामजस्य होना आवश्यक है। यही आपका सिद्धान्त है। आपकी कविताओं के 'जीवन-सगीत', 'नवयुग के गान' और 'बलि पथ के गीत' ना मकतीन सग्रह प्रकाश में आ चुके है। कविता का उदाहरण देखिए .

श्वासों की सारी शक्ति लगाकर अपनी,
औरों की जय का शंख बजाने वाले।
हम चिर अभाव का नरक बना निज जीवन,
औरों के हित सुख-स्वर्ग जलाने वाले॥
शोणित से सदा हमारे सिंचते आये,
साम्राज्यों के विस्तार, कोष चिर संचित।
अगणित आडम्बर धर्म और दर्शन के,
हम रहे किन्तु अब तक वंचित के वंचित॥

सुभद्राकुमारी चौहान—आपका जन्म स० १९६१ और मृत्यु २००४ म हुई। आपकी कविताएँ अधिकतर राष्ट्रीय होती है। जिनमें देश-प्रेम और तदर्थ सहे जाने वाले कष्टो का वर्णन होता है। उनमें ओज की पर्याप्त मात्रा रहती है। अपनी पुत्री के सम्बन्ध मे जो कविताएँ आपने लिखी है, वे वात्सल्य रस से परिपूर्ण है। आपकी 'झाँसी की रानी' कविता बहुत प्रसिद्ध है। 'मुकुल' व 'बिखरे मोती' नामक ग्रथो पर आपको सेकसरिया पुरस्कार भी मिल चुका है।

'जलियां वाला बाग में' वसन्त कविता के कुछ अश नीचे देखिए .

यहाँ कोकिला नहीं काग हैं शोर मचाते ।
काले-काले कीट भ्रमर का भ्रम उपजाते ।।
कलियाँ भी अधखिली मिली हैं कंटक-कुल से ।
वे पौधे, वे पुष्प शुष्क हैं अथवा झुलसे ।।
परिमल-हीन पराग दाग-सा बना पड़ा है ।
हा ! यह प्यारा बाग खून से सना पड़ा है ।।
आओ प्रिय ऋतुराज ! किंतु धीरे से आना ।
यह है शोक-स्थान, यहाँ मत शोर मचाना ।।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—आपका जन्म स० १९५४ मे शाजापुर (ग्वालियर) मे हुआ। बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आप राष्ट्र की पुकार पर असहयोग-आदोलन में कूद पडे। 'नवीन' जी सयुक्त प्रात के एक प्रमुख राष्ट्रीय नेता हैं, हमारे जीवन मे जो वैषम्य है, आघात और असफलताओ का जो क्रन्दन है, सघर्ष से उभरने वाला जो विद्रोह है, वह सब 'नवीन'जी की कविताओ मे ज्वालामुखी के समान फूट पडा है। आपकी कविताएँ राष्ट्र को जगाने वाली होती हैं। उनमें विप्लव का आवेश भरपूर पाया जाता है। स्वाभाविकता, सरलता, रस तथा प्रवाह मिलकर इनकी कविताओ में एक विचित्र ओज उत्पन्न कर देते है। इनकी शृङ्गार-सम्बन्धी कविताओ में एक मादकता और उन्माद पाया जाता है। आपकी रचनाओ के सग्रह 'कुकुम', 'अपलक', 'रश्मि रेखा', तथा 'क्वासि'नाम से प्रकाशित हो चुके है। आजकल आप लोक-सभा के सदस्य है। आपकी कविता का उदाहरण देखिए

दिल को मसल-मसल मैं मेंहंदी रचता आया हूँ, यह देखो ।
एक-एक अंगुलि परिचालन में नाशक तांडव को देखो ।।
विश्व-मूर्ति, हट जाओ! मम यह भीम प्रहार सह न सहेगा ।
टुकड़े-टुकड़े हो जाओगी, नाश-मात्र अवशेष रहेगा ।।

+ + + +

अन्दर आग छिपी है इसे भड़क उठने दो एक बार अब।
ज्वालामुखी शांत है इसे कड़क उठने दो एक बार अब॥
दहल जायँ दिल, पैर लड़खड़ाएँ कँप जाय कलेजा उनका।
सर चक्कर खाने लग जाये, टूटे बन्धन शासन-गुण का॥

उदयशंकर भट्ट—भट्ट जी का जन्म सं० १९५५ में बुलन्दशहर जिले मे हुआ। भट्ट जी यथार्थवादी कवि है। इनका काव्य गहन अनुभूति और दार्शनिकता लिये हुए है। जीवन की वेदना, सामाजिक विषमता और उससे उत्पन्न होने वाले अन्यान्य, दुखो और क्लेशो का चित्रण इनके काव्य में मिलता है।

भट्ट जी की प्रारम्भिक कविताओं मे निराशा और असफलता के दर्शन होते है .

किसने परिणामों में पाया, संचित आश भरा भृङ्गार।
मै संसार विहार-स्थल पर निरख रहा हूँ बारम्बार॥

धीरे-धीरे निराशा की यह भावना विद्रोह का उग्र रूपधा रण करने लगी। कवि अकर्मण्यता से पौरुष की ओर बढने लगता है। साम्यवाद में उसका विश्वास शिथिल होने लगता है। मानव का भविष्य यदि उज्ज्वल हो सकता है, तो उसके अपने पुरुषार्थ के बल से, ईश्वरीय अनुकम्पा से नही। क्यों कि ईश्वर तो :

कुछ कह न सका पीड़ित के प्रति,
कुछ न किया है अब तक उसने।
कुछ न करेगा आगे भी वह,
निर्बल को देगा यों चुसने॥

भट्ट जी को थोथे सराहनीय अध्यात्मवाद से घृणा है। जिसके बल पर मानव मनमानी करता है :

यह अध्यात्मवाद नीरस के,
जीवन की है मंजु कहानी।

जहाँ कि ईश्वर के वल पर नर,

करता घर जानी मनमानी ॥

अव 'जगती की उथल-पुथल' में भट्ट जी का रूप देखिये :

अरे फेंक दो सुधा रसीली फेंमें अव विष पीने आया हूँ ।

किसी नशे की चाह नहीं पी सर्वनाश जीने आया हूँ ॥

भड़क-भड़ककर आग जगत् की पल को पीकर वढती जाती ।

किसी सृजन के लिए नाश के सोपानो पर चढती जाती ॥

भट्ट जी के काव्य—'तक्षशिला', 'राका', 'मानसी', 'विसर्जन' 'अमृत और विप' तथा 'युग-दीप' नाम से प्रकाशित हो हे ।

हरिवंशराय वच्चन—इनका जन्म स० १९६४ में हुआ । प्रयाग-विश्वविद्यालय से इन्होंने एम० ए० पाम किया । वच्चन जी उमर खैयाम की रुवाइयो के आधार पर हालावाद का प्याला लेकर हिन्दी-जगत् में प्रविष्ट हुए । 'मधुशाला,' 'मधुवाला,' 'मधुकलश' आदि पुस्तकों में जीवन को सुखी वनाने की प्रवृत्ति और ससार के दु ख-सुख भूलकर विस्मृत हो जाने की भावनाएँ पाई जाती है । हालावादी वच्चन हमें जीवन की मधुरता और रगीन मस्ती के वहुत निकट नज़र आते हैं । किन्तु जीवन की अतृप्ति न वुझ सकने पर उन्हे वेदना और निराशा की ओर आना पडा । 'एकान्त-सगीत', 'निशा-निमन्त्रण' में वे निराशावाद के निकट पाए जाते हैं

गान हो जव गूँजने को, विश्व के क्रन्दन करूँ मैं ।

हो गमकने को सुरभि जव, विश्व में आहें भरूँ मैं ।

विश्व वनने को सरस हो जव, गिराऊँ अश्रु मैं तव,

विश्व-जीवन-ज्योति जागे, इसलिए जलकर मरूँ मैं ॥

किन्तु आजकल वच्चन यथार्थवाद के निकट आते जा रहे हैं । इनकी नवीन कविताओ में प्रगतिशीलता पाई जाती है । इनकी प्रगतिशील कविताओ का सग्रह 'सतरंगिनी' नाम से प्रकाशित हुआ है । देखिए भूखे किसान का कितना करुणाजनक चित्र खीचा है .

खड़ा हुआ है कृषक सामने,
दुःख द्रवित हैं उसके दृग ।
जोर-जोर से साँसें चलतीं,
डगमग-डगमग करते पग ।।
वह अकाल-पीड़ित है, रोटी
को पाता पेड़ों की छाल ।
घोर कालिमा मुख पर छाई,
काया है केवल कंकाल ।।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'—प्रेमी जी का जन्म स० १९६५ मे गुना (ग्वालियर) मे हुआ। प्रेमी जी का काव्य जीवन की करुण पीड़ा, मूक वेदना और दुःख तथा अभाव का मार्मिक चित्र है। इनके प्रारम्भिक काव्य मे स्थिति-जन्य दुःख और अभाव का चीत्कार है। किन्तु बाद मे इनकी निराशा एक विद्रोह का रूप धारण कर लेती है। बात यह है कि समाज की विषमता, रूढियाँ, शोषण-प्रणाली सहज मे ही कवि-हृदय को विद्रोही बना देती है। वह इस विषमता और अभावो के प्रति सिंह-गर्जना करता है, विश्व मे उथल-पुथल मचा देना चाहता है। प्रेमी जी के काव्य-संग्रह—'आखो मे', 'जादूगरनी', अनन्त के पथ पर', 'अग्नि गान', 'रूप-दर्शन' 'वन्दना के बोल' नामो से प्रकाशित हो चुके है। कविता का उदाहरण देखिए :

क्यों कहती हो एक घड़ी रुक, मधुर-स्नेह-संगीत सुनाऊँ ।
सूखी हुई स्नेह-क्यारी में, क्षण जीवन की धार बहाऊँ ।।
मेरी साँस-साँस में ज्वाला, बोलो तो सखि कैसे गाऊँ ।
मुझको जाने दो, इस ज्वाला में जग का अभिमान जलाऊँ ?
जग को रहने योग्य बनाऊँ, या अपना अस्तित्व मिटाऊँ ।
क्यों बे-दर्द जगत् के आगे, पीड़ा को बे-दर्द बनाऊँ ।।

आरसीप्रसाद सिंह—आरसी की कविताएँ शृङ्गार और प्रेम-पीडा में डूबी हुई होती है। उनमे कवि-हृदय का सरल प्रेम सहज ही मे बह

निकला है। आपका शब्द-चयन भी बडा सुन्दर पन्त और निराला की टक्कर का है। प्रकृति का चित्रण आपने बडा सुन्दर किया है। आपकी कविताएँ 'कलेजे के टुकडे', 'आरसी' और 'कलापी' मे सगृहीत है। कविता का उदाहरण नीचे देखिए -

आज के मधु का पुलकित प्रात,
अरुण सस्मित, नत-भाल !
स्फीत मुक्ता-सा, मुख जलजात,
लाज से लोहित गाल !
प्राण, आया विस्मय–अवदात,
सजल चम्पक-सा गात !
माधुरी अधरो पर मुस्कान,
कुतूहल कलित कपोल !
पुष्प-परिमल-पीतसि परिधान;
विलोचन उत्सुक लोल !
उतरता सुर धनु-सा रुचिमान;
स्वयं ही निज उपमान !

श्री श्यामनारायण पांडेय–पाण्डेय जी वीर रस के राष्ट्रीय कवि है। किंतु इनकी राष्ट्रीयता प्राचीन धारा के अनुकूल हिन्दुत्व की है। इनकी भापा सरल और प्रवाहमयी है। इनका 'हल्दी घाटी' वीर रस का एक सुन्दर काव्य है। इनकी कविता का उदाहरण देखिये

वैरी दल की ललकार गिरी।
वह नागिन सी फुफकार गिरी॥
था शोर मौत से वचो-वचो।
तलवार गिरी, तलवार गिरी॥
पैदल से हय-दल, गज-दल में।
छप-छप करती वह निकल गई॥

क्षण कहाँ गई कुछ पता न फिर।
देखो चम-चम वह निकल गई ॥

सोहनलाल द्विवेदी—आप बच्चो के लिए कविताएँ लिखा करते है। वैसे लोग आपको राष्ट्रीय कवि भी कहते है। किन्तु अभी तक कोई आपकी राष्ट्रीय रचना प्रकाश में नही आई है। हाँ, गाधी जी और खादी के सम्बन्ध मे आपने अवश्य कुछ लिखा है। आपकी कविताओ का संग्रह 'वासवदत्ता' नाम से निकला है, जिसमे अनेक ऐतिहासिक भूले है। आपकी उच्च कोटि की रचना का उदाहरण नीचे दिया जाता है.

न हाथ एक अस्त्र हो
न साथ एक शस्त्र हो
न अन्न-नीर-वस्त्र हो
हटो नहीं, हटो नहीं।

इसे बच्चो के लिए साधारण तुकबन्दी ही कह सकते है।

सुमित्राकुमारी सिनहा—महिला-कवयित्रियो मे आपका प्रमुख स्थान है। आपके गीतो मे नारी-हृदय की ज्वलित वेदना छिपी रहती है। प्रेम की पीडा, विरह की व्यथा, कसक, जलन, टीस सभी कुछ आपके गीतो मे मिलता है। आपके सुन्दर गीत समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते है। उदाहरण नीचे देखिये

फूलों की अनुभूति विवश हो, व्यक्त सिसकियों में ही करना।
एक चिरन्तन क्रम दीपक की ज्योति शिखा पर धूम फहरना ॥
सपनों को चिर जागृति देकर एक यथार्थ में तन्द्रित होना।
संकेतों की दशा खोजकर, अवश भ्रान्ति के जग में खोना ॥
एक पूर्णता क्षण से लम्बी साधों का गठ बन्धन करना।
एक सिद्धि के हित जीवन-भर कठिन साधना पंथ-विचरना ॥
चिर अतृप्ति के ही चरणों पर, तृप्ति-कामना का लुट जाना।
यही सत्य है क्या जीवन का, यही मरण का एक बहाना ॥

तारा पांडेय—आपके सुकुमार भावुक हृदय की वेदना ही आपके

गीतो के रूप में परिणत हो गई है। आपके गीत निराशापूर्ण होते है। उनमें अनन्त पीडा की कसक रहती है। जब हृदय की वेदना असह्य हो जाती है तो यह कहती है:

वियोगी हो या वैरागी
कथा कुछ अपनी कह दो आप।
और बदले में हे सुकुमार
व्यथा सुन लो मेरी चुपचाप॥

परन्तु दूसरे की व्यथा को विरले ही सुनते है। जब उसकी व्यथा को कोई नही सुनता, तो उसे निराशा होती है—ससार निर्दय है—पत्थर है, स्वार्थी है

मै दुख से शृङ्गार करूँगी॥
जीवन में जो थोड़ा सुख है,
मृग जल है उसमें भी दुख है,
छली गई बहु वार जगत् में, फिर क्यों अपनी हार करूँगी॥

आपकी कविताओ के सग्रह 'वेणुकी' और 'शुकपिक' नाम से प्रकाशित हो चुके है।

श्रीमती होमवती देवी—आपके गीतो में भी व्यथा होती है। नारी-हृदय तुरन्त अश्रु-सिक्त हो उठता है। जब ये पीडाएँ सँभाले नही सँभलती तो गीतो के रूप मे बह निकलती है

मन कैसे समझाऊँ सजनी।
कैसे व्यथा भुलाऊँ सजनी॥
पल-पल पड़ पीड़ा के पाले।
छिल जाते जब उर के छाले।
सिसक-सिसक मन रो उठता है।
कैसे धीर ,बधाऊँ सजनी।
मन कैसे समझाऊँ सजनी?

उपर्युक्त कवियो के अतिरिक्त हिन्दी की महिला-कवयित्रियो मे

रामकुमारी चौहान, चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा', शान्ति एम० ए०, 'विद्यावती 'कोकिल' कमला चौधरी, शैल रस्तौगी, कुसुमकुमारी सिनहा शान्ति सिंहल तथा निर्मला माथुर आदि के नाम उल्लेखनीय है।

विविध साहित्य

ऐतिहासिक ग्रन्थ—इस युग के इतिहासकारो मे जयचन्द्र विद्यालकार, श्री सत्यकेतु विद्यालकार, कालिदास कपूर, राय कृष्णदास और राजकुमार डॉ० रघुबीरसिह का नाम उल्लेखनीय है। जयचद्र विद्यालकार का 'भारत भूमि और उसके निवासी', रायकृष्णदास की 'भारतीय चित्रकला' और 'भारतीय मूर्तिकला' हिन्दी-साहित्य में नवीन और महत्त्वपूर्ण पुस्तके है। इनके अतिरिक्त डॉ० गौरीशकर हीराचद ओझा की 'भारतीय सस्कृति' और मिश्रबन्धुओ का 'बुद्ध-पूर्व का भारत' इतिहास-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण पुस्तके है।

नवीन लेखको में श्री राहुल साकृत्यायन का 'बृहत्तर भारत', प्राणनाथ विद्यालकार का 'हडप्पा' तथा मोहनजोदडो', 'सिन्धु-सभ्यता' तथा भगवद्दत्त शास्त्री का 'भारतवर्ष का इतिहास' महत्त्वपूर्ण रचनाएँ है।

जीवन-चरित्र— आधुनिक जीवन-चरित्रो मे सत्यदेव विद्यालकार का 'श्रद्धानन्द', डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का 'चम्पारन मे गाधी', जगमोहन वर्मा का 'बुद्धदेव', सम्पूर्णानन्द का 'सम्राट् हर्षवर्धन', तामस्कर का 'शिवाजी की योग्यता', हरविलास शारदा का 'महाराणा साँगा' आदि उत्तम रचनाए है।

अर्थ-शास्त्र—अर्थ-शास्त्र-सम्बन्धी पुस्तको मे शिवनन्दनसिह का 'देश दर्शन' प्राणनाथ विद्यालकार का 'भारतीय सम्पत्ति-शास्त्र' हरिनारायण टडन की 'भारतीय वाणिज्य की डायरेक्टरी' तथा अमरनारायण अग्रवाल की 'ग्रामीण अर्थ शास्त्र और सहकारिता' महत्त्वपूर्ण पुस्तके है।

विज्ञान—वैज्ञानिक ग्रथ-लेखको मे डॉ० गोरखप्रसाद, डॉ० सत्य-

प्रकाश, देवदत्त अरोडा, गोपाल दामोदर तामस्कर, महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बाबू शालिग्राम भार्गव, डॉ० निहालकरण सेठी, जयदेव शर्मा विद्यालकार, गंगाप्रसाद, कविराज प्रतापसिंह, भगवतीप्रसाद, श्रीवास्तव तथा कृष्णगोपाल माथुर के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकें लिखकर इस क्षेत्र में प्रशसनीय कार्य किया है।

पत्र-पत्रिकाएँ

मासिक—द्विवेदीकालीन पत्र-पत्रिकाओ का उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। उस काल की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाएँ 'सरस्वती', 'इन्दु' और 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका थी। इन पत्रिकाओ मे गवेषणा-त्मक निवन्धो के अतिरिक्त खोज-विषयक निवन्ध एव प्राचीन ग्रथो का सम्पादन वडी योग्यता के साथ होता था। इस क्षेत्र की वृद्धि होने पर 'आर्य महिला', 'चाँद', 'सुधा' 'माधुरी', 'विशाल भारत', 'विश्व-मित्र', 'हस', 'नोक-झोक', 'गीता-धर्म', धर्मदूत', 'सुधानिधि', 'सहेली', 'हिन्दुस्तानी', 'साहित्य-सदेश' विज्ञान आदि अनेक उत्तमोत्तम पत्र-पत्रिकाएँ निकलने लगी इसके विविध-विषयक निबधो और कवि-ताओ आदि से पाठको की ज्ञान-वृद्धि होने लगी। गीता प्रेस गोरखपुर से 'कल्याण' नामक मासिक पत्र वडी योग्यतापूर्वक धार्मिक विषयो का प्रतिपादन करता है। प्रति वर्ष इसका एक उत्तम विशेषाक भी निकलता है।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही है, जो अपने समाज एव पार्टी के हित-साधन मे सलग्न है। इधर काशी से 'युगधर्म', 'नारी' और 'आँधी' नामक पत्रिकाएँ निकली थी। जिनमे उच्चकोटि का साहित्य था।

साप्ताहिक—'आकाशवाणी', 'भविष्य', 'पाटलीपुत्र', 'श्रीकृष्ण-सदेश,' 'हिन्द केसरी', 'हिन्दू पच', 'सैनिक', 'स्वदेश', 'तरुण राजस्थान', 'देश' आदि साप्ताहिक पत्र वडे उत्साह पूर्वक निकले। प्रयाग से 'भारत'

नाम का साप्ताहिक पत्र और निकला, जिसका दैनिक सस्करण भी अब निकलने लगा है।

आजकल निकलने वाले कुछ प्रमुख साप्ताहिक पत्र ये है—'कर्म-भूमि', 'पाचजन्य', 'कर्मवीर', 'ग्राम-संसार', 'ग्राम-सुधार', 'जागृति', 'दरबार', 'नया राजस्थान', 'नवजीवन', 'अशोक', 'आर्य मार्तण्ड', 'प्रकाश', 'आर्यमित्र', 'आदर्श', 'नवीन भारत', 'मजदूर-जगत्', 'आवाज', 'युगवाणी', 'युगान्तर', 'राष्ट्रवाणी', 'लोकमत', 'समय', 'ससार', 'आज', 'सन्मार्ग', 'सगम', 'स्वराज्य', 'हरिजन-सेवक', 'वीर अर्जुन', 'धर्मयुग', 'विजय', 'शुभचिंतक', 'प्रजा', 'आग', 'हुंकार' आदि।

दैनिक—दिल्ली से 'हिन्दुस्तान', 'नवभारत टाइम्स', 'विश्वमित्र', 'जनसत्ता', 'वीर अर्जुन', निकलते हैं। 'नेताजी' 'अमर भारत', और हिन्दीमिलाप' भी कुछ दिन निकलकर बन्द हो गए। काशी से 'आज', 'संसार' और 'सन्मार्ग' तीन दैनिक निकलते है। इनके अतिरिक्त 'वर्तमान', 'अधिकार', 'आर्यावर्त', 'जयभारत', 'स्वतन्त्र भारत', 'स्वदेश', 'प्रताप', 'भारतमित्र', 'लोकमत' आदि अच्छे पत्र निकलते है। कुछ दैनिक पत्रो के साप्ताहिक सस्करण भी निकलते है, जिनमे उच्च कोटि के निबन्ध, लेख और कहानियाँ आदि होती है। दिल्ली से पब्लिकेशन्स डिवीजन से 'आजकल', 'विश्व-दर्शन' और 'बाल-भारती' तीन मासिक पत्र निकलते है। वर्ष मे इन सबका एक-एक विशेषाक भी निकलता है।

कुछ बालोपयोगी पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलती है, जिनमे बच्चो के मनोरंजन के साहित्य के अतिरिक्त बहुत-सी उपयोगी बाते होती है। इनमे 'हमारे बालक'' 'होनहार', 'बालक', 'बालसखा', 'शेर बच्चा', 'दीदी', 'शिशु', 'सहेली', 'खिलौना,' 'बाल-भारती', 'चन्दा मामा', तथा 'मनमोहन' आदि उल्लेनीय है।

पञ्चम उत्थान : प्रेमचन्द-काल

साहित्य की रूपरेखा समय और परिस्थितियो के साथ-साथ सदैव

बदलती आई है। जो साहित्य अपने समय के सामाजिक, राजनैतिक एव आर्थिक परिस्थितियो के साथ सामजस्य स्थापित करके चलता है, वही साहित्य वास्तविक और स्थायी साहित्य होता है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास पर एक दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य मे समय और काल की परिस्थितियो के अनुसार परिवर्तन होता आया है। वीर-प्रशस्ति युग का साहित्य भक्ति-युग में न रहा, और भक्तियुगीन साहित्य शृङ्गार युग मे दूसरा ही रूप धारण कर गया और शृङ्गारयुगीन रीति-साहित्य आधुनिककालीन साहित्य मे परिवर्तित हो गया। यह सब-कुछ क्या है, साहित्य की प्रगतिशीलता ही तो है। आधुनिक साहित्य की प्रेमचन्द-काल हमारी वर्तमान परिस्थितियो की उपज ही समझनी चाहिए।

एक बात और—किसी देश के साहित्य पर देश की परिस्थितियो के अतिरिक्त विदेशी साहित्य का भी प्रभाव पडता है। हमारे देश के साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का वहुत-कुछ प्रभाव पडा है। वास्तव में साहित्य कोई एकदेशीय नही है, वह तो सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। देश-काल की सीमाएँ उसे बाँध नही सकती। हमारा आज का प्रेमचन्द-काल-मार्क्सवाद की साहित्यिक धारा से प्रभावित हुआ है। रूस मे जारकालीन शोषण और दमन की नीतियो ने मार्क्सवादी विचारो को जन्म दिया। मार्क्सवाद के प्रचारको ने बोल्शेविक क्राति के पूर्व ही मार्क्सवादी विचार-धारा के प्रचार-कार्य के लिए प्रगतिवादी साहित्य का निर्माण कर लिया। सन् १९१९ मे जारशाही शासन समाप्त हो जाने पर लेनिन की सरकार वनी और उसी के साथ मार्क्सवादी समाज-व्यवस्था और शासन-व्यवस्था की परिपुष्टि के लिए यथार्थवाद की स्थापना की गई। राष्ट्र की प्रगतिशील शक्तियो को जानने और उसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति करने के लिए ही यह स्थापना की गई थी। इस प्रकार साम्यवादी विचार-धारा साहित्य मे एक नवीन दृष्टिकोण लेकर प्रवाहित हुई। तत्कालीन रूसी शासन-व्यवस्था में प्रतिष्ठित सत्ता के विरुद्ध

कोई भी साहित्यकार लेखनी उठाने का साहस नही कर सकता था। दूसरी ओर रूसी सरकार जो पंचवर्षीय योजना के अनुसार अपना कार्य कर रही थी, प्रगतिवादी साहित्यकारो को प्रोत्साहन देती थी। स्वमत-पोषक अपनी राजनैतिक सत्ता को पुष्ट और सशक्त बनाने के लिए प्रगतिवादी साहित्य का उपयोग करने लगे। प्रगतिवाद की मूल धारा का स्रोत रूस के क्रान्तिकालीन समाजवादी आदर्श मे आरम्भ हुआ और उसी मे चलकर आगे प्रगतिवाद का वर्तमान स्वरूप उद्भूत हुआ।

इधर प्रथम युद्ध की समाप्ति पर युद्ध से सत्रस्त तथा उनके परिणामो से दरिद्रीभूत यूरोप मे निराशा की घटा छा लगी। जिन सैनिको ने युद्ध में विजय पाने के लिए पानी की तरह अपना खून बहाया था, युद्ध की समाप्ति पर उन्हे क्या मिला ? मजदूर और किसान युद्ध के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करके भी क्या पा सके ? फलतः इस और लोगो का ध्यान आकृष्ट हुआ। बेचारे श्रमजीवियो की अवस्था और भी संकटमय होती गई। परिमाणत. यूरोप मे रूस की सफलता देखकर विवेकशील लोगो का ध्यान समाजवाद की ओर आकृष्ट हुआ।

रूस मे समाजवाद की सफलता का प्रभाव विशेषत. एशिया के परतत्र देशो पर अधिक पड़ा। कारण, परतन्त्र देशो मे साम्राज्यवादी शक्तियो का दमन और शोषण-चक्र पूर्ववत् चालू था। अत. भारत पर भी समाजवादी विचार-धारा का विशेष प्रभाव पडा। दूसरे यहाँ के कलाकार साहित्यिक क्षेत्र मे निरन्तर परिवर्तित होते हुए साहित्यक वादो से ऊब चुके थे। परिणाम यह हुआ कि उन कलाकारो के हृदय मे जन-सामान्य की भावना का स्पर्श करने वाले रूस के प्रचारात्मक साहित्यवाद ने अपना स्थान बनाना आरम्भ कर दिया। देश-काल की परिस्थिति और उसकी प्रवृत्ति से परिचित उत्साहशील नवीन साहित्यकारो का स्थान मार्क्सवादी काव्य-धारा की ओर गया और उन्होने अपनी रचनाओ में बहुसंख्यक श्रमिको और कृषको की, शोषित और दलितो की दुर्दशा का चित्रण करना आरम्भ किया। पूँजीवाद के द्वारा होने वाले शोषण

और प्रतिकार की ओर भी सकेत किया गया। इस प्रकार एक ऐसे प्रचारात्मक साहित्य का निर्माण हुआ, जो अस्थायी होते हुए भी मार्क्स-वादी विचार-धारा का पोषक होनें के साथ-साथ क्रान्ति के द्वारा समाज-वाद की स्थापना का उद्घोष करने लगा।

हिन्दी-साहित्य मे सन् १९३५ मे प्रगतिवादी धारा का प्रादुर्भाव हुआ। १९३६ में डॉक्टर मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के प्रयत्न से प्रगतिशीश लेखक सघ' की स्थापना हुई। इसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ में श्री प्रेमचन्द जी के सभापतित्व में हुआ। प्रेमचन्द जी ने प्रगतिवाद की स्थापना से ही पहले ही एक कलाकार की दृष्टि से साहित्य के इस रूप को विशुद्ध साहित्यिक रूप में देख लिया थो। उनके उपन्यास और कहानियो मे भारत की शोषित, दलित जनता का जो स्वाभाविक चित्रण हुआ है, किसान और मजदूर की दुर्दशा का जिस मनोयोग के साथ चित्र खीचा गया है, तथा स्वार्थी वर्गों, पूंजीपतियो और जमीदारो के अत्याचार का जो वर्णन किया गया है, वह 'प्रगतिवादी चेतना का स्वाभाविक और वास्तविक स्वरूप है। प्रगतिशील के लेखक संघ' प्रारम्भिक अधिवेशनो मे उन्होने उसके साम्प्रदायिक स्वरूप को नही समझा था। प्रेमचन्द जी का साहित्य वाद की रूढियो से मुक्त था। उनका दृष्टिकोण था काव्य जितना लोक-मगल-साधक होगा, उतना जन-सामान्य का उद्धारक होगा। सम्भवत इसी कारण आज के प्रगतिशील साहित्यकार प्रेमचन्द को प्रगतिवादी नही मानते। वास्तव मे वे साम्प्रदायिक प्रगतिवादी न थे, वरन् एक सच्चे प्रगतिवादी थे।

धीरे-धीरे हिन्दी में प्रगतिवाद का प्रचार बढने लगा। यहाँ तक कि छायावाद और रहस्यवाद के लब्ध-प्रतिष्ठित साहित्यकार भी प्रगतिवाद की ओर सहज ही मे आकर्षित हो गए। इसका एक कारण यह भी था कि छायावादी कविता से कवि और जनता दोनो ही ऊब गए थे। यह कविता न तो जन-सामान्य के हृदय का स्पर्श करती थी, और न ही इसमें उनके जीवन की अभिव्यक्ति होती थी। वास्तव मे, छायावादी

कविता एक वर्ग विशेष के मनोरंजन का साधन बन गई। इसलिए देश की तत्कालीन परिस्थिति और जनता की भावना के साथ-साथ, उपयोगिता-हीन छायावादी कविता से असन्तुष्ट साहित्यकारों को प्रगतिवाद का स्वरूप अत्यन्त मोहक प्रतीत हुआ। दूसरे शब्दो में हम कह सकते है, कि छायावाद और रहस्यवाद की प्रतिक्रिया ने प्रगतिवाद को जन्म दिया।

प्रगतिवादी धारा से प्रभावित होकर हिन्दी के प्राचीन रहस्यवादी और छायावादी कवि 'पन्त' और 'निराला' भी प्रगतिवाद की ओर अग्रसर हुए। १९३८ मे पन्त जी ने नरेन्द्र शर्मा के साथ मिलकर 'रूपाभ' नामक मासिक पत्र निकाला, जो कालाकाँकर से निकला था। इसमें प्रगतिवादी साहित्य का प्रकाशन जोरो से हुआ। 'हस' मे शिवदानसिंह चौहान के लेख प्रगतिवादी काव्यालोचना पर निकलते रहे। इस प्रकार हम देखते है कि सबसे पहले 'पन्त' जी ने प्रगतिवादी साहित्यकारो के साथ सहयोग किया।

पन्तजी अब तक प्रमुख छायावादी कवि माने जाते थे, किन्तु निम्न वर्ग की जनता का शोषरण और मर्दन देखकर उनका कवि-हृदय द्रवित हो उठा। प्रकृति और मानव-भावनाओ के गान उन्हे निरर्थक जान पड़े। पीड़ित जनता की पुकार ने पन्तजी को मार्क्सवादी विचार-धारा का आश्रय लेकर क्रान्ति द्वार नव समाज की स्थापना के गीत गाने की ओर प्रेरित किया। 'युगवाणी' 'ग्राम्या' और 'युगान्त' में जहाँ उन्होने क्रान्ति जन-शोषरण की आवश्यकता पर कविताएँ लिखी है, वहाँ जनता के शोषरण और श्रमिको के जीवन के वास्तविक चित्र खीचे है। पन्त जी की भाँति निराला, बच्चन, उदयशकर भट्ट आदि कवि भी अब प्रगतिवाद की ओर झुकते जा रहे हैं। भाव-धारा का सूत्रपात उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचन्द की अध्यक्षता मे हुआ था और इस काल के अधिकाश साहित्यकारो ने उनको साहित्य से पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की थी। अत: हम इसे प्रेमचन्द-काल रहेगे। क्योकि इस काल

की अब हम प्रगति वादि-धारा के प्रमुख कवियो का सक्षेप में उल्लेख करेंगे।

प्रमुख कवि

रामधारीसिंह दिनकर—'दिनकर जी' बिहार के प्रमुख कवि है। आप पर राष्ट्रीयता की पूरी छाप है। धनियो और पूंजीपतियो की शोषण-नीति से आपका करुणार्द्र हृदय व्यथित हो जाता है। आपकी कल्पना भी कभी-कभी शिव का-सा प्रलयकारी रूप धारण कर लेती है। आपकी ओजस्वी रचनाएँ युवको के दिलो मे उमग और उत्साह का सचार कर देती है। 'रेणुका,' 'हुकार', 'रसवंती', 'कुरुक्षेत्र', 'सामधेनी'- और 'रश्मिरथी' 'इतिहास के आँसू', 'धूप और धुआँ' आपके कविता-सग्रह है। इसकी कविता का उदाहरण देखिए

गरजकर बता सबको, मारे किसी के
मरेगा नहीं हिन्द देश !
लहू की नदी तैरकर आ गया है,
कहीं-से-कहीं हिन्द देश !
लड़ाई के मैदान में चल रहे
लेके हम उसका उड़ता निशान !
खड़ा हो जवानी का झण्डा उड़ा
ओ मेरे देश के नौजवान !

नरेन्द्र शर्मा—आज के तरुण कवियो में आपका प्रमुख स्थान है। आपकी प्रारम्भिक कविताओ मे शृङ्गार और प्रेम के दर्शन होते है। जिनके सग्रह 'शूल-फूल' और 'कर्णफूल' नाम से प्रकाशित हो चुके है। कई रचनाएँ 'प्रवासी के गीत', 'प्रभात फेरी', 'हसमाला', 'अग्निशस्य' और 'रक्तचन्दन' में सग्रहीत है। आपकी कविता सामाजिक रूढियो और बन्धनो को तोड़ती हुई चलती है। कविता का उदाहरण देखिए .

आओ सब मेहनतकश साथ—
लिए हथौड़ा और दरांती !
जो मेहनत से पैदा करते
मालिक हैं दुनियाँ-भर के !
खोलो लाल निशान !
हो सब लाल जहान !

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'—प्रगतिवादी कवियो मे 'अचल' प्रमुख स्थान रखते है। 'मधूलिका', 'अपराजिता', 'किरण वेला', 'लाल चूनर' और 'करील' आपके चार काव्य-सग्रह हैं। प्रारम्भ मे आपने प्रेम और तृष्णा-सम्बन्धी गीत गाए, किन्तु बाद मे वे तृष्णा-सम्बन्धी अतृप्ति के गान असन्तोष और विद्रोह की भावना मे परिणत हो गए। आपने अपनी कविताओ मे पीडित मानवता के बडे करुणाजनक चित्र खीचे है :

और कई बच्चों की माँ आ रही उधर से अन्न बटोरे।
आँचल में कुछ लिये चबाती, कुछ बिखरे धोती के डोरे॥
वह देखती पेड़ तले यह खड़ी मानवी कृश तन जर्जर।
देती बाँध फटे दामन में, थोड़े से दाने अकुलाकर॥
किन्तु खड़ी रहती वह जड़ पत्थर निज निर्मोही की प्यासी।
घर के बिकते तो बीतेंगे पेड़ तले फिर रातें त्रासी॥

अज्ञेय—आपका पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' है। 'अज्ञेय' जी का जीवन जग की वेदना से विकल, सतप्त और अभिशप्त है। वह इस पीडा का प्रतिकार चाहते है और सतत इस चिन्ता मे लीन है। उनकी कला आज के सघर्ष में एक चमकता अस्त्र है। कविता का उदाहरण नीचे दिया जाता है :

जाने किस दूर वन-प्रान्तर से उठकर,
आया एक धूलि-कण।

ग्रीष्म ने तपाया उसे, शीत ने सताया उसे,
भव ने उपेक्षा के सागर में डुबाया उसे।
पर उसमे थी ऐसी एक धीरता-
जीवन-समर में भी कुछ ऐसी वीरता,
जग सारा हार गया,
डाल हथियार गया।

शिवमंगलसिंह 'सुमन'—'सुमन' जी की कविताएँ सरस और मधुर होती है। आपकी कविताओ मे वह उच्छृङ्खलता नही है, जो प्राय. अन्य प्रगतिवादी कवियो की रचनाओ मे होती है। आपके सुकोमल हृदय से कठोर-से-कठोर विषय भी सरस बनकर निकलता है। आपकी कविताओ के सग्रह 'हिल्लोल', 'जीवन के गान' और प्रलय-सृजन' है। आपने अपनी विख्यात 'जल रहे है दीप, जलती है जवानी' शीर्षक कविता मे अपने निम्न महत्त्वपूर्ण उद्गार प्रकट किये है .

आज तुम दुहरा रहे हो प्रथा केवल
आज घर-घर में नहीं है स्नेह-सम्बल
आज उर-उर में नहीं है ज्योति का बल
आज सूखी वर्तिका का सुलगता गुल
दीप बुझते जा रहे हैं विवश ढुल-ढुल
शेष खण्डहर में विगत युग की निशानी।
सुन रहे हो स्वप्न में जैसे कहानी
बन गई हो जिस तरह अपनी विरानी,
किन्तु जन-जागृति धधकती जा रही है
जल उठेगी फिर नई वाती पुरानी
जल रहे हैं दीप, जलती है जवानी।

केदारनाथ अग्रवाल—आपका प्रगतिवादी कवियो मे प्रमुख स्थान है। आपकी कविताएँ व्यग्यात्मक होती है। सीधी-सादी कविता मे आप अपने विपक्षी पर ऐसा तीखा व्यग कसते है कि देखते ही बनता है।

आपकी अधिकतर कविताएँ मुक्त छन्द मे है, जो भाव के झकोरे मे अपने-आप बनता-बिगडता चला जाता है ।

वर्तमान शासन की विषमताओ पर कटु व्यंग्य करते हुए आपने अपनी 'देश की छाती दरकते देखता हूँ' नामक क्रान्तिकारी कविता में बड़े मार्मिक उद्गार प्रकट किये है :

> व्यास मुनि को धूप में रिक्शा चलाते,
> भीम, अर्जुन को गधे का बोझ ढोते देखता हूँ ।
> सत्य के हरिचन्द को अन्याय-घर में,
> झूठ की देते गवाही देखता हूँ !
> द्रोपदी को और शैब्या को, शची को,
> रूप की दूकान खोले,
> लाज को दो-दो टके में बेचते मै देखता हूँ !!
> मै बहुत उत्तप्त होकर,
> भीम के बल और अर्जुन की प्रतिज्ञा से ललककर,
> क्रांतिकारी शक्ति का तूफान बनकर,
> शूरवीरों की शहादत का हथौड़ा हाथ लेकर,
> कड़कड़ाकर चोट करता दौड़ता हूँ;
> शृङ्खलाएँ मै विदारक शक्तियों की तोड़ता हूँ,
> जिन्दगी को मुक्त करता हूँ नरक से !
> देश मे उत्साह बढ़ते देखता हूँ !!
> देश की छाती दरकते देखता हूँ !!!

श्री गोपालसिंह नेपाली—नेपाली ने हिन्दी मे एक भावुक, सहृदय, रसिक कवि के रूप में पदार्पण किया । प्राकृतिक दृश्यो का बहुत ही सजीव चित्रण करके आपने अच्छी ख्याति अर्जित की है । प्रकृति के सुन्दर दृश्यो पर अपने मनोभावो का आरोप करके उनका वर्णन करने की चातुरी देखकर आपकी सहृदयता का परिचय मिलता है । बाद में आपने अपनी शैली और भाव-वस्तु दोनो मे परिवर्तन कर दिया और

आज के जीवन की रंगीनियों का मस्ती-भरे उद्‌गारों की पूर्णता के साथ वर्णन करते हैं। आपकी कविताओ के कई सग्रह 'नवीन', 'रागिनी', 'पछी' नाम से प्रकाशित हुए हैं। आपने प्रियतम की 'मुस्कान और ध्यान' का विश्लेषण अपनी 'सुन्दर का ध्यान कही सुन्दर' शीर्षक कृति मे इस प्रकार किया है :

सौ-सौ अँधियारी रातों से,
तेरी मुस्कान कहीं 'सुन्दर
मुख से मुख-छवि पर लज्जा का,
झीना परिधान कहीं सुन्दर
× × ×
सुन्दर है फूल, विहग, तितली,
सुन्दर है मेघ, प्रकृति सुन्दर
पर जो आँखों में बसा,
उसी सुन्दर का ध्यान कहीं सुन्दर
तेरी मुस्कान कहीं सुन्दर

श्री गिरिजाकुमार माथुर—हिन्दी-कविता मे अभिव्यक्ति की नूतनता के लिए आपका नाम धीरे-धीरे हिन्दी के सजग पाठको तक पहुँच रहा है। अतुकान्त छन्द में रोमाटिक भावनाओ को चित्रित करने मे आपको अच्छी सफलता मिली है। आपने अपनी कविता मे कुछ शैली-गत नवीन प्रयोग भी किये है। आपकी कविताओ के सग्रह 'मजीर' तथा 'नाश और निर्माण' नाम से प्रकाशित हो चुके है। अपनी 'आग और फूल' शीर्षक कविता मे सासारिकता की व्याख्या आपने इस प्रकार की है :

ज्वालामुखी के दीप-सा
सघर्ष का यह लोक है,
हिलती हुई धरती यहाँ
हिलते हुए आधार है,

कमजोर मिट्टी की जड़ें
जमकर न जम पातीं कभी,
उठते बगूले ज्वारभाटों के सदा,
हर लहर पर आते नये भूचाल हैं,
उजड़ा पड़ा यह द्वीप बिकनी की तरह
फिर-फिर सदा
संघर्ष का अणु-बम यहाँ जाँचा गया।
यह व्यक्ति और समाज का
उत्तप्त मन्थन-काल है,
संक्रान्ति की घड़ियाँ बनी हैं शृङ्खला
बन्दी हुई है देह
मन को बाँधने बढ़ते पतन के हाथ हैं,
है फेन विष का फैलता ही जा रहा,
अब डूबता अन्तिम ग्रहण की छाँह में
आलोक-हत नक्षत्र मिट्टी से बना
जिसका कि पृथ्वी नाम है।

श्री रांगेय राघव—आप हिन्दी के उन कुशल कलाकारों में है जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी न होने पर भी हिन्दी को उन्होंने सर्वांश में अपनाकर पूर्णाधिकार प्राप्त करके डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की है। आपका 'मेधावी' नामक महाकाव्य हिन्दी-साहित्य का समादृत काव्य है, जो कवि की सूझ-बूझ के साथ उसकी अभिव्यजना की प्रौढता का अच्छा परिचय देता है। श्री रांगेय जी की छोटी-छोटी कविताओं में व्यंग्य का पुट अच्छा रहता है।

आधुनिक पूँजीवादी वर्ग को चुनौती देते हुए उन्होंने अपनी 'वर्ग विश्वासी से' शीर्षक कविता में इस प्रकार के भाव प्रकट किये है :

अब नहीं होगा समन्वय
आज है अभिमान बोला जिन्दगी का,

क्रांति, बातों का नहीं है खेल केवल
जो कि अपने-आप होगी सूर्य उगते
रक्त का वरदान है इन धमनियों को,
तुम्हारे अन्याय को जो न्याय कहकर सहन कर ले
है वही रक्षक तुम्हारी संस्कृति का—
व्यक्ति के ही स्वार्थ की गाथा पुरानी
वंश का इतिहास-सा केवल तुम्हारा,
अहह, मन रे दासियाँ है प्रेम करतीं
और दास स्वतन्त्र अपने को समझने लग गए है
समझ लूं मै भी कि पागल हो गया हूँ विश्व मे तो ठीक ही हूँ
घृणा और असाम्य की इस सभ्यता के भयद प्रहरी
भूख से अपमान से है चाहते मेरी कला का दें गला ही घोंट

श्री हंसकुमार तिवारी—विहार के तरुण कवियो में कोमल कान्त पदावली का सुन्दर रूप प्रस्तुत करने वाले कवियो मे तिवारी का अच्छा स्थान है। यौवन की उद्दाम भावनाओ का चित्रण आपने वडी सजीव शैली से अपनी कविता मे किया है। प्रेम और वियोग का वर्णन करने मे आपको अच्छी सफलता मिली है। प्रेम को व्यापक रूप देकर आपने कुछ कविताएँ स्वदेश-प्रेम-सम्वन्धी भी लिखी है। तिवारी जी की आधुनिक कृतियो में विचार और चिन्तन का योग अधिक होता जा रहा है। 'रिम-झिम', 'अनागत' और 'पुनरावृत्ति' आदि आपकी कविताओ के सग्रह है। उनकी मार्मिक गीत-शैली का परिचय पाठको को निम्न पक्तियो से भली-भाँति मिल जायगा। 'स्मरण' नामक एक कविता मे वे लिखते है .

तेरी वड़ी याद आती है!
राधा के प्रिय मनमोहन-सा
हँसता शशि का सम्मोहन आ
शेफाली-सा चू-चू पडता
सपनो का वैभव लोचन का

विकल कुमुद-नयनों में रजनी शबनम के मोती रख देती।
तेरे मुख-मयंक की छूटी मृदु फुलझड़ी याद आती है!

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री—हिन्दी के गायक कवियो में आपका अच्छा स्थान है। संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान और अभ्यास होने के कारण आपकी हिन्दी-कविताओ पर उसकी छाप स्पष्ट दीख पड़ती है। संस्कृत के तत्सम शब्दो का बाहुल्य होने पर भी आपकी रचना भारा-क्रांत या कृत्रिम नहीं होती। सुन्दर सरस शैली से कान्त पदों का चयन करके ही आप अपने गीतो में रखते है, अत. न तो उनकी स्वाभाविकता नष्ट होती है और रस-स्निग्धता मे ही कोई व्याघात पड़ता है। आपकी कविता के विषय बहुत व्यापक है। उनमे प्रकृति-सुन्दरी का भी वर्णन है और जन-जागरण की मूल भावना क्रान्ति की भी पुकार है। कवित्व और रस का प्रवाह आपकी कृतियो का जीवन है। अपनी 'शिप्रा' नामक काव्य-कृति मे 'चाँदनी' शीर्षक के अन्तर्गत उन्होने चाँदनी के प्रति निम्न भाव व्यक्त किये है:

पूछता हूँ, कौन हो तुम, कौन हो तुम?
ओ निठुर, बेदर्द, क्यों यों मौन हो तुम?
मौन की ऊमस कलेजे को मसलती,
मसकते है प्राण, साँसें है कसकतीं,
आज अपने में रहा जाता नहीं है,
आज सपने में बहा जाता नहीं है,
चाहता जो, वह कहा जाता नहीं है,
यह विरह अब तो सहा जाता नहीं है!

× × ×

तुम करो उपहास मेरी बेबसी का
चाँदनी जो रूप वैसी ही हँसी का!

श्री भवानीप्रसाद मिश्र—आप मध्य प्रान्त (जबलपुर) के प्रगति-

शील कवियो में प्रमुख स्थान रखते है। सामाजिक वैषम्य तथा युग-चेतना से सम्बन्धित कविताएँ लिखकर आपने अच्छी ख्याति अर्जित की है। अपनी 'गीत फरोश' नामक कविता मे वे लिखते है :

जी माल देखिये दाम वताऊँगा,
वेकाम नहीं है, काम वताऊँगा;
कुछ गीत लिखे है मस्ती में मैंने,
कुछ गीत लिखे है पस्ती में मैंने;
यह गीत, सख्त सरदर्द भुलाएगा,
यह गीत पिया को पास वुलाएगा।
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
पर पीछे-पीछे अक्ल जगी मुझको;
जी लोगों ने ता वेच दिया ईमान,
जी आप न हो सुनकर ज्यादा हैरान।
मै सोच-समझकर आखिर
अपने गीत वेचता हूँ;
जी हाँ हुजूर मै गीत वेचता हूँ।

श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'—श्री 'कमलेश' अपनी प्राजल शैली एव स्वस्थ कल्पना के लिए चिर-विख्यात है। राष्ट्रीय जागरण की प्रमुख समस्या 'हिन्दू-मुस्लिम-एकता' को लक्ष्य करके लिखी गई अपनी एक रचना में आपने धार्मिक कठमुल्लो के मर्म पर करारी चाट की है। आपके 'तू युवक है', 'दूव के आँसू' तथा 'धरती पर उतरो' नामक तीव काव्य-सग्रह प्रकाशित हो चुके है। रचना का उदाहरण देखिये :

व्यापारी है एक, कि जिसने हम दोनो को लूटा,
एक गुलामी, जिसके कारण भाग्य हमारा फूटा।
एक जहालत है, जिससे हम दोनो को है लड़ना,
एक गरीवी, जिसे मिटाकर हमको आगे वढ़ना।

मजहब का है भूत एक, बस जिसको मार भगाना,
आपस की है ज्योति एक, बस जिसको आज जगाना।
आजादी है एक, कि जिस पर लगी हमारी आँखे,
साध एक है, मुक्त देश में खुलें हमारी पाँखें।
हमें लड़ाने वालो सुन लो, ध्येय हमारा एक,
भाई-भाई नहीं लड़ेगे, यही हमारी टेक।

धर्मवीर भारती—भारती जी प्रयोगवादी कविता के प्रतिनिधि कवियो मे अपना अन्यतम स्थान रखते है। वैसे वे बहुमुखी प्रतिभा का वरदान लेकर हिन्दी-साहित्य के विस्तीर्ण क्षेत्र मे उतरे है। कहानी, कविता, उपन्यास और आलोचना आदि सभी क्षेत्रो मे उन्होंने अपनी प्रतिभा के ज्वलन्त कण बिखेरे है। उनकी कल्पना-शक्ति यथार्थ की पृष्ठभूमि का आश्रय लेकर नई ही उड़ान भरती है। अपनी 'ठडा लोहा' नामक पुस्तक मे वे लिखते है .

ओ मेरी आत्मा की सङ्गिनी !
अगर जिन्दगी की कारा में
कभी छटपटाकर मुझको आवाज लगाओ
और न कोई उत्तर पाओ
यही समझना कोई इसको धीरे-धीरे निगल चुका है,
इस बस्ती में कोई दीप जलाने वाला नहीं बचा है,
सूरज और सितारे ठण्डे
राहें सूनी
विवश हवाएँ
शीश झुकाएँ
खड़ी मौन है
बचा कौन है ?
ठण्डा लोहा ! ठण्डा लोहा ! ठण्डा लोहा !

मध्य प्रान्त के कवियो मे सर्व श्री नर्मदाप्रसाद खरे, इन्द्रबहादुर खरे

और राजेश्वर गुरु की रचनाएँ लोकप्रिय समझी जाती हैं। इनके अतिरिक्त प्रगतिवादी और प्रयोगवादी नाम से भी अनेक कविगण इधर हिन्दी में पैदा हो गए हैं। कुछ नये कवियो में कला का पक्ष क्षीण होने पर भी भाव-सामग्री का अच्छा रूप दृष्टिगत होता है। कुछ कवियो मे कला-पक्ष का अच्छा विकास हुआ है। प्रगतिवादी विचार-धारा के कवियो में सर्वश्री नागार्जुन, नरेशकुमार महता, त्रिलोचन, भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। सुन्दर गीत लिखने वाले नई पीढी के कवियो में श्री वलवीरसिंह 'रंग', नीरज, शम्भुनाथ 'शेष', मुकुल, चिरजीत, देवराज 'दिनेश', शम्भूनाथसिंह आदि की अच्छी ख्याति है।

उपन्यास

प्रेमचन्द के वाद हिन्दी-कथा-साहित्य मे मौलिकता की दृष्टि से कई नये प्रयोग हुए हैं। प्रेमचन्द की आदर्शोन्मुख यथार्थ शैली तक ही सीमित न रहकर इस युग के कलाकारो ने यथार्थ चित्रण की अच्छी क्षमता प्रदर्शित की है और कथा-साहित्य को समस्यात्मक तथा समीक्षात्मक वनाने के साथ विचारोत्तेजक भी वनाया है। प्रेमचन्द का अन्तिम उपन्यास 'गोदान' हिन्दी-साहित्य मे एक ऐसा अमिट प्रभाव छोड गया है कि वाद के उपन्यासो मे हम उतनी व्यापकता नही देखते, किन्तु मनोविश्लेषण और जीवन-संघर्ष का वर्णन करने वाले उपन्यासो की हिन्दी मे कमी नही। भाषा-शैली और अभिव्यजना के नूतन प्रयोगो की दृष्टि से प्रेमचन्द के वाद का कथा-साहित्य अधिक पुष्ट और समर्थ है। इस युग के उपन्यासकारो में भले ही प्रेमचन्द-जैसी व्यापक सहानुभूति न हो किन्तु कलात्मकता की दृष्टि से उनके उपन्यास आगे वढे हुए हैं। आज के उपन्यासो में मुख्य रूप से यौन-समस्या तथा अर्थ-समस्या को ही स्थान दिया जा रहा है। एक ओर जहाँ तरुण उपन्यासकार प्रेम के रगीन और तरल चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं वहाँ दूसरी ओर कुछ प्रगतिशील लेखक

आर्थिक वैषम्य तथा सामाजिक स्थिति पर व्यंग्यात्मक शैली से प्रकाश डाल रहे है। राजनीतिक दलबन्दी को चित्रित करने और साम्यवादी विचार-धारा के पोषक उपन्यास भी इस युग मे लिखे गए है। यौन-स्वातंत्र्य के नाम पर उच्छृङ्खल प्रेम तथा हल्के रोमांस का चित्रण भी कुछ लेखकों ने किया है। कुछ उपन्यासो मे तो उच्छृङ्खल प्रेम या व्यभिचार को नग्न रूप मे लिखकर लेखकों ने अपनी यथार्थवादी शैली का चरम विकास दिखाना चाहा है जो स्वस्थ साहित्य की कोटि मे नही रखा जा सकता। यथार्थ चित्रण की आत्मा अश्लील या वीभत्स चित्रण ही नही है। स्वस्थ वर्णन के साथ यथार्थ का रूप रखना ही साहित्यकार की सफलता का द्योतक होना चाहिए। फिर भी, इसमे सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द के परवर्ती उपन्यासकारो में कई उत्तम कोटि के प्रौढ़ उपन्यास-लेखक है और उनकी कलम इतनी मँजी हुई और बारीक है कि जीवन के बाह्याभ्यन्तर का सजीव वर्णन करने की क्षमता उनमें अपने पूर्ववर्ती लेखको से अधिक है।

इस युग के प्रौढ़ उपन्यास-लेखकों मे हम सर्व श्री भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, राधिकारमणप्रसादसिंह, अनूपलाल मंडल, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', उपेन्द्रनाथ अश्क, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, अंचल और उषादेवी मित्रा को ले सकते है।

श्री भगवतीचरण वर्मा—इनके प्रसिद्ध उपन्यासों मे 'पतन', 'तीन वर्ष,' 'चित्रलेखा', 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' और 'आखिरी दाँव' है। वर्माजी की 'चित्रलेखा' अपनी शैली का एक प्रतिनिधि उपन्यास है जो हिन्दी-साहित्य का गौरव है। 'चित्रलेखा' की कथावस्तु इतनी सुगठित और तात्विक है कि पाप-पुण्य की व्याख्या प्रस्तुत करने मे किसी पुराण-पन्थी पद्धति को न अपनाकर जीवन के सच्चे और सरल पथ का अनुगमन करती है। उसमें न तो ग्रन्थों का पथ-प्रदर्शन है और न किसी प्रकार का बाह्य दुराग्रह। जीवन की गति-विधि जिस सहज आभ्यन्तर प्रेरणा से सतत प्रवहमान रहती और ऋजु पथ का अनुसरण करता हुई पाप-पुण्य की

व्याख्या पाठक के समक्ष प्रस्तुत करती है वह सर्वथा श्लाघ्य एवं अभिनव है। 'टेढे मेढे रास्ते' मे भी जीवन की विभिन्न दिशाओ का मनोवैज्ञानिक शैली से वर्णन किया गया है। 'आखिरी दाँव' फिल्म जगत् की कथा-वस्तु के आधार पर नियोजित एक हल्के दर्जे का मनोरजक उपन्यास है। इसमें सन्देह नही कि वर्मा जी की प्रतिभा काव्य की अपेक्षा उपन्यास-क्षेत्र में अधिक सफलता से विकसित हुई है।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने कथा-साहित्य मे प्रसाद-काल में ही प्रवेश पा लिया था और तव से आज तक निरन्तर साहित्य-सृजन मे लीन है। आपके उपन्यासो मे 'दो वहनें', 'पतिता की साधना', 'पिपासा', 'निमंत्रण', 'गुप्त धन', 'चलते-चलते', 'पतवार' पर्याप्त प्रसिद्ध है। वाजपेयी जी जीवन को एक गहन कान्तार मानकर उसमे प्रवेश करते है, फलत उनके औपन्यासिक पात्रो मे सभी वर्गो और कोटियो के चरित्र दृष्टिगत होते है। एक ओर जहाँ आदर्श की साधना करने वाले पात्र प्रलोभनो पर विजय प्राप्त करते हुए दीख पडते है तो दूसरी ओर दुर्वृत्तियो के शिकार होकर उच्छृखल व्यवहार में लीन पतित और कामुक पात्रो का भी आप-के उपन्यासो में अभाव नही। वाजपेयी जी के उपन्यासो का मूल स्वर प्रेम-भाव है जो यथार्थ की ओर उन्मुख रहते हुए भी आदर्श से एकदम नीचे नही गिरता। 'चलते-चलते' आपका महत्त्वपूर्ण उपन्यास है जिससे समाज के विविध वर्गो का वहुत ही सुन्दर और समीचीन वर्णन हुआ है। घटनाओ के घटाटोप में पाठक को न उलझाकर आपने घटनाओ से उत्पन्न मन स्थितियो पर अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया है। जीवन की अज्ञात गति-विधि को समझने का प्रयत्न इस उपन्यास मे वहुत ही सफल है। वाजपेयी जी की भाषा-शैली मे प्रेमचन्द-जैसी स्वाभाविकता तो नही है किन्तु विश्लेपणात्मक अकन में आपकी अभिव्यजना पूर्ण समर्थ है।

राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह ने प्रगतिशील विचार-धारा को उत्तेजित करने वाले दो-तीन अच्छे उपन्यास लिखे है। 'गाँधी टोपी' और

'लाल तारा' में क्रान्तिकारी भावों का पोषण हुआ है।

श्री अनूपलाल मंडल बिहार के सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक हैं। सामाजिक समस्याओं के चित्रण मे आपको अच्छी सफलता मिली है। दाम्पत्य जीवन तथा प्रेम के चित्र भी आपने सुन्दर खींचे है।

श्री इलाचन्द्र जोशी मनोवैज्ञानिक विचार-परिपाटी के कारण हिन्दी-उपन्यास-साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। यौन भावनाओ का दमित रूप किस प्रकार विकृतियों की सृष्टि करके समाज के विकास का अवरोध करता है यह आपके प्रारम्भिक उपन्यास 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया' तथा 'संन्यासी' मे देखा जा सकता है। उद्दाम प्रेम-भावना को यदि उचित मार्ग से आगे नही बढने दिया जाता तो वह कहीं-न-कही से अपना मार्ग निकालकर बह चलती है और उसका स्वस्थ प्रभाव नही पडता, यही इन उपन्यासों में दिखाया गया है। उपन्यासो में गति और उत्कर्ष लाने के लिए यथार्थ चित्रण का प्रयोग इतना प्रचुर है कि उसमें कही-कही नग्नता का वीभत्स रूप भी लेखक बचा नही पाया है।......'मुक्तिपथ' भारत-विभाजन के बाद उत्पन्न हुई शरणार्थी-समस्या का चित्र प्रस्तुत करता है। अभी-अभी आपका 'सुबह के भूले' नामक नया उपन्यास और प्रकाशित हुआ है।

श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' हिन्दी के उन कलाकारों मे है जिनकी प्रतिभा अपना प्रभाव स्वीकार कराने की अद्भुत क्षमता रखती है। उपन्यास-क्षेत्र मे 'शेखर . एक जीवनी' लिखकर ही आपने अपना स्थान बना लिया था। 'शेखर' की कथावस्तु इतनी अधिक विकीर्ण और विशृङ्खल है कि पाठक का मन सहज ही उसमे कथा-मार्ग से लीन नही होता, फिर भी पाठक उसे छोड़ नही पाता। 'शेखर' अपने साथ कुछ ऐसे सस्कार लेकर आता है कि पाठक अपने मन की विवशता से या कलाकार की सजगता से पुस्तक को पढ़ने के लिए बाध्य हो जाता है। उलझनो के बीच मानव-संघर्ष और विरोध-अविरोध का ऐसा क्रिया-व्यापार उपन्यास मे फैला हुआ है कि कथा की नीरसता मे मन और

बुद्धि को उलझाए रखने की सामग्री उसमे है । अज्ञेय का दूसरा नया उपन्यास 'नदी के द्वीप' रागात्मक सम्बन्धो की नवीन दृष्टिकोण से व्याख्या प्रस्तुत करता है । इस उपन्यास के अन्तरतम मे बैठकर रसानुभूति के लिए एक विशेष कोटि की व्युत्पन्नता पाठक मे होनी अनिवार्य है । उपन्यास की सवेदनाएँ इतनी सूक्ष्म-सरल है कि साधारण कोटि का हिन्दी-पाठक शायद उसके मर्म को यथोचित रूप से ग्रहण करने मे समर्थ न होगा । अग्रेजी कविताओ के उद्धरणो से उपन्यास को भरकर लेखक ने उसकी सवेदना को विशिष्ट प्रकार का बना दिया है । केवल उद्धरण तक ही अग्रेजी का प्रभाव होता तो शायद इतनी बाधा हिन्दी-पाठफ को न होती, किन्तु विश्लेषण और विवेचन मे भी अग्रेजी-साहित्य का प्रभाव है, जो कोरे हिन्दी-ज्ञाता पाठको के मार्ग मे बाधक है । जिन्होने लॉरेंस आदि लेखको के उपन्यास पढे है वे ही इस कोटि की सवेदनाओ की सराहना कर सकते है और उन्हे ठीक-ठीक पकड सकते है । इस उपन्यास मे 'शेखर' के समान घनता, व्यापकता और तीव्रता नही है । फिर भी कहना न होगा कि वर्तमान युग के चिन्तनशील गभीर उपन्यास-लेखकों मे अज्ञेय का अपना विशिष्ट स्थान है और उपन्यास-क्षेत्र मे भाव और अभिव्यजना दोनो दृष्टियो से अज्ञेय ने नवीन सामग्री प्रदान की है ।

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—उर्दू के सिद्धहस्त कहानी-लेखक अश्क का हिन्दी मे पदार्पण अपने साथ अभिव्यजना की स्वच्छता और भावनाओ की ताजगी लेकर हुआ । अश्क की छोटी कहानियो मे मानव-मन के प्रेम और संघर्ष का अच्छा चित्रण हुआ है । 'सितारो के खेल' आपका पहला उपन्यास है, जिसमे कथावस्तु की रोचकता के साथ वर्णन-शैली की सरलता परिलक्षित होती है । 'गिरती दीवारें' और 'गर्म राख' आपके दो बडे उपन्यास है जिनमे आपने रूढि और परम्परा को चुनौती देकर सामाजिक सस्कारो के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । कथा की रोचकता और अभिव्यक्ति की स्वच्छता के लिए अश्क के उपन्यास सफल है । गभीर विश्लेषण और विचारोत्तेजक वस्तु का अभाव

खटकता है।

श्री यशपाल—क्रान्तिकारी भावनाओ से ओत-प्रोत साम्यवादी विचार-धारा के पोपक उपन्यास लिखकर यशपाल ने कथा-साहित्य मे विप्लव का सूत्रपात किया है। यशपाल की कथावस्तु चाहे कुछ हो, किन्तु उसमे अनुभूत या समाजगत (दृश्यमान तत्त्व) तत्त्वो का वर्णन होने से एक प्रकार का उबाल अवश्य रहता है। जीवन की गति रुद्ध करने वाले और परम्पराओ के ढूह पर खड़े जर्जर–सड़े-गले ख़यालात को धराशायी बनाने मे आपके उपन्यासो ने अच्छा योग दिया है। यशपाल को यदि साम्यवादी विचार-धारा के प्रति साक्षात् मोह न होता तो शायद उनके उपन्यासो का मूल्य और भी अधिक आँका जाता। फिर भी इतना तो स्वीकार करना ही पडेगा कि यशपाल अपनी शैली के सर्वश्रेष्ठ कथाकार है, और व्यग्य और दश के बावजूद भी उनके उपन्यासो का स्वर रूढि-विरोधी और प्रगतिपरक है। यशपाल के आधे दर्जन के लगभग उपन्यास है जिनमे 'दादा कामरेड' और 'देश द्रोही' पर्याप्त प्रसिद्ध है।

श्री राहुल सांकृत्यायन—राहुल ही सर्वतोमुखी प्रतिभा के व्यक्ति है। पुरातन साहित्य का अध्ययन-मनन करके आपने जो सम्पत्ति हिन्दी को भेट की है वह आपके अगाध पाडित्य की परिचायक है। उपन्यास-क्षेत्र मे भी राहुल जी की भेट नगण्य नही है। 'जय यौधेय', 'सिह सेनापति', 'सोने की ढाल' और 'जादू का मुल्क' आदि आपकी प्रमुख रचनाएँ है। प्राचीन और नवीन युग की रूपरेखा प्रस्तुत करने के साथ राहुल जी ने उपन्यास को अपनी विचार-धारा के प्रचार का साधन बनाया है।

श्री मन्मथनाथ गुप्त—प्रगतिवादी विचार-धारा के सफल उपन्यास-लेखको मे श्री गुप्त का स्थान दो दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। एक तो आपकी शैली मे स्वाभाविकता का पुट अपेक्षाकृत अधिक रहता है दूसरे आप यथार्थ की भूमि पर अपने चरित्रो की सृष्टि करने पर भी नग्न चित्रण या अश्लील वर्णन को बड़ी चातुरी से बचाते है। यौन

विषयो की मीमासा करने की आपकी अपनी विशिष्ट शैली है। आपने भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम मे क्रान्तिकारी सैनिक के रूप मे भाग लिया है और वर्षो कारावास का दड भी सहन किया अत आपकी अभिव्यक्ति में अनुभूति, चिन्तन और कल्पना आदि तत्वो का सन्तुलित सम्मिश्रण है। आपके 'वलि का वकरा',' दुश्चरित्र', अधेर नगरी', 'रक्षक भक्षक', 'होटल डी ताज' तथा 'चक्की' आदि कई उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। आजकल भी आप वड़ी तेजीसे लिखने मे व्यस्त है। प्रगतिवाद का विश्लेषण करने वाला आपका एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। आलोचना और निबध लिखने में आपको अच्छी सफलता मिली है।

हिन्दी की तरुण पीढी के उपन्यासकारो मे श्री रामेश्वर शुक्ल 'अचल', श्री सर्वदानन्द वर्मा, श्री धर्मवीर भारती, डॉ० देवराज, श्री विष्णु प्रभाकर, श्री रामचन्द्र तिवारी, श्री रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी के नाम प्रसिद्ध है। श्री अचल ने 'चढती धूप', 'उल्का', 'नई इमारत' और 'मरु प्रदीप' नाम के उपन्यास लिखे है । उपन्यासो में राजनीतिक और सामाजिक विषयो को पृष्ठभूमि मे रखा गया है । श्री सर्वदानन्द वर्मा के 'नरमेध', 'प्रश्न', 'अनिकेतन', 'निकट की दूरी', तथा 'अनागत' प्रसिद्ध है। इनमें यथार्थवादी दृष्टि कोण की प्रमुखता है। साभाजिक दृष्टि से सस्कारो और परस्पराओ को छोडने का आग्रह है। दो-एक उपन्यासो मे अभिव्यक्ति यथार्थ के आग्रह से इतना नग्न हो गई है कि पाठक को हिचक हो सकती है। प्रश्नो को प्रस्तुत करने की शैली मौलिक है और समाधान के अभाव मे लेखक के आक्रोश का विषय वनता है वर्तमान युग। वर्मा जी ने जिस दृष्टिकोण से जीवन को देखा या अङ्कित किया है यदि उसी रूप मे जग-जीवन घटित हो सकता तो शायद उनके उपन्यास की अनेक समस्याएँ इस रूप में न उठती। श्री धर्मवीर भारती के दो उपन्यास ही अभी तक प्रकाश मे आये है। 'गुनाहो का देवता' और 'सूरज का सातवाँ घोडा', सचमुच उनकी सफल कृति है। पात्रो के चरित्र-चित्रण के साथ दृश्यो के वर्णन की क्षमता देखकर लेखक की सराहना करनी पड़ती

है। डॉ० देवराज का 'पथ की खोज' दो भागों में प्रकाशित एक विशाल-काय उपन्यास है जिसमे दार्शनिक चिन्तन के साथ कथावस्तु को पल्लवित किया गया है। अभिव्यक्ति बहुत पुष्ट और प्राजल है। श्री विष्णु प्रभा-कर सफल कहानी-लेखक और एकांकी-लेखक हैं। आपका उपन्यास 'ढलती रात' सीधी-सादी भाषा-शैली का नमूना कहा जा सकता है। पहाड़ी भी कहानी-लेखक के रूप मे अधिक प्रसिद्ध हैं। 'सराय' नामक आपका उप-न्यास यथार्थवादी रोमास का वर्णन करने वाला रोचक उपन्यास है। श्री रामचन्द्र तिवारी का 'सागर, सरिता और अकाल' एक सफल उप-न्यास है जो पाठक की चित्त-वृत्ति को रमाने के साथ कुछ सोचने-विचारने की प्रेरणा देता है। इन लेखको के अतिरिक्त श्रीकृष्णदास, नागार्जुन श्री गगाप्रसाद मिश्र और रागेय राघव के उपन्यास बड़ी रुचि के साथ पढे जाते हैं। श्री यज्ञदत्त शर्मा ने भी चार-पॉच उपन्यास लिखे हैं। राजनीतिपरक उपन्यासो मे अपका 'इसान' अच्छा बन पड़ा है।

कहानी

प्रेमचन्द्र के बाद कहानी-साहित्य निरन्तर विकास और वृद्धि को प्राप्त होता गया और आज साहित्य के अन्य अगो की अपेक्षा कहानी ही सबसे अधिक समृद्ध अग कहा जा सकता है। आज के युग मे कहानी को एक ओर जहाँ सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावो और विचारो की अभिव्यक्ति का साधन बनाया गया है वहाँ दूसरी ओर प्रचार और प्रोपेगेण्डा के साथ मनोरजन का भी कहानी सर्वश्रेष्ठ और सर्व-सुलभ साधन समझा जाता है। आज के युग के कहानी-लेखकों मे श्री भगवतीचरण वर्मा व्यग्य की भावाभिव्यक्ति के लिए कथा लिखते है और उन्हे इनसे अच्छी सफलता मिलती है। यशपाल की कहानियाँ उनके उपन्यासो की भाँति ही प्रचारो-द्दिष्ट होने पर भी बडी चुटीली और यथार्थ होती है। विष्णु प्रभाकर मानवीय भावो की बड़े ऋजु ढंग से कथा मे पल्लवित करते है और पाठक की मनोभूमि मे इस गति से उतरते है कि यह पता नही चलता कि हम

कव कहाँ-से-कहाँ ले आए गए ! गृहस्थ और दाम्पत्य के चित्र प्रस्तुत करने मे आप दक्ष है। मध्य वर्ग का चित्र आप अच्छा अकित करते है। पहाडी की कहानियो मे रोमानी छीटे और मनोग्रन्थियो की छटा देखी जाती है। अज्ञेय की कहानियाँ जीवन के गहन स्तरो का भेद खोलती है और अपनी प्रभावपूर्णता से सरस कोटि मे आती है। अश्क की शैली स्वच्छ और स्पष्ट होने के कारण रोचक है। अश्क की कहानियो मे मादकता के साथ कलात्मकता है। विहार के कहानी-लेखको में श्री राधाकृष्ण तथा रामवृक्ष वेनीपुरी अपनी शैली की दृष्टि से प्रसिद्ध है। अनुभूतिपरक कहानी लिखने मे वेनीपुरी को अच्छी सफलता मिली है। वेनीपुरी की कहानियाँ छोटी किन्तु प्रभावोत्पादक होती है। ग्रामीण जीवन के चित्र अङ्कित करने मे वेनीपुरी सिद्धहस्त है।

प्रगतिशील लेखको मे कहानी-लेखको की सख्या वहुत बडी है। सर्व श्री रागेय राघव, अमृतलाल नागर, अमृतराय, अचल, तेजवहादुरसिह, हसराज रहवर, शमशेरवहादुरसिह, वरुआ, भैरवप्रसाद गुप्त, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण', देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', जयनाथ 'नलिन', महावीर अधिकारी, वीरेन्द्रकुमार जैन, रावी, राजेन्द्र यादव, स्व० योगेश्वर गुलेरी, रामचन्द्र तिवारी, श्रीराम शर्मा 'राम' आदि लेखको की कहानियो ने पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की है।

कुछ विद्वान् लेखको ने अपनी विचार-धारा को कहानी द्वारा अभिव्यक्ति दी है। श्री राहुल साकृत्यान की 'वोल्गा से गगा' इसी प्रकार का एक कहानी-सग्रह है। भारतीय सास्कृतिक चेतना का विकास और उसका रूस आदि देशो से प्रच्छन्न सम्वन्ध प्रदर्शित किया गया है। श्री भगवतशरण उपाध्याय की कहानियाँ भी भारतीय प्राचीन सस्कृति का आभास देने के उद्देश्य से लिखी गई है। 'सघर्प', 'सवेरा' आदि कई कथा-सग्रह आपके प्रकाशित हुए है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने विलकुल नई शैली से कुछ कहानियाँ लिखी है। महिला कहानी-लेखिकाओ मे श्रीमती शिवरानी प्रेमचद, सत्यवती मल्लिक, तेजरानी दीक्षित, कमला चौधरी,

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, सुशीला आगा, सुमित्राकुमारी सिनहा, स्व० होमवती, चन्द्रवती ऋषभसेन जैन की कहानियो का उल्लेख पहले हो चुका है। विपुला देवी, हीरादेवी चतुर्वेदी, कमला त्रिवेणीशंकर, कुँवरानी तारा जगदीश, रामेश्वरी शर्मा तथा रजनी पनिकर आदि के नाम भी परिगणनीय हैं।

पिछले दस वर्षो में भारत के राजनीतिक और सामाजिक जीवन की प्रगति विद्युत्-गति से हुई है। कहानीकारो ने देश की चेतना को पकड़कर सामाजिक सवेदनाओं को सुन्दरतम रूप से रखने का प्रयत्न किया है। देश की विभिन्न प्रगतियो का वर्णन जितना कहानी के माध्यम से हुआ है उतना कदाचित् किसी और साहित्यिक शैली द्वारा नही हुआ। बगाल का अकाल, सन् १९४२ का राष्ट्रीय आन्दोलन, बगाल और पजाब का साम्प्रदायिक सघर्ष और नर-मेध, भारत-विभाजन आदि विषय कहानी द्वारा प्रकट हुए।

वर्तमान युग मे हिन्दी-कहानी मनोविज्ञान की सुदृढ भूमि पर खड़ी होकर मानव-मन के दुर्गम स्तरो मे झाँकने मे समर्थ है। आज की कहानी कोरी 'गल्प' या 'गप्प' न रहकर जीवन की सूक्ष्म तरल अनुभूतियो और सवेदनाओ को वाणी देने की क्षमता रखती है। आज कहानी केवल मनोरजन या समय-यापन का ही साधन नही वरन् जीवन के गुह्य एवं व्यापक क्रिया-व्यापारो को आँकने और समझने का साधन है। साहित्य का 'कान्तासम्मिततया उपदेश युजे' वाला प्रयोजन आज जितना कहानी के माध्यम से पूरा हो रहा है शायद उतना किसी और माध्यम से नही। अतः कहानी का प्रचार और प्रसार अन्य साहित्याङ्गो की अपेक्षा अधिक होना स्वाभाविक है।

निबन्ध

विगत दस वर्षों में निबन्ध-साहित्य मे भी पर्याप्त विकास हुआ है। विविध विषयो के उच्चकोटि के प्रौढ़ निबन्धो ने हमारे साहित्य के भंडार

को भरा है। इन दस वर्षों मे आनुपतिक दृष्टि से आलोचनात्मक या पुस्तक-परिचयात्मक निबध अधिक लिखे गए है । प्रबंध-कोटि के विशद निबंधो की सख्या अब भी हिन्दी मे न्यून है । अपनी सीमा-मर्यादा में निबंध एक ऐसी व्यापक शैली है जो रूप-विधान तथा व्याख्या दोनो कम करके विषय को स्पष्ट करता है। गद्य को कवि-कर्म की कसौटी स्वीकार करने वाले आचार्यो ने निबन्ध की यथार्थ आत्मा को पहचानकर ही कदाचित् यह मत दिया था। साहित्यिक विषयो पर निबध लिखने वाले गंभीर लेखको की परम्परा द्विवेदी युग से ही प्रारम्भ हुई थी जिसमें आचार्य शुक्ल-जैसे मनस्वी लेखक हुए। उस परम्परा का निर्वाह करते हुए दूसरी खेप के लेखको का उल्लेख पिछले युग के 'निबध' शीर्षक प्रकरण मे हुआ है। प्रगतिशील विचार-धारा के निबध-लेखको मे सर्व श्री डॉ० राम-विलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, जगन्नाथप्रसाद मिश्र, प्रभाकर माचवे आदि का नाम उल्लेख-नीय है। इन लेखको के निबध पुस्तक रूप मे सकलित हो चुके हैं। डॉ० रामविलास शर्मा की 'प्रगति और परम्परा', 'सस्कृति और साहित्य', प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त की 'नया हिन्दी साहित्य', डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल की 'पृथ्वी पुत्र', जगन्नाथप्रसाद मिश्र की 'साहित्य की वर्तमान धारा', शिव-दानसिह चौहान का 'प्रगतिवाद' और प्रभाकर माचवे का 'खरगोश के सीग' अच्छे निवध-सग्रह है। इन निवध-संग्रहो के अतिरिक्त कुछ पत्र-पत्रिकाओ मे भी अच्छे निबध प्रायः प्रकाशित होते रहते है। 'आलोचना', 'साहित्य' तथा 'सम्मेलन-पत्रिका' आदि त्रैमासिक पत्रिकाओ मे भी उच्च-कोटि के साहित्यिक निबध छपते है।

निबध-साहित्य के क्षेत्र को व्यापक और विशद बनाने वाले लेखको में श्री राहुल साकृत्यायन का नाम उल्लेख्य है। मनुष्य के ज्ञान, विज्ञान तथा कर्म का कोई क्षेत्र ऐसा नही जो उनकी लेखनी का विषय नही बना। देश-विदेश की यात्रा पर भी उन्होने अच्छे मनोरजक और ज्ञानवर्द्धक निबध लिखे है। निबध-साहित्य मे नूतन प्रयोग करने मे भी राहुल जी

बड़े प्रवीण है । निबधो मे रोचकता बनाये रखने के लिए जिस तत्त्व की आवश्यकता होती है वह राहुल जी की लेखनी मे प्रचुर परिमाण में है । कुछ हास्य रस के निबध भी हिन्दी में लिखे जाने लगे है किन्तु जिस प्रकार कविता के क्षेत्र में हास्य रस उपेक्षित और अपुष्ट रहा उसी प्रकार निबध-क्षेत्र मे भी वह अपुष्ट और अविकसित ही बना हुआ है ।

नाटक

प्रगतिवाद के युग में बडे नाटको का प्रणयन प्राय. नही के बराबर हुआ है । प्रसाद के बाद हिन्दी मे जो नाटककार उत्पन्न हुए उन्होने इस युग मे भी नाटक लिखे है । श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण 'प्रेमी', उदय-शकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क, वृन्दावनलाल वर्मा और पृथ्वीनाथ शर्मा ही इस युग में भी नाटक लिखने मे लगे हुए है । किन्तु इस युग की विशेषता एकाकी नाटक है। एकाकी नाटक के साथ रेडियो-रूपक भी इस युगमें पर्याप्त मात्रा मे लिखे जा रहे है । एकाकी लिखने मे श्री रामकुमार वर्मा, भट्ट, भगवतीचरण वर्मा, जगदीशचन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, उपेन्द्रनाथ अश्क, गणेशप्रसाद द्विवेदी आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । रेडियो-रूपक लिखने वालो मे सर्व श्री सुमित्रानन्दन पन्त, मिश्र, भट्ट, विष्णु प्रभाकर, रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा ही प्रमुख है । ध्वनि और सकेत के आधार पर नाटकीयता की सृष्टि करने मे रेडियो-रूपक को अच्छी सफलता मिल रही है । खेद की बात है कि इस युग मे हिन्दी-रगमच के अभाव मे तथा चलचित्रो के अत्यधिक प्रचार मे हिन्दी के सम्पूर्ण नाटक नही लिखे जा रहे । नाटको की अभिनेयता की ओर से भी लेखकगण उदासीन है और एक प्रकार से नाटको की उन्नति या विकास अवरुद्ध है ।

समालोचना

प्रगतिवाद के युग मे हिन्दी-समालोचना का क्षेत्र बहुत व्यापक हुआ है । समालोचना-क्षेत्र मे चिन्तन की मौलिकता, अभिव्यक्ति की नूतनता

और वस्तु के वर्गीकरण की नवीनता का सूत्रपात इसी युग मे हुआ है। पूर्ववर्ती आलोचना प्राय दो कोटि की होती थी—या तो आलोचक-गण पुरातन शास्त्रीय मानदडो के आधार पर गुण-दोष-विवेचन कर देते थे या अपनी रुचि के अनुकूल निन्दा-स्तुति करके अपने आलोचक के कर्त्तव्य की इति-श्री समझते थे । प्रगतिवादी विचार-धारा के आते ही ये दोनो शैलियाँ ही पर्याप्त नही समझी गईं और वुद्धि, तर्क, प्रभाव, परिस्थिति तथा कृतित्व सभी दृष्टि-विन्दुओ से कृति की परख करना प्रारम्भ हुआ। प्रगतिवादी विचार-धारा के आलोचको का कहना है कि किसी कृति की परख करते समय काल विशेप की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियो को ध्यान मे रखना नितान्त आवश्यक है। जिस प्रकार प्रकृति के रहस्य का निरन्तर और उत्तरोत्तर उद्घाटन हुआ उसी प्रकार समाज और साहित्य के रहस्य भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के सामने निरन्तर खुलते जा रहे है । इसलिए साहित्य के सिद्धान्तो की वाह्य परीक्षा होनी चाहिए और उनका पूर्ण रीति से वैज्ञानिक विवेचन-विश्लेपण होना चाहिए।

प्रगतिवादी आलोचना मे कला की विचार-भूमि 'वेसिक थोट' को विशेप महत्त्व दिया है। पूर्ववर्ती आलोचक विचार को उतना महत्त्व नही देते थे जितना 'रूप' या 'फॉर्म' को, छन्द, अलकार, रस आदि के विवेचन द्वारा वारीकी से देखते थे । विचार ही समस्त कला का आधार है। विचार या भाव के मेरुदड पर ही समस्त कला-व्यापार खडा होता है। केवल सौन्दर्य-विधान ही कला का प्राण नही हो सकता, कला-कृति मे सत्य और शिव का महत्त्व सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक है। जो कला-कृति सामाजिक गति को प्रेरणा नही देती या जो कृति केवल सौन्दर्य-वोध कराकर समाप्त हो जाती है, सफल कला-कृति नही है। जीवन को गति देने वाले विचार तथा उसे प्रेरणा पूर्वक विकास-पथ की ओर वढाने वाली कृति को ही प्रगतिवादी सुन्दर और सफल समझता है। वज्ञानिक धरातल पर ही प्रत्येक कला-कृति की परीक्षा आज होती है। आज की

आलोचना पर मार्क्सवादी विचार-धारा का भी प्रभाव है। कम्युनिज़्म के अनुसार समस्त कला-कृतियो का उद्देश्य सामाजिक कल्याण (आर्थिक या भौतिक दृष्टि से) ही होना चाहिए। परलोक या अध्यात्मपरक नीति-काव्यों का आज के आलोचक की दृष्टि मे कोई मूल्य नही। जो कला-कृति ईश्वर या आत्मा की दुहाई देकर किसी मन्तव्य की स्थापना करती हो वह भी अवैज्ञानिक करार दी जाती है .ौर प्रगतिवादी आलोचक की दृष्टि में वह भी कसौटी पर खरी नही उतरती। सामाजिक चेतना को प्रबुद्ध करना ही आज के समालोचक की दृष्टि मे कला या साहित्य का यथार्थ उद्देश्य है। यथार्थ आलोचना में शास्त्र की अपेक्षा विज्ञान की अधिक आवश्यकता है। वैज्ञानिक दृष्टि ही आज की आलोचना की मूल प्रेरणा है। आलोचक न केवल साहित्य के बहिरंग की परीक्षा करता है अपितु उसके आभ्यन्तर भाव और विचार से भी परिचित होना चाहता है। बाह्य शैली पर भी अन्तरंग विचारो की छाप रहती है अत. मुख्यता अन्तरग रूप की है। आज के आलोचक की दृष्टि मे साहित्य विकासशील और प्रगतिशील है; वह युगीन परिस्थितियो से केवल प्रभावित ही नही होता उसके साथ पूरे तौर पर परिवर्तित भी होता है। अत शास्त्रीय मान्यताओ को आलोचना का आधार बनाना पूर्ण रूप से युक्तिसगत और समीचीन नही कहा जा सकता।

प्रगतिवादी आलोचको मे डॉ० रामविलास शर्मा, प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त, अमृतराय, माचवे, शिवदानसिंह चौहान, मन्मथनाथ गुप्त, आदित्य मिश्र तथा धर्मवीर भारती आदि का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। यद्यपि इन सबके व्यक्तिगत दृष्टिकोण मे पर्याप्त अन्तर है। शायद कोई भी दो प्रगतिवादी लेखक एक ही प्रकार के विचार नही रखते। फिर भी वस्तु की परख मे कोरे शास्त्रीय मानदडो की स्वीकृति इन्हे अभीष्ट नही—यही इनकी समानता समझनी चाहिए। प्रगतिवादी विचार-धारा के कई पत्र भी हिन्दी मे प्रकाशित हुए—'हस', 'नया साहित्य' 'नई चेतना' आदि मे नवीन शैली की आलोचना देखी जा सकती है।

विगत दशाब्दी की प्रबुद्ध चेतना का हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव

हिन्दी-साहित्य की प्रगति मे विगत दशाब्दी का समय बहुत महत्त्व-पूर्ण है। भारतवर्ष के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में इन दस वर्षों में पर्याप्त परिवर्तन और क्रान्तियाँ हुई हैं। हम कह सकते हैं कि सन् १९४२ से' ५२ तक भारतीय इतिहास ने अनेक परिवर्तन देखे हैं। इन युगान्तरकारी परिवर्तनों ने एक तरह से हमारे देश का ढाँचा ही बदल दिया है। सन् १९४२ का राष्ट्रीय आन्दोलन, आजाद हिन्द फौज का सगठन, बंगाल का अकाल, नाविक-विद्रोह, भारत-विभाजन और स्वतंत्रता-प्राप्ति, महात्मा गाधी का महा प्रस्थान आदि ऐसी घटनाएँ हैं जिन्होने हिन्दी-साहित्य के कलाकारो को भी उत्तेजित किया और उन्हे इन विषयो पर लिखने की प्रेरणा प्रदान की। सक्षेप मे हम इन व्यापक आन्दोलनो और परिवर्तनो का उल्लेख करते हुए हिन्दी-साहित्य मे उसका प्रभाव नीचे की पक्तियो में लिखेगे।

सन् १९४२ का राष्ट्रीय आन्दोलन हमारे देश का एक प्रबल जन-जागरण का आन्दोलन था, जिसने हमे सन् सत्तावन के गदर की याद दिलाई थी। इस आन्दोलन का प्रारम्भ 'भारत छोडो' के नारे के साथ हुआ और उस समय 'भारत छोडो' के पीछे अग्रेजो को अहिंसात्मक प्रणाली से निकालने की पुकार ही न थी वरन् उन्हे बरबस निकालने का भी प्रयत्न हुआ। अग्रेजी राज्य-व्यवस्था को सुदृढ बनाये रखने के साधनो का विध्वस भी किया गया और कही-कही उत्तेजित जनता ने हिंसात्मक उपायो का भी प्रयोग किया। इन सब तरीको को अपनाने के महात्मा गांधी बहुत विरुद्ध थे, किन्तु उनकी पुकार जनता तक न पहुँच सकी, क्योकि उन्हे भी सरकार ने कारावास में पटक दिया था। आन्दोलन को ठीक मार्ग पर चलाने वाला कोई नेता उस समय बाहर न था, फलत. उत्तेजित जनता ने मनमाने तरीको से विदेशी शासन को समाप्त करने के विफल प्रयत्न किये। इन विफल प्रयत्नो की सबसे बड़ी

सफलता थी जनता की भावनाओ मे दृढता और स्वदेशाभिमान के साथ बलिदान करने की आकाक्षा का उत्पन्न होना। इस व्यापक आन्दोलन ने केवल राष्ट्रीय भावना के लोगो को ही प्रेरणा और बल प्रदान नही किया, अपितु साहित्यिक अभिरुचि के लोगो को भी जीवन, जागृति, बल और बलिदान की भावना से परिपूर्ण कर दिया। साहित्य-प्रेमी कलाकारों की कलम एकदम क्रान्ति की भावना से आक्रान्त होकर विदेशी शासन के विरुद्ध विष-वमन करने लगी और बहुत से कवि और लेखकों ने इस आन्दोलन का बडा सजीव और उत्साहवर्धक वर्णन किया। फुटकर कविताओ मे बलिया जिले के बलिदानो का जैसा मार्मिक और हृदय-विदारक चित्र कवियो ने अङ्कित किया वह 'जलियाँ वाला बाग' के हत्या-काड की याद ताजी कर देता है। 'जन जागरण', 'हमारा सघर्ष', 'सन् बयालीस का विद्रोह', 'बयालीस की चिनगारी' आदि रचनाएँ इस आन्दो-लन की ही देन है। उपन्यासो मे 'अग्नि पथ' और 'क्रान्ति दूत' तथा अचल का 'चढती धूप' इसी आन्दोलन से प्रेरणा पाकर लिखे गए। कहानियों मे चार-पॉच वर्ष तक इस आन्दोलन का बडा गहरा प्रभाव रहा। गाधी-वादी विचार-धारा के कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी की प्रसिद्ध रचना के कुछ पद हम यहॉ उदाहरण रूप मे प्रस्तुत करते है :

भारत के चालीस कोटि
'गांधी' अब कह दो 'भारत छोड़ो',
भारत के चालीस कोटि
'टीपू' अब कह दो 'भारत छोड़ो',
अरे 'बहादुरशाह' आ रहा
पीछे से भागो परदेसी।
नाना फडनवीस के वंशज
ऊँघ चुके, भागो परदेसी।
आज 'सिराजुद्दौला' के जीने का नया पर्व आया।
'हैदरअली', 'शाह कासिम' की कब्रों मे कमान आया॥

सन् बयालीस के आन्दोलन का प्रभाव उत्तेजना और जागरण की दृष्टि से भारत के बच्चे-बच्चे पर पडा और उसका फल एक दूसरी दिशा मे और भी दीख पडा। वह दिशा थी नेता जी सुभाषचन्द्र बोस द्वारा बर्मा पहुँचकर आजाद हिन्द फौज का सगठन तथा भारत-स्वातन्त्र्य की सेना द्वारा चेष्टा। साहित्यकारो ने इस प्रयोग की भी भरसक सराहना की और अपनी रचनाओ से आजाद हिन्द फौज के कार्यो और कार्य-कर्ताओ का यशोगान किया।

बंगाल का अकाल

भारतवर्ष के राष्ट्रीय जीवन मे जब इस प्रकार के विप्लव उपस्थित थे तभी एक दैवी प्रकोप भी बडे विकराल रूप में आ गया। शस्य-श्यामला भारत-भूमि के बग प्रान्त मे भयकर दुर्भिक्ष का प्रकोप हुआ और लाखो नर-नारी अन्न के अभाव मे अकाल ही काल-कवलित हो गए। भारत का गौरव बगाल प्रान्त उस समय नरक का वीभत्स दृश्य उपस्थित करने वाला स्थान बन गया। पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए मानव ने जो उपाय और साधन काम मे लाये वे सचमुच मानवता को लज्जित करने वाले और मानव की अतुल शक्ति का उपहास करने वाले थे। इस अकाल का प्रत्यक्ष कारण जहाँ दैवी प्रकोप था वहाँ परोक्ष कारण अग्रेज सरकार की जान-बूझकर उपेक्षा-वृत्ति भी थी। यदि शासक चाहते तो देश के अन्य भागो से अन्न लाकर इस दुर्भिक्ष को शान्त किया जा सकता था, किन्तु सरकार के क रकुन चाहते थे कि भारत की जनता को अग्रेजो के प्रति विद्रोह करने का कुछ मजा चखाया जाय। अग्रेजो के मन मे उस समय भारतीयो के प्रति रोष और वैमनस्य था अत उसका बदला चुकाने के लिए उसने इस दुर्भिक्ष की शान्ति के उपायो का प्रयोग नही किया। फलत दुर्भिक्ष भयकर रूप पकड़ गया और बगाल की जनता त्राहि-त्राहि पुकार उठी। भूखे मानव की चीत्कार उस तक ही सीमित न रही और देश के कोने-कोने मे इस करुण चीत्कार

की गूँज प्रतिध्वनित हो उठी। साहित्यकार की करुण भावना प्रबुद्ध हुई और फिर वह पूरे आक्रोश के स्वर मे कविता द्वारा मुखरित हो गई। श्रीमती महादेवी वर्मा ने बगाल के अकाल से सम्बन्ध रखने वाली कुछ मार्मिक कविताओ का सग्रह बाद में प्रकाशित भी किया। श्री बच्चन ने 'बंगाल का अकाल' एक लम्बी कविता लिखी जिसमें पूँजीवाद तथ आर्थिक वैषम्य पर अच्छा व्यग है। और भी अनेक कवियो ने इस विषय पर सुन्दर कविता, नाटक, कहानी आदि लिखे। कविताओ के दो-एक उदाहरण नीचे दिये जाते है :

बंग-भू शत वन्दना ले।
भव्य भारत की अमर कविता हमारी वन्दना ले।
बह चला इन पर अचानक नाश का निस्तब्ध सागर,
जो अचल वेला बने तू आज वह गति साधना ले।
शान्ति की निधि अश्रु के क्या श्वास तेरे तोलते है,
आह तेरे स्वप्न क्या कंकाल बन-बन डोलते है,
अस्थियों की ढेरियाँ है,
जम्बुकों की फेरियाँ है।
'मरण केवल मरण' क्या संकल्प तेरे तोलते है,
भेंट में तू आज अपनी शक्तियों की चेतना ले।
बंग-भू शत वन्दना ले।

(महादेवी वर्मा)

पड़ गया बंगाले में काल
भरी कंगालों से धरती,
भरी कंकालों से धरती,
दीनता ले असंख्य अवतार
× × × ×
अरे वह मूर्ख हुई सरकार
दीर्घाकार

तृप्त कर सकता इसको कौन
पेट भर सकता इसका कौन
भूख ही होती, लो भोजन
मृत्यु अपना मुख शत भोजन
खोलती, खाती और बढ़ाती
मोद मनाती
मग्न हो मृत्यु नृत्य करती
मग्न हो मृत्यु नृत्य करती !

(बच्चन)

आज़ाद हिन्द फौज और नेताजी

नेताजी का प्रयत्न आजाद हिन्द सेना बनाकर भारत को स्वतत्र कराने की दिशा के एकदम सर्वथा अप्रत्याशित और नया था। भारत की जनता को जब इस विशाल कार्यक्रम का पता चला तो यहाँ की जनता आनन्द और उत्साह से उछल उठी। उसने अनुभव किया कि देश के बाहर जाकर जब नेताजी इतना महान् सगठन खडा कर सकते है तो हम लोग यहाँ रहते हुए क्यो न उनके प्रति अपनी वफादारी जाहिर करे। किन्तु देशवासियो को इस सगठन का पूरा-पूरा वृत्तान्त इतनी देर से मालूम हुआ था कि तब तक वह सगठन बर्मा मे छिन्न-भिन्न हो गया था। फिर भी देश की चेतना ने इस आन्दोलन को अपना ही आन्दोलन माना और उसके प्रति पूरी भक्ति और आस्था व्यक्त की। उस समय 'दिल्ली चलो' तथा 'जय हिन्द' ये दो नारे इतने व्यापक हुए कि इन्ही के द्वारा देशवासी अपनी मनोभावनाओ को प्रकट करके प्रसन्न होते थे। एक ओर सरकारी दफ्तरो, भवनो और सार्वजनिक स्थानो पर विजय का स्मारक अग्रेजी का V अक्षर लिखा जाता था तो दूसरी ओर जनता के द्वारा 'जय हिन्द' का अभिवादन प्रचलित हो गया था। इस 'जय हिन्द' पर कविगण ने कविताओ का ढेर लगा दिया। नेताजी भी कवियो की

प्रशस्ति के विषय रहे और 'दिल्ली चलो' की पुकार से भी काव्य-गगन कुछ दिन के लिए गूँज उठा। 'लाल किले की ओर' नामक कविता-सग्रह में इस विषय से सम्बन्धित लगभग पचास कवियो की रचनाएँ सकलित है। हिन्दी के बड़े-से-बडे कवि से लेकर नये-से-नये तरुण कवि ने इस विषय पर कुछ-न-कुछ लिखा और अपनी भावना को अभिव्यक्त किया। इस विषय पर कहानी और उपन्यास भी लिखे गए। कविताओ के कुछ उदाहरण देखिये :

जागे है कन्या, काश्मीर, है जाग उठे आसाम, सिन्ध।
'जय हिन्द' मंत्र की बलिहारी है धन्य फौज आजाद हिन्द॥
'जय हिन्द' कहो आगे आओ मिल रही प्राण के मोल जीत।
इस महा देश की सीमाएँ गा रहीं एक स्वर, एक गीत।

(नरेन्द्र शर्मा)

कौन होगा युवा बोस-सा इस देश में,
समय, स्वातंत्र्य की भावना ने जिसे निर्जरा कीर्ति दी विश्व में,
साहसी वीर-आत्मा रहा जो सदा से।
रहा खड्ग को देख के मुस्कराता महामोद में वार लेता,
उठा वक्ष को धैर्य से जीतता शत्रु को शौर्य से—

(अनूप शर्मा)

'आजाद हिन्द फौज' के प्रयत्नो का साहित्य में उस समय खुलकर वर्णन नही हुआ उसके दो कारण थे। एक तो यह कि देशवासियो को इस सैन्य-सगठन का प्रामाणिक विवरण बहुत देर से मिला, दूसरे अंग्रेजी शासन की कठोरता के कारण भी कुछ साहित्यिक खुलकर अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति नही कर सके।

भारत-विभाजन, स्वतंत्रता और राष्ट्रपिता का बलिदान

सन् १९४७ मे भारतवर्ष को स्वतत्र करने का प्रश्न बड़े उग्र रूप से

अग्रेज शासको के सामने आया। भारतवर्ष मे काग्रेस और मुस्लिम लीग नाम की दो प्रमुख राजनीतिक सस्थाएँ उस समय अपने दृष्टिकोण से देश के भविष्य का निर्धारण कर रही थी। काग्रेस के नेता भारतवर्ष को समग्र रूप मे एक राष्ट्र मानते थे और उनकी माँग थी कि देश का प्रतिनिधित्व करने वाली सच्ची सस्था 'इडियन नेशनल काग्रेस' है, अत विदेशी शासको को चाहिए कि वे उसी के हाथ देश की बागडोर सौपकर जायँ। दूसरी ओर मुस्लिम लीग का कहना था कि देश मे मुसलमानो का धार्मिक और राजनीतिक दोनो दृष्टियो से स्वतत्र अस्तित्व है, अत मुस्लिम-प्रधान प्रान्तो को पाकिस्तान का रूप दिया जाय। सघर्ष और विवाद के बाद भारत को दो भागो मे विभक्त करने का निर्णय हुआ। फलत. आबादी का परिवर्तन भी आवश्यक हो गया। हिन्दू-प्रधान प्रान्तो से मुसलमान, और मुस्लिम-प्रधान क्षेत्र से हिन्दू घर-बार छोड़कर आने लगे। आबादी के परिवर्तन के इस सिलसिले मे भयकर अव्यवस्था, शासन-हीनता, अत्याचार और उत्पीडन के दृश्य उपस्थित हुए। मानव अपने दानव रूप मे नगा होकर उन कर्मो मे प्रवृत्त हुआ जिनकी कल्पना करना भी कठिन है। इस परिवर्तन और विभाजन ने भारत के साहित्यकारो को नवीन उत्तेजना और स्फुरणा दी जिसके फल स्वरूप उन्होने कथा-कहानी, उपन्यास, कविता और नाटक लिखे।

हिन्दी के कलाकारो ने इस विषय को लेकर दो प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत की—एक तो आदर्श कोटि की वे रचनाएँ जिनमे एकता, प्रेम, सौदर्य और विश्व-बन्धुत्व के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया। दूसरी कोटि की रचनाएँ वे थी जिन्हे हम यथार्थ कोटि मे रख सकते है जिनमे उस समय के नारकीय और वीभत्स दृश्यो का नग्न चित्र अकित किया गया है। यद्यपि यह साहित्य क्षणिक था, किन्तु इसका प्रभाव चिरस्थायी कहा जायगा, क्योकि मानव की प्रच्छन्न भाव-धारा और पाशव-प्रवृत्ति का इससे सच्चा रूप देखने में आता है।

आदर्श को ध्यान मे रखकर हिन्दू-मुस्लिम-सघर्ष और तज्जन्य

विनाश से बचने के लिए साहित्य को साधन बनाने वाले कवियो में सर्व श्री भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय, उदयशकर भट्ट, शमशेरबहादुरसिंह, नीरज आदि का नाम लिया जा सकता है।

अज्ञेय की एक कविता की पंक्तियों मे वर्णन के साथ मानवता के पतन की ओर बड़े सजग भाव से इगित किया गया है :

और उसके लिए जाना पड़ेगा
मनुजता के मान को
मुक्ति उन्मुख, हमारी वाहिनी-सारी
यहाँ रुक जायगी—
देह अपने रोग का भी भार होती है
धिक् पुनः धिक्कार,
हिन्दू या मुसलमाँ नहीं, यह धिक्कार
आक्रोश हे अपमानिता
मेना मनुजता का।

भगवतीचरण वर्मा की कविता हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के प्रति अच्छा उद्बोधन प्रस्तुत करती है। मुसलमान की सकीर्णता पर व्यग करते हुए कवि कहता है :

'तुम मुसलमान पहले हो उसके पीछे हो इन्सान,
अलविदा दोस्त, लो तुम्हें मिल गया अपना पाकिस्तान।
कहता तो मै तुमको भाई
पर तुमको मंजूर कहीं,
काफिर से भला आशनाई !
फिर किस बिरते पर मै तुमसे
रिश्ता जोड़ूँ, नाता रक्खूँ,
तुम खोद चुके हो मेरे अपने बीच बड़ी गहरी खाई।
पर मेरे मन मे मैल नहीं,
तुम मुझे भले दुश्मन समझो

ऐसा भी मौका आयेगा
सर पकड़ोगे पछताओगे
मै तुम्हे दिलाता हूँ यकीन
तब सबसे बढ़कर दोस्त यहाँ पर तुम मुझको ही पाओगे ।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने भी इस विध्वस और विनाश को देखकर अच्छी कविताएँ लिखी । इन कवियो की प्रेरणा का मूल स्रोत यही विभाजन और उसका परिणाम मानवता की कराह थी । अत साहित्य के इतिहास में इस घटना के क्षणिक होने पर भी शाश्वत स्थान प्राप्त रहेगा ।

उपन्यास, नाटक और कहानी के क्षेत्र मे तो बहुत ही सुन्दर रचनाएँ इस विषय को लेकर हुईं । उर्दू के सुप्रसिद्ध लेखक श्री रामानन्द 'सागर' की कृति 'और इसान मर गया' उस युग की सबसे अधिक लोकप्रिय और मार्मिक कृति है । 'शरणार्थी'-समस्या और शरणार्थी की स्थिति को लेकर बीसियो कहानियाँ हिन्दी के लेखको ने लिखी । नाटक और एकाकी के क्षेत्र मे श्री उदयशकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर, रामचन्द्र तिवारी आदि ने अच्छे कथानक दिये और नर-पिशाच को अंकित करने में अच्छी क्षमता का परिचय दिया । कहानी-लेखको मे पहाडी, अश्क, माचवे, रहबर, नागर, अज्ञेय की कहानियाँ उल्लेख्य है । हिन्दी की कहानी-पत्रिकाओ मे उन दिनो विभाजन का वर्णन करने वाली अनेक कहानियाँ प्रकाशित हुईं, जिनमे वर्णनात्मक शैली का अच्छा रूप देखने में आया । यथार्थ और आदर्श दोनो दृष्टियो से उस समय का कथा-साहित्य पर्याप्त रोचक और विचारोत्तेजक कहा जा सकता है ।

भारतवर्ष के इतिहास मे स्वतत्रता प्राप्त होने के बाद सन् १६४८ की ३० जनवरी को एक भयंकर घटना घटित हुई । राष्ट्रपिता महात्मा गाधी का एक मदान्ध युवक द्वारा प्रार्थना-सभा मे वध कर दिया गया । सारा राष्ट्र इस घटना से शोक-सागर में निमग्न हो गया । साहित्यिक क्षेत्र में भी इस घटना का प्रभाव पड़ा और हिन्दी के कवि और लेखको

ने महात्माजी के बलिदान को राष्ट्र-संहारक कार्य के रूप मे चित्रित किया। यह आश्चर्य का विषय है कि इतनी अनर्थकरी घटना को घटित हो जाने पर भी साहित्यिक क्षेत्र मे उतनी क्रान्ति नही हुई जितनी होनी चाहिए थी। श्री बच्चन और पन्त की कविताओ का एक सकलन 'खादी के फूल' नाम से प्रकाशित हुआ जिसमे महात्मा गान्धी के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित की गई है। कुछ फुटकर कविताएँ भी प्रकाशित हुई किन्तु साहित्य के विभिन्न अगो में महात्मा गान्धी के निधन पर अधिक नही लिखा गया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी

स्वतत्र भारत के नूतन सविधान मे भारतवर्ष की राजकीय भाषा के रूप मे हिन्दी को स्वीकार कर लिया गया है। पन्द्रह वर्ष के बाद समस्त राजकीय कार्य हिन्दी के माध्यम से होने लगेगा। राजकीय भाषा के रूप में हिन्दी के स्वीकृत हो जाने पर यह आशा करना स्वाभाविक है कि हिन्दी-भाषा की सर्वाङ्गीण उन्नति होगी। प्रान्तीय भाषाओ का साहित्य भी अनूदित होकर हिन्दी मे आ रहा है और विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, गणित, भूगोल, वाणिज्य-शास्त्र विषयो के प्रचलित अँग्रेजी पारिभाषिक शब्दो का हिन्दी रूपान्तर तैयार किया जा रहा है। हिन्दी भाषा के बृहत् हिन्दी शब्द-कोश भी प्रस्तुत किये जा रहे है। सस्कृत के प्राचीन ग्रन्थो को भी हिन्दी मे लाने का प्रयास जारी है। इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दी-भाषा का भविष्य उज्ज्वल है।

हिन्दी-साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए केवल साहित्यिक कृतियो की ही आवश्यकता नही वरन् प्रारम्भिक कक्षाओ तथा प्रौढ व्यक्तियो को हिन्दी सिखाने वाले साहित्य की भी बडी आवश्यकता है। यदि बाल-साहित्य की अच्छी समृद्धि हो, प्रौढ साहित्य का मनोवैज्ञानिक पद्धति पर निर्माण किया जाय तो हिन्दी के प्रचार और प्रसार मे पर्याप्त योग मिल सकता है।

नामानुक्रमणी

ट

ठ

त

द

य

र